ॐ

देवीभागवत अनुशीलन

संकलन
स्वामी हृदयानन्द गिरि
स्वामी मंगलमूर्ति

संपादन एवं प्रकाशनः

स्वामी हृदयानन्द गिरि
हृदयदीप आश्रम
सी - 477, जीवन नगर, जम्मू - 180 010
फोन : +91-191-3547012, +91-788-959-2588

प्रथम संस्करण: विक्रमाब्द - 2080, सन् - 2023

अक्षर संयोजनः
अविनाश चन्द्र ओझा
वेदनिधि - वेदिक हेरिटेज रिसर्च फाउण्डेशन, वाराणसी
फोनः +91-991-990-7909, +91-945-052-9003

मुद्रक :

विषय सूची-

१- देवीभागवत माहात्म्य (क)
२- देवी भागवत माहात्म्य (ख)
३- देवीगीता और भगवद्गीता का तुलनात्मक अध्ययन
४- प्रज्ञादेवीभागवत
५- देवीगीता भाष्य

आमुख

देवीभागवतमहापुराण महर्षि वेदव्यासकृत अठारह पुराणों में से एक है । विषयवस्तु की गंभीरता, प्रतिपादन-शैली तथा आकार— सभी दृष्टियों से इसे महापुराण माना जाता है । श्रुतियाँ अखिल ब्रह्माण्ड में क्षर-अक्षर रूप में व्याप्त जिस 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' सत्ता का निर्वचन करती हैं तथा वाक्सूक्त' और 'रात्रिसूक्त' आदि सूक्तों में जिस अद्वितीय ब्रह्म का बड़ा ही भावमय और काव्यमय वर्णन हुआ है, देवीभागवतमहापुराण में विभिन्न कथाओं के माध्यम से उसी का पुष्कल वर्णन हुआ है । पुराण-शैली की दृष्टि से यह श्रीमद्भागवत के अनुरूप है और इसकी भाषा श्रीमद्भगवद्गीता की भाषा से भी अधिक सरल है, इतनी सरल कि संस्कृत का सामान्य ज्ञान रखने वाला भी इसे समझ सकता है । जिस ब्रह्म की वर्णन श्रुतियाँ 'नेति-नेति ' कहकर करती हैं, वही ब्रह्म यहाँ बड़ी सरलता से समझाया गया है । वस्तुत: सत्ता न पुरुष है, न स्त्री, और न ही उभयात्मक । सच्चिदानन्दरूपता भी उसका उपलक्षण मात्र है । वह सत्ता मात्र है । सत्ता शब्दाख्य नहीं है, वह अनुभवाख्य है, इसलिए वर्णनातीत है ।

शक्ति और शक्तिमान् अद्वय हैं । जैसे श्रीमद्भागवत में ब्रह्म का निर्वचन भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में किया गया है, वैसे ही देवीभागवत में ब्रह्म का निरूपण भगवती भुवनेश्वरी के रूप में हुआ है । मात्र दृष्टिकोण का अन्तर है । श्रुतियों ने अधिकतर ब्रह्म को नपुंसकलिंग (तत्) बताया है । श्रीमद्भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में वह पुलिंग है । देवीभागवत में शक्ति की प्रधानता से सत्ता को स्त्रीरूप बताया गया है । श्रीमद्भागवत और देवीभागवत में सूक्ष्म अन्तर यह है कि जहाँ श्रीमद्भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण के साथ गोपी (राधा) का भी वर्णन मिलता है। श्रीकृष्ण की आठ पटरानियों के अतिरिक्त हजारों पत्नियाँ हैं । देवीभागवत में आद्या शक्ति भगवती भुवनेश्वरी के अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता की कल्पना नहीं हुई है । इस रूप में देवीभागवत विशुद्ध रूप से निष्कल ब्रह्म का प्रतिपादन करता है । सत्ता ब्रह्म है, किन्तु ब्रह्म शक्तिरहित नहीं है, अन्यथा सृष्टि संभव नहीं । इस प्रकार देवीभागवत में शक्ति और शक्तिमान् का अद्वैत प्रतिपादित हुआ है ।

देवीभागवत के सप्तम स्कन्ध के अन्तिम नौ अध्याय 'देवीगीता' नाम से प्रसिद्ध हैं । इन अध्यायों में कोई कथा नहीं है, प्रत्युत देवी ने स्वयं अपने वास्तविक रूप का, जो सच्चिदात्मक ब्रह्म है, वर्णन किया है । इसके पूर्व देवी ने देवताओं को अपने विराट् रूप का दर्शन कराया है । देवी का विराट् रूप श्रीमद्भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिखाये गये विराट् रूप के सदृश है । देवीगीता श्रीमद्देवीभागवत का मुख्यत: ज्ञानकाण्ड है, किन्तु इसमें कर्म, ज्ञान, भक्ति

और योग सबका संक्षेप में सरल रीति से वर्णन हुआ है । इसके अतिरिक्त देवी-पीठों और देवी की पूजा-विधि का भी वर्णन है ।

लोक में प्रचार-प्राप्त श्रीमद्भागवत की तुलना में देवीभागवत का प्रचार यद्यपि न्यून है, किन्तु इसके प्रति सम्मान में कोई कमी नहीं है । यह तो नित्य-प्रति परिवर्तनशील लोक-रुचि की बात है । इसमें सन्देह नहीं कि देवीभागवत श्रीमद्भगवत का पूरक है, जैसा कि देवीभागवत की रचना के हेतु से ज्ञात होता है । देवीगीता देवी-भक्तों में श्रीमद्भगवद्गीता के समान उपासनीय है ।

देवीगीता के महत्त्व को आम जनता भी समझे, इस उद्देश्य से 'देवीगीता भाष्य' की आवश्यकता महसूस की गयी । यद्यपि इसकी संस्कृत सरल है और भाव बोधगम्य, फिर भी संस्कृत का अल्प ज्ञान रखने वाले देवी-भक्त और विद्यार्थी इसे किसी बाहरी सहायता के बिना भी समझ सकें, इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर इसके लेखन और प्रकाशन की योजना बनी ।

'देवीगीता भाष्य' में प्रत्येक श्लोक का अन्वय, पदच्छेद सहित अर्थ, भावार्थ तथा यथावश्यक टिप्पणी दी गयी है । विवरणात्मक श्लोकों की टिप्पणी अनावश्यक समझी गयी ।

इसमें सन्देह नहीं कि गीता-प्रेस, गोरखपुर का आर्ष ग्रन्थों के प्रकाशन में बहुत योगदान है । हिन्दू धर्म और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले पौराणिक वाङ्मय का प्रकाशन गीता-प्रेस के मालिकों का प्रिय प्रकल्प रहा है । इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं । किन्तु देवीभागवत का प्रकाशन उन्होंने अभी हाल में किया । खैर देर आये दुरुस्त आये । अब तो मूल पाठ के अतिरिक्त दो भागों में बृहदाकार हिन्दी अनुवाद सहित देवीभागवतमहापुराण के कई संस्करण निकल चुके हैं । मूल संस्कृत और मात्र हिन्दी भावार्थ वाले संस्करण भी उपलब्ध है । वस्तु की उपयोगिता का पता तब चलता है, जब वह वस्तु उपलब्ध हो । यह बात देवीभागवत पर भी लागू होती है । गीता प्रेस के प्रयास से जब यह ग्रन्थ जनसामान्य में प्रचार में आया तब से जनता ने उसके मूल्य को समझा और भगवती की उपासना केवल उपासना न रहकर जनता-जनार्दन के आध्यात्मिक उत्थान में सहायक हुई है । विष्णु की तरह समय-समय पर भगवती अवतार धारण कर असुरों का संहार ही नहीं करतीं, अपितु धर्म-संस्थापना भी करती हैं । यह तो हुआ उनका सगुण स्वरूप । इस रूप में भगवती विभिन्न अवतारों के माध्यम से अपने भक्तों का अनुरंजन करती हैं ।

भगवती का एक रूप है - निर्गुण, निराकार, अनुभवात्मक । निर्गुण रूप में भगवती श्रुतियों में निरुपित ब्रह्म की तरह अवाङ्मनस् गोचर हैं । यह सत्ता एक और अद्वितीय है । श्रुतियाँ जिस सत्ता को 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च' कहकर निरूपित करती हैं, श्रीमद्देवीभागवत में वही सत्ता शक्ति और शक्तिमान् (शिव) के अद्वैत के रूप में वर्णित हुई है । सर्वत्र गोचर होती है शक्ति, इसलिए ग्रन्थ में

प्रधानतया शक्ति का वर्णन है । यहाँ शक्तिमान् (आगमोक्त शिव और निगमोक्त ब्रह्म) गुप्त है, निगूढ है, पर्दे के पीछे छिपा है । ब्रह्म के सम्बन्ध में श्रुति कहती है - 'यस्मिन् ऋते किञ्च न कर्म क्रियते'। देवीभागवत के अनुसार शक्ति के बिना कोई कार्य नहीं होता ।

श्रीमद्भगवद्गीता में परम सत्ता का निरूपण 'यो बुद्धेः परतस्तु सः' कहकर किया गया है । हमारा अनुभव मन और बुद्धि तक है, उसके परे नहीं । किन्तु सत्ता तो बुद्धि से परे है । बुद्धि से परे वाली सत्ता अनुभवातीत है । उस अनुभवातीत अनुभव को ही देवीभागवत में अनुभवाख्य ज्ञान कहा गया है। शब्दाख्य ज्ञान और अनुभवाख्य ज्ञान दोनों में जमीन आसमान का अन्तर है । इस अनुभवाख्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिए भी शक्ति-तप, ज्ञान, योग, भक्ति आदि की आवश्यकता है । इस प्रकार शक्ति की सर्वातिशयता स्वतः सिद्ध है ।

देवीभागवत का माहात्म्य (क)

श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास रचित अठारह पुराणों में देवीभागवत का विशिष्ट स्थान है । विषयवस्तु की महिमा और कलेवर की दृष्टि से यह महापुराण है । इसमें श्रुति के सार-स्वरूप गायत्री को केन्द्र में रखकर उसकी अधिष्ठात्री देवी भगवती पराम्बा की चारु चरितावली विशद रूप से वर्णित हुई है । देवीभागवत असत् पर सत् की विजय की महागाथा है । दुष्टजन का संहार, सज्जनों का पालन और भक्तों की सहायता के लिए देवी भुवनेश्वरी नाना रूपों में प्रकट होती हैं । वे शक्ति-स्वरूपा है । जगत् प्रपंच जिनकी सत्ता से सत्तावान् भासित हो रहा है, सत्-स्वरूप ब्रह्म (शिव) और असत् रूप जगत् का आधार यही भुवनेश्वरी हैं— ऐसी भगवान् व्यास की मान्यता है 'इकार' रूप शक्ति से समन्वित शिव (ब्रह्म) सृष्टि की रचना, पालन और संहार में समर्थ हो पाता है, अन्यथा वह स्वरूपतः तटस्थ है । इस प्रकार पुराणों में देवीभागवत ही ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें द्वैत को स्वीकारते हुए अद्वैत की तर्कसम्मत प्रतिष्ठा हुई है । यह समन्वयवादी भारतीय दर्शन के स्वभाव के अनुरूप है । इस दृष्टि से देवीभागवत वेदान्त ग्रन्थ जैसा लगता है और ब्रह्मसूत्र का सरल, व्यावहारिक आख्यानक प्रतीत होता है । सत्ता के स्वरूप के सम्बन्ध में भारतीय दर्शन में विपुल ग्रन्थों की रचना हुई है तथा तर्क और विचारणा की दृष्टि से शांकर वेदान्त अकाट्य माना जाता रहा है । परन्तु वहाँ भी सत्ता सदा अद्वैत नहीं है, सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनो रूपों में द्वैत सत्ता अद्वैत के साथ-साथ रही है, भले ही व्यावहारिक सत्ता का अपलाप भ्रम मानकर कर लिया गया हो । गोस्वामी तुलसीदास 'विनय पत्रिका' में इसी अनुभूत सत्य का संकेत करते हैं —

'जो जग मृषा ताप त्रय अनुभव होइ कहहु केहि लेखे ।

देवीभागवत के अनुसार सत्ता 'अद्वय' है, अर्थात् शिव (ब्रह्म) और शक्ति इस प्रकार संयुक्त हैं कि उन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता, पृथक् माना भी नहीं जा सकता -- 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' और

'गिरा अरथ जल बीच सम' ।

वेदान्त का ब्रह्म तटस्थ है । वह उभयात्मक भी नहीं है— 'न स्त्री न पुमान् । इसीलिए उसे 'तत्' (नपुंसकलिंग) कहकर इंगित किया गया है— 'तत्त्वमसि' । यह विचार सत्ता के प्रति हमारे अनुभव से मेल नहीं खाता । सत्ता के प्रति हमारा नित्यप्रति का अनुभव है - सृष्टि, स्थिति और विनाश । इन तीनों के सम्मिलित स्वरूप का नाम है संसार । संसार की सत्ता को न मानना अपने आपको अस्वीकारना है, जो सर्वथा असंभव है । तभी तो आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि 'मैं सोचता हूँ- इसलिए मैं हूँ । पश्चिम के व्यक्तिवादी चिंतन के मूल में देकार्त के इस प्रस्थान-वाक्य का कम प्रभाव नहीं है । नींद में अपनी और संसार की सत्ता का भान बिलकुल नहीं रहता, परन्तु जागने पर हमें ज्ञान होता है कि नींद में भी हम थे, भले ही सोये हुए थे । देवीभागवत में सत्ता को विश्वजननी के रूप में स्वीकार किया गया है, जो एक ओर त्रिगुणमयी है तो दूसरी ओर त्रिगुणातीत भी है । वह जननी मात्र संसार की नहीं है - वह सत् की भी जननी है और असत् की भी, ज्ञान की भी अज्ञान की भी, भुक्ति की भी मुक्ति की भी । साथ ही, उसका एक स्वरूप वह भी है जो अचिंत्य है । अचिंत्यस्वरूपा विश्वजननी का भक्तिपूर्वक अनुचिंतन तो हो सकता है, बोध या प्रत्यक्षीकरण नहीं—

सृष्टवाखिलं जगदिदं सदसत्स्वरूपं
शक्त्या स्वया त्रिगुणया परिपाति विश्वम् ।
संहृत्य कल्पसमये रमते तथैका
तां सर्वविश्वजननीं मनसा स्मरामि ।।

अचिंत्य का चिंतन कैसे ! मन से स्मरण कैसे ! भक्त देवी की जैसी भावना करेगा, देवी का वहीं स्वरूप होगा । माता सभी प्राणियों की आदिगुरु है, क्योंकि लोकदर्शन का सौभाग्य सर्वप्रथम उसी की गोद में प्राप्त होता है । श्रुति ने 'मातृदेवो भव' कहकर माता को प्रथमस्थानीय माना है । समस्त प्रवृत्तियों का आधार तो शक्ति है ही, निवृत्ति भी शक्तिसापेक्ष है । श्रुति का कथन है - 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः । देवी का एक रूप निद्रा है । लोक में निद्रा शक्तिरहित मानी जाती है, जो वस्तुतः सत्य नहीं है । निद्रा की शक्ति को जानना हो तो अनिद्रा के रोगी से मिलिये और उसकी बेचैनी देखिये। निद्रा से प्राप्त शक्ति के द्वारा ही हम अगले दिन कार्य के लिए सक्षम हो पाते हैं । मार्कण्डेय पुराण में कथा आती है । शेषशायी विष्णु के नाभि-कमल पर स्थित ब्रह्म को मारने के लिए मधु-कैटभ उद्यत होते हैं । अहिंसापरायण ब्रह्मा विष्णु से अपनी रक्षा की प्रार्थना करते हैं । गहरी निद्रा को प्राप्त विष्णु भला ब्रह्मा की क्या सहायता करते ? तब ब्रह्मा निद्रारूपी विश्वजननी की स्तुति करते हैं—

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।

ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर निद्रा देवी विष्णु के शरीर से अलग हो जाती हैं । तत्पश्चात् विष्णु मधुकैटभ का संहार करने में सक्षम होते हैं । निद्रा की शक्ति अतुलनीय है, जो विष्णु जैसे महापराक्रमी को भी अपने वश में कर लेती है । देवीभागवत के अनुसार सभी शक्तियाँ देवी का स्वरूप हैं । सम्पूर्ण विश्व महाशक्ति का विलास है । भुवनेश्वरी स्वयं कहती है— 'सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्' अर्थात् समस्त विश्व मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न कुछ नहीं है । यह कथन वेदान्त के 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के समान है ।

संस्कृति के विकास और विस्तार में मातृशक्ति की महती भूमिका रही है । सर्जनशीलता और संरक्षण मातृशक्ति में विशेष है । मातृशक्ति विचार की अपेक्षा भावजगत् के पोषण में अधिक तत्पर दीखती है । नृतत्त्वशास्त्रियों के अनुसार विश्व के प्राय: सभी धर्मों में मातृ-उपासना प्राचीनतम है । ऋग्वेद के वाक् सूक्त में वाग्देवी के उद्गार उनकी विलक्षण शक्ति का उद्घाटन करते हैं । हिन्दू धर्म में पुरुष देवताओं के साथ-साथ स्त्री देवताओं का महत्त्व रहा है । हर देवता के साथ उसकी शक्तिस्वरूपा देवी भी है । देवी-देवताओं के युग्म में यह सामंजस्य इतना मनोज्ञ था कि हिन्दू मानस को उन्हें पृथक् करके देखना स्वीकार्य नहीं था । देवीभागवत में भुवनेश्वरी की स्त्रीभावापन्नता इसी सामंजस्य की भावात्मक परिणति है ।

देवीभागवत का स्वरूप - विधान भागवत के समान है । रचना - काल की दृष्टि से यह भागवत का परवर्ती है । भागवत जहाँ मोक्षदायी ग्रंथ है, देवीभागवत भोग और मोक्ष दोनों को देने वाला है । इस दृष्टि से देवीभागवत भागवत से बढ़कर माना जा सकता है, क्योंकि सामान्यत: लोक दोनों की अपेक्षा करता है । कथा-संघटन में प्रारम्भ में देवीभागवत की भागवत से ऐसी समानता है कि लगता है, देवीभागवतकार भागवत का अनुकरण कर रहा हो । हिन्दू समाज में देवीभागवत का बड़ा आदर है । भागवत की तो कथा होती है, किन्तु देवीभागवत की कथा तो होती ही है, नवरात्र में नवाह्नपारायण भी होता है । सांस्कृतिक दृष्टि से इसका अध्ययन बड़ा उपयोगी है । इसमें सहस्त्रों सूक्तियाँ भी हैं, जो ज्ञानवर्धक और व्यवहारोपयोगी हैं । आकार में छोटी सूक्तियाँ प्रभाव में अप्रतिम होती है । इसलिए सूक्तियों का विशेष महत्त्व है । संस्कृत में सूक्त साहित्य बिखरा हुआ मिलता है किन्तु उसकी मात्रा विपुल है । संस्कृत सूक्तियों की तरह हिन्दी में लोकोक्तियाँ होती हैं । लोकोक्तियाँ ज्ञान का भंडार हैं । न जाने कितनी पीढ़ियों से लोक का अनुभव लोकोक्तियों के रूप में ज्ञान-कोश बन गया है । सूक्तियाँ भी कवि की नवोन्मेषशालिनी मेधा की उपज होती हैं । सामान्य मानव की बुद्धि वहाँ तक सहजता से नहीं पहुँच पाती ।

स्कन्दपुराण के मानस खण्ड में देवीभागवत का माहात्म्य वर्णित है । उसके अनुसार देवीभागवत की कथा भगवान् बादरायण व्यास ने तक्षक के दंश से अकालमृत्यु को प्राप्त महाराज

परीक्षित की संशुद्धि (मुक्ति) के लिए परीक्षितपुत्र जनमेजय को सुनायी थी । कथा नौ दिनोंमें पूर्ण हुई थी । देवी-कथा के प्रभाव से परीक्षित को सालोक्य मुक्ति प्राप्त हुई । स्कन्दपुराण ने अठारह पुराणों में देवीभागवत को सर्वोत्तम और परम माना है तथा इसे 'धर्मकामार्थमोक्षदम्' कहकर इसकी व्यापकता और सर्वजनप्रियता की ओर संकेत किया है । पुरुषार्थचतुष्टय से व्याप्त कथा होने के कारण देवीभागवत की सूक्तियों में मानव जीवन के जिन शाश्वत और गंभीर अनुभवों का साक्षात्कार होता है, उनकी सर्वत्र और सार्वकालिक उपयोगिता है ।

स्कन्दपुराण के देवीमाहात्म्यप्रकरण में मुनि ऋतवाक् के कुबुद्ध पुत्र के वर्णन प्रसंग में अपुत्रता को कुपुत्रता से वरेण्य माना गया है —

अपुत्रता वरं नृणां न कदाचित्कुपुत्रता ।

कुपुत्र की विगर्हणा करते हुए भगवान् व्यास कहते हैं -

पितॄन्कुपुत्रः स्वर्यातान्निरये पातयत्यपि । यावज्जीवेत्सदा पित्रोः केवलं दुःखदायकः ।।
पित्रोर्दुःखाय धिग्जन्म कुपुत्रस्य च पापिनः । सुहृदां नोपकाराय नापकाराय वैरिणाम् ।।
कुपुत्रेण कुलं नष्टं कुपुत्रेण हतं यशः । कुपुत्रेणेह चामुत्र दुःखं निरययातनाः ।।
कुपुत्रेणान्वयो नष्टो जन्म नष्टं कुभार्यया । कुभोजनेन दिवसः कुमित्रेण सुखं कुतः ।।

कुपुत्र स्वर्गस्थ पितरों को नीचे गिरा देता है और जब तक जीता है, पिता को केवल दुःख देता है । पिता के लिए दुःखदायी पापी कुपुत्र को धिक्कार है । वह न तो (पिता के) मित्रों का हितसाधक होता है और न वैरियों का अपकारक । कुपुत्र से कुल और यश नष्ट हो जाता है । कुपुत्र से इस लोक में दुःख मिलता है और परलोक में नरक-यातना । कुपुत्र से वंश-परंपरा नष्ट हो जाती है । कुभार्या (दुष्ट पत्नी) से जन्म नष्ट हो जाता है । कुभोजन (अरुचिकर भोजन) से दिन नष्ट होता है अर्थात् कार्य में मन नहीं लगता और दुष्ट मित्र से सुख कहाँ ?

पुराणवेत्ता और वैद्य दोनों मान्य और पूज्य हैं, भले ही वे दरिद्र, दुर्बल, बालक या वृद्ध हों। क्योंकि पुराणवेत्ता लोक का आध्यात्मिक कल्याण करता है और वैद्य संसार को स्वस्थ रखता है—

दरिद्रो दुर्बलो बालस्तरुणो जरठोऽपि वा । पुराणवेत्ता वैद्यः स्याद्पूज्यो मान्यश्च सर्वदा ।।

पुराण आध्यात्मिक विश्वकोश हैं, अतः पुराणज्ञको सर्वश्रेष्ठ गुरु माना गया है -

सन्ति लोकस्य बहवो गुरवो गुणजन्मतः । सर्वेषामपि तेषां च पुराणज्ञः परो गुरुः।।२

भगवान् व्यास पौराणिक को निर्देश देते हैं कि जब तक कथा का प्रसंग समाप्त न हो जाय, व्यासासन पर बैठा पौराणिक किसी को नमस्कार आदि क्रिया न करे—

पौराणिकः ब्राह्मणसतु व्यासासनसमाश्रितः । असमाप्ते प्रसंगे तु नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ।३।

नदियों में गंगा श्रेष्ठ हैं । देवताओं में शंकर श्रेष्ठ हैं । काव्यों में रामायण और प्रकाश-पुंजों में

सूर्य श्रेष्ठ हैं । प्रसन्नता प्रदान करने में चन्द्रमा का कोई सानी नहीं, तथा यश के समान कोई धन-सम्पत्ति नहीं । क्षमा करने वालों में पृथ्वी और गंभीरता में सागर अतुलनीय है । मंत्रों में सावित्री (गायत्री) श्रेष्ठ है । पाप को नष्ट करने में हरिस्मरण से बढ़कर कोई साधन नहीं । ऐसे ही अठारह पुराणों में देवीभागवत श्रेष्ठ है—

यथा सरित्सु प्रवरा गंगा देवेषु शंकरः । काव्ये रामायणं यद्वज्ज्योतिष्मत्तु यथा रविः ।।
आह्लादकानां चन्द्रश्च धनानां च यथा यशः । क्षमावतां यथा भूमिर्गाम्भीर्ये सागरो यथा ।।
मंत्राणां चैव सावित्री पापनाशे हरिस्मृतिः । अष्टादशपुराणानां देवीभागवतं तथा ।।

गायत्र्युपासना से बढ़कर न कोई धर्म है, न तप । गायत्री के समान कोई देवता नहीं है । गायत्री सर्वोच्च मनीषा है । गाने वाले की रक्षा करती इसलिए गायत्री नाम पड़ा है । देवीभागवत में गायत्री रहस्य-निरूपण के साथ प्रतिष्ठित है—

न गायत्र्याः परो धर्मो न गायत्र्याः परं तपः ।
न गायत्र्याः समो देवो न गायत्र्याः परो मनुः ।।

गातारं त्रायते यस्मात् गायत्री तेन सोच्यते । साऽत्र भागवते देवी सरहस्या प्रतिष्ठिता ।।५।।

देवीभागवत माहात्म्य (ख)

जब महाप्रलयावस्था में एकार्णव के मध्य वट-पत्र पर भगवान् विष्णु शिशु रूप में शयन कर रहे थे और अपने तथा अपने को जन्म देने वाली सत्ता के विषय में विचार कर रहे थे, उसी समय आदि शक्ति भगवती ने आकाशवाणी के रूप में अपने सम्पूर्ण स्वरूप का ज्ञान कराने वाले निम्नलिखित अर्द्धश्लोक का उच्चारण किया—

'सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम् ।' (देवीभा० १.१५.५२)

अर्थात् 'सब कुछ मैं ही हूँ, दूसरा कोई भी सनातन नहीं है'। भगवान् बालमुकुन्द सोचने लगे कि यह आकाशवाणी किसने की ! वह सनातन सत्ता कौन है ! साथ ही, इस श्लोकार्द्ध को धारण करके बार-बार इसका उच्चारण करने लगे । उसी समय पराम्बा भगवती अपने परिकर सहित चतुर्भुज रूप में प्रकट हुईं । उन्होंने कहा - 'इस श्लोकार्द्ध का उच्चारण मैंने किया है । यह वेदों का सार-स्वरूप पुण्यप्रद देवीभागवत है । इसे हृदय में धारण कीजिए और कभी विस्मृत मत कीजिए' । विष्णु तब से भुवनेश्वरी के ध्यान और श्लोकार्द्ध रूपी मन्त्र के जप में तत्पर रहने लगे ।

विष्णु से देवीभागवत का सार रूप यह श्लोकार्द्ध ब्रह्मा को प्राप्त हुआ । ब्रह्मा ने सौ करोड़ श्लोकों में इसका उपबृंहण किया । उन्होंने सर्वप्रथम इसे अपने पुत्र नारद को सुनाया । महर्षि नारद से यह महर्षि वेदव्यास को प्राप्त हुआ । महर्षि व्यास ने इसका सार-संग्रह करके इसे बारह स्कन्धों और

अठारह हजार श्लोकों में संक्षिप्त किया । उन्होंने इस भागवत को सर्वप्रथम अपने पुत्र शुकदेव को सुनाया ।

पुराण का लक्षण है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।

अर्थात् पुराण के अन्तर्गत सृष्टि, प्रलय, राजवंश (सूर्यवंश और चन्द्रवंश), राजवंशों की चरितावली तथा मन्वन्तर का वर्णन होता है ।

देवीभागवत के अन्तर्गत तीनों महाशक्तियों का आविर्भाव सर्ग है । सर्जन, पालन और संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शंकर की उत्पत्ति प्रतिसर्ग है । सूर्य, चन्द्र और दैत्यों के वंश का वर्णन वंश है और मनुओं के वंश का वर्णन वंशानुचरित है ।

स्कन्दपुराण के मानस खण्ड में देवीभागवत के माहात्म्य और श्रवण-विधि का वर्णन है । इसमें देवीभागवत को लोक के कल्याण और भुक्ति-मुक्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ साधन बताया गया है -

तावद् गर्जन्ति तीर्थानि पुराणानि व्रतानि च ।
यावन्न श्रूयते सम्यक् देवीभागवतं नरैः ।।
तावत् पापाटवी नृणां क्लेशदादभ्रकण्टका।
यावन्न परशुः प्राप्तो देवी भागवताभिधः ।।
तावत् क्लेशावहं नृणामुपसर्गमहातमः ।
यावन्नोदयं प्राप्तो देवीभागवतोष्णुगः ।।

'नाना प्रकार के तीर्थ, पुराण और व्रत तभी तक गरजते हैं, जब तक मनुष्य देवीभागवत को सम्यक् रूप से नहीं सुन लेता । नाना प्रकार के क्लेश रूपी काँटों से युक्त पाप का जंगल तभी तक फलता-फूलता रहता है जब तक देवीभागवत रूपी कठोर कुठार नहीं प्राप्त होता । महामारी जैसा घोर अंधकार तभी तक रहता है जब तक देवीभागवत जैसे सूर्य का उदय नहीं होता ।

अत्यन्त पवित्रतम होने पर भी दुर्बोध होने के कारण अपौरुषेय वेद को भारतीय मनीषा ने सबके लिए ग्राह्य नहीं माना । वेद स्त्री, शूद्र तथा अन्त्यज के लिए अग्राह्य है । ऐसी स्थिति में उनको भी ज्ञान कैसे प्राप्त हो, वे मोक्ष के अधिकारी कैसे बनें - यह प्रश्न उठता है ।

अव्रतानां द्विजबधूनां वेदेष्वनधिकारिणाम् ।
स्त्रीणां दुर्मेधसां नृणां धर्मज्ञानं कथं भवेत् ।।

अनधिकारी लोग भी वेदसंचित ज्ञान - राशि का लाभ प्राप्त कर सकें - इस उद्देश्य से महर्षि व्यास ने जो स्वयं भगवान् के अवतार हैं, **अव्रतानां द्विजबधूनां वेदेष्वनधिकारिणाम्** अठारह पुराण

और शतसाहस्त्रीसंहिता महाभारत की रचना की—

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्'

अर्थात् इतिहास और पुराणों के द्वारा वेद का तात्पर्य हृदयंगम करना चाहिये ।

स्वर्ग का अमृत वस्तु मात्र है और परिच्छिन्न है । जो उसे पियेगा, वही अमर होगा । कथा-अमृत वस्तु नहीं भाव है । भाव सर्वव्यापी और काल-निरपेक्ष होता है । इसीलिए कथा, अमृत की तुलना में स्वगीर्य अमृत अत्यन्त तुच्छ है—

सुधा पिबन्नेक एव नरः स्यादजरामरः ।
देव्याः कथामृतं कुर्यात् कुलमेवाजरामरम्।।

अमृत पीने से एक मनुष्य अजर-अमर होता है, किन्तु देवी-कथा रूपी अमृत पीने से सम्पूर्ण कुल तर जाता है ।

देवीभागवत को सतीपुराण, देवीपुराण भी कहते हैं । मेरे अपने मत से इसे शक्तिपुराण भी कह सकते हैं । 'सर्वे काला व्रतात्मकाः' के अनुसार देवीभागवत की कथा कभी भी कहीं भी कही और सुनी जा सकती है । किन्तु, आश्विन, चैत्र, माघ तथा आषाढ़— इन महीनों के चारों नवरात्रों में इस पुराण के पाठ और कथा-श्रवण का विशेष फल प्राप्त होता है ।

देवीभागवत का श्रवण भुक्ति-मुक्ति देने के साथ-साथ तात्कालिक अभीष्ट फल भी देने वाला है । वसुदेव ने यह कथा सुनी तो उनके पुत्र श्रीकृष्ण पर लगा स्यमन्तक मणि-हरण का कलंक धुल गया, साथ ही मणि की खोज में गये श्रीकृष्ण सकुशल अपने पिता के पास वापस भी लौट आये । देवीभागवत की माहात्म्य-कथा से स्पष्ट है कि इसके पाँच बार कथा-श्रवण से लोकबन्ध्य पुत्र की प्राप्ति होती है । देवीभागवत की कथा सुनने से महाराज दुर्दम को रैवत नामक मन्वन्तराधिप पुत्र की प्राप्ति हुई ।

देवीगीता और भगवद्गीता का तुलनात्मक अध्ययन

देवीगीता के सप्तम स्कन्ध में बत्तीसवें अध्याय से लेकर चालीसवें अध्याय तक का प्रसंग 'देवीगीता' नाम से प्रसिद्ध है । 'देवीगीता' नाम इसलिए कि भुवनेश्वरी ने स्वयं अपने मुख से इसका उच्चारण किया है । इसलिए यह परम पवित्र वाणी नित्य सेवनीय है । देवीगीता और भगवद्गीता के बहुत से अंशों की तुलना की जा सकती है । कुछ अन्तर भी हैं, जो इन दोनों का वैशिष्ट्य है । इस आलेख में देवीगीता और भगवद्गीता के साम्य और वैषम्य पर प्रकाश डाला जाएगा ।

जैसे देवीगीता जगन्माता भुवनेश्वरी देवी के श्रीमुख से निकली हुई वाणी है, वैसे ही भगवद्गीता जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से नि:सृत वाणी है । देवीगीता में कुल नौ अध्याय हैं, जो देवी के नौ स्वरूपों का भी संकेत है । यह ग्रन्थ के सप्तम स्कन्ध में आया है । इसमें कुल चार सौ तैंतीस श्लोक हैं । भगवद्गीता में अठारह अध्याय हैं और श्लोकों की संख्या सात सौ से कुछ अधिक है । देवीगीता और भगवद्गीता दोनों में संस्कृत के सर्वाधिक व्यवहृत और संक्षिप्त अनुष्टुप् छन्द का व्यवहार हुआ है । दोनों की भाषा प्रासादिक है । देवीगीता का अवतरण देवभूमि हिमालय में देवताओं के मध्य हुआ है । मुख्य श्रोता हिमालय हैं, जिनके यहाँ आगे चलकर भुवनेश्वरी का गौरी के रूप में अवतार होना है । भगवद्गीता का अवतरण कौरव और पाण्डवों की सेना के मध्य युद्ध-क्षेत्र कुरुक्षेत्र में होता है। यहाँ श्रीकृष्ण वक्ता हैं और अर्जुन श्रोता । देवीगीता के अवतरण का हेतु हिमालय द्वारा देवी के स्वरूप को जानने की इच्छा है । हिमालय की उत्कट भक्ति से देवी प्रसन्न होकर अपने स्वरूप का व्याख्यान करती है । उधर, भगवद्गीता में अर्जुन किंकर्त्तव्यविमूढ होकर अपने क्षत्रियोचित कर्त्तव्य युद्ध से पलायन करने की सोच रहा है । इसलिए उसके कर्त्तव्य का स्मरण दिलाते हुए युद्धरत होने के लिए श्रीकृष्ण गीता का उपदेश करते हैं । देवीगीता और भगवद्गीता के विषय-वस्तु में एक अन्तर यह है कि जहाँ देवीगीता की शैली वर्णनात्मक है, वहीं भगवद्गीता अधिकतर उपदेशात्मक है । देवीगीता में देवी-तत्त्व की जिज्ञासा का समाधान है, भगवद्गीता में जिज्ञासा-समाधान के साथ-साथ प्रेरणा और कर्त्तव्योन्मुखता भी है । हिमालय देवी के भक्त हैं और भविष्य में होने वाले देवी के अवतार 'गौरी' के पिता भी । उधर, अर्जुन श्रीकृष्ण का भक्त, सखा और रिश्ते में साला है । हिमालय अपने घर में गौरी के अवतरण की सम्भावना से प्रसन्न होकर देवी से ज्ञान, भक्ति और योग का स्वरूप जानने की इच्छा करते हैं । अर्जुन बन्धु-बान्धवों के भावी विनाश का विचार करके दु:खी होकर और तात्कालिक रूप से कर्त्तव्यच्युत होकर शरणागत होता है— **'शिष्यस्तेऽहं साधि मां त्वां प्रपन्नम् ।** हिमालय देवी की कृपा से अभिभूत होकर सोत्साह जिज्ञासा करते हैं, जबकि अर्जुन कार्पण्यदोषोपहतस्वभाव और धर्मसम्मूढ होकर प्रश्न करता है ।

भगवद्गीता का प्रथम अध्याय गीता में वर्णित भगवत्तत्व की भूमिका है । देवीगीता में ऐसी कोई

भूमिका नहीं है । देवी सीधे-सीधे अपने संवित् स्वरूप का वर्णन करती हैं । भगवद्गीता के प्रथम छः अध्याय कर्मयोग, मध्य के छः अध्याय भक्तियोग तथा अन्तिम छः अध्याय ज्ञानयोग से मुख्यतया सम्बन्धित हैं । देवीगीता का आरम्भिक अंश देवी के संवित् स्वरूप (शिव-शिवात्मक ज्ञान) के दर्शन से सम्बन्धित है । संवित् ज्ञान की वह स्थिति है जो अचिन्त्य है किन्तु समस्त ज्ञान का प्रकाशक है । वह आदि-मध्य-अन्त तथा उत्पत्ति-स्थिति-संहार से परे है । उसका कभी अभाव नहीं होता । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में वह अभेद रूप से स्थित है, साथ ही इनसे परे भी है ।

देवीगीता में पञ्चीकरण रूप से सृष्टि प्रक्रिया का सविस्तर वर्णन है । भगवद्गीता के नवें अध्याय में सृष्टि का संक्षिप्त वर्णन है । देवीगीता में आष्टांगिक योग-वर्णन में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बन्धों का विवरण आया है, साथ ही तन्त्र में वर्णित पूजा-विधान का विस्तार से वर्णन हुआ है । इस प्रकार देवी के योग में तन्त्र अन्तर्भुक्त है । हम कह सकते हैं कि देवीगीता का योग तन्त्रयोग है । भगवद्गीता के छठे अध्याय में संक्षेप में राजयोग का वर्णन हुआ है । इस प्रकार देवीगीता बाह्य आचार, कर्मकाण्ड को महत्त्व देती है, किन्तु भगवद्गीता आन्तरिक साधना और मनःसंशम पर बल देती है । इसमें अष्टांग योग का पृथक् वर्णन न करके राजयोग के अन्तर्गत सबको एक साथ समाहित कर लिया गया है ।

भगवद्गीता के अन्त में ज्ञान और भक्ति को एक दूसरे का पूरक बताकर अन्ततः सर्वतोभावेन भगवच्छरणागति को कल्याण का श्रेष्ठ साधन बताया गया है । देवीगीता में भी माना गया है कि ज्ञान की पराकाष्ठा परा भक्ति है (सा काष्ठा सा परा गतिः), जहाँ ज्ञान और भक्ति में कोई अन्तर नहीं रह जाता । क्योंकि देवी स्वयं कहती हैं कि उच्चतम भूमिका पर पहुँचने पर मुझमें और भक्त में कोई भेद नहीं रह जाता । इस प्रकार देवीभागवत के अनुसार जीव और ब्रह्म की एकता ही योग है—

न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले ।
ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगे योगविशारदाः ।।

देवीगीता में अधिकारी भेद से देवी-पूजा की कई विधियों का वर्णन है । पूजा की दो विधियाँ मुख्य हैं - १-वैदिकी, २- तान्त्रिकी । वैदिकी विधि भी दो प्रकार की है - निर्गुण और सगुण । तान्त्रिकी पूजा तीन प्रकार की है - सात्त्विकी, राजसी और तामसी । भगवद्गीता की पूजा-विधि सरल है क्योंकि इसमें बाह्य उपचारों की आवश्यकता नहीं है ।

सर्वतोभावेन भगवान् का प्रसन्न हो जाना ही सर्वश्रेष्ठ पूजा है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।

देवी ने अपने नख रूपी दर्पण में देवताओं को अपने विश्वरूप का दर्शन कराया है । श्रीकृष्ण

ने अपने ही स्वरूप में विश्वरूप के साथ-साथ कौरवों और पाण्डवों के विनाश का दर्शन करा दिया है । देवीगीता में देवी ने स्थूल रूप से अपने विभिन्न पीठों और तीर्थों का विस्तार से वर्णन किया है, साथ ही यह भी कह दिया है—

सर्वं दृश्यं मम स्थानं सर्वे काला व्रतात्मकाः ।
उत्सवाः सर्वकालेषु यतोऽहं सर्वरूपिणी ।।

भगवद्गीता में पीठ, तीर्थ, व्रत आदि का विवरण नहीं है । इसके सर्वात्मवादी दर्शन का निर्वचन इस रूप में हुआ है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणस्यामि स च न मे प्रणस्यति ।।

तुलनीय स्थल

देवीभा० ३२-२

अहमेवास पूर्वं तु नान्यत्किञ्चिन्नगाधिप ।
तदात्मरुपं चित्संवित्परब्रह्मैकनामकम् ।।

देवी कहती हैं - पूर्व में केवल मैं ही थी और कुछ भी नहीं था । उस समय मेरा रूप चित् , संवित् (ज्ञानस्वरूप) और परब्रह्म नाम वाला था ।

भगव० १०-८

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ।।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं - मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति का कारण हूँ और मुझसे ही सब जगत् चेष्टा करता है । इस प्रकार समझकर श्रद्धा और भक्ति से युक्त बुद्धिमान भक्तजन मुझ परमेश्वर को ही निरन्तर भजते हैं ।

देवीभा० ३२-२५,२६

प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु सर्वकारणकारणम् ।
तत्त्वानामादिभूतं च सच्चिदानन्दविग्रहम् ।।
सर्वकर्मसाक्षिभूतमिच्छाज्ञानक्रियाश्रयम् ।
ह्रींकारमन्त्रवाच्यं तदादितत्त्वं तदुच्यते ।।

समस्त शास्त्रों में इसे (मायाशबल सृष्टि का आदि कारण) सभी कारणों का कारण, महत् अहंकार आदि तत्त्वों का आदि कारण तथा सत् -चित् आनन्दमय विग्रह वाला बताया गया है ।।२५।।

उस रूप को सम्पूर्ण कर्मों का साक्षी, इच्छा-ज्ञान तथा क्रियाशक्ति का अधिष्ठान, ह्रींकार मन्त्र

का वाच्य (अर्थ) और आदि तत्त्व कहा गया है ।

भगव० ९-१८

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ।।

प्राप्त होने योग्य परमधाम, भरण-पोषण करने वाला, सबका स्वामी, शुभाशुभ को देखने वाला, सबका वासस्थान, शरण होने योग्य, प्रत्युपकार न चाहकर हित करने वाला, सबकी उत्पत्ति-प्रलय का हेतु, स्थिति का आधार, निधान, अविनाशी कारण मैं (कृष्ण) ही हूँ ।

देवीभा० ३३-५

उच्चनीचादिवस्तूनि भासयन्भास्करः सदा ।
न दुष्यति तथैवाहं दोषैर्लिप्ता कदापि न ।।

जिस प्रकार उत्तम और निकृष्ट - सभी वस्तुओं को सदा प्रकाशित करता हुआ सूर्य कभी भी दूषित नहीं होता, उसी प्रकार मैं भी उपाधियों के दोष से लिप्त नहीं होती ।

भगव० १३-३२

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ।।

जिसप्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होने के कारण किसी वस्तु से लिप्त नहीं होता, वैसे ही देह में सर्वत्र स्थित आत्मा (निर्गुण होने के कारण देह के गुणों से) लिप्त नहीं होता ।

देवीभा० ३३-२३,२४,२५

अपश्यंस्ते महादेव्या विराड् रूपं परात्परम् ।
द्यौर्मस्तकं भवेद्यस्य चन्द्रसूर्यौ च चक्षुषी ।।
दिशः श्रोत्रे वचो वेदाः प्राणी वायुः प्रकीर्तितः।
विश्वं हृदयमित्याहुः पृथिवी जघनं स्मृतम् ।।
नभस्तलं नाभिसरो ज्योतिष्चक्रमुरुस्थलम् ।
महर्लोकस्तु ग्रीवा स्याज्जनोलोको मुखं स्मृतम्।।

वे देवता महादेवी के उस परात्पर विराट् रूप का दर्शन करने लगे, जिसका मस्तक आकाश है, चन्द्रमा और सूर्य जिसके नेत्र हैं, दिशाएँ कान हैं और वेद वाणी हैं । वायु को उस रूप का प्राण कहा गया है । विश्व ही उसका हृदय कहा गया है और पृथ्वी उस रूप की जंघा कही गयी है ।

भगव० ११-१९,२०,२३

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।

पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वबिमदं तपन्तम्।।

हे परमेश्वर ! मैं आपको आदि, मध्य और अन्त से रहित, अनन्त सामर्थ्य से युक्त, अनन्त भुजाओं वाले, चन्द्र, सूर्य रूप नेत्रों वाले, प्रज्वलित अग्नि रूप मुख वाले और अपने तेज से इस जगत् को संतप्त करते हुए देखता हूँ ।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्।।

हे महात्मन् ! यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का सम्पूर्ण आकाश तथा सब दिशाएँ एक आपसे ही परिपूर्ण हैं तथा आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक अति व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं ।

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्।।

हे महाबाहो ! आपके बहुत मुख और नेत्रों वाले, बहुत हाथ, जंघा और पैरों वाले, बहुत उदरों वाले और बहुत-सी दाढों के कारण अत्यन्त विकराल महान् रूप को देखकर सब लोग व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल ही रहा हूँ ।

देवीभा० ३३-५४,५५,५६

इति भीतान्सुरान्दृष्ट्वा जगदम्बा कृपार्णवा ।
संहृत्य रूपं घोरं तद्दर्शयामस सुन्दरम् ।
पाशाङ्कुशवराभीतिधरं सर्वाङ्गकोमलम् ।
करुणापूर्णनयनं मन्दस्मितमुखाम्बुजम् ।।
दृष्ट्वा तत्सुन्दरं रूपं तदा भीतिविवर्जिताः ।
शान्तचित्ताः प्रणेमुस्ते हर्षगद्गदनिःस्वनाः ।।

देवताओं को भयभीत देखकर कृपासिन्धु जगदम्बा ने उस घोर रूप को छिपाकर और पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्रा से युक्त, समस्त कोमल अंगों वाले, करुणा से परिपूर्ण नेत्रों वाले एवं मन्द-मन्द मुस्कानयुक्त मुख-कमल वाले मनोहर रूप का दर्शन कराया ।

भगव० ११-५०

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा।।

वासुदेव भगवान् ने अर्जुन से इस प्रकार कहकर फिर वैसे ही अपने सौम्य मूर्ति का दर्शन कराकर अर्जुन को आश्वस्त कर दिया ।

देवीभा० ३४-४,५,६

क्रियाः करोति विविधा धर्माधर्मैकहेतवः ।
नानायोनीस्ततः प्राप्य सुखदुःखैश्च युज्यते ।।
पुनस्तत्संस्कृतिवशान्नानाकर्मरतः सदा ।
नानादेहान्समारप्नोति सुखदुःखैश्च युज्यते ।।
घटीयन्त्रवदेतस्य न विरामः कदापि हि ।
अज्ञानमेव मूलं स्यात्ततः कामः क्रियास्ततः।।

मनुष्य धर्म और अधर्म से युक्त नाना प्रकार की क्रियाएँ करता है जिससे अनेक योनियों में भटकता हुआ प्राणी सुख-दुःख प्राप्त करता है । इस प्रकार प्राक्तन संस्कारों के वशीभूत हुआ नाना प्रकार की देह प्राप्त करता है । घटीयन्त्र की भाँति जीव को कभी विश्राम नहीं मिलता । अज्ञान ही उसका कारण है। उसी अज्ञान से कामना और नाना क्रियाओं का प्रादुर्भाव होता है ।

भगव० १६-१०,११,१२

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्रहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ।।
चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुखाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ।।
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ।।

दम्भ, मान और मद से युक्त मनुष्य किसी प्रकार भी पूर्ण न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर अज्ञान से मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण करके और भ्रष्ट आचरणों को धारण करके संसार में विचरते हैं । वे लोग मृत्युपर्यन्त रहने वाली असंख्य चिन्ताओं का आश्रय लेने वाले, विषय-भोगों को भोगने में तत्पर रहने वाले और 'इतना ही सुख है' इस प्रकार मानने वाले होते हैं । इसलिए वे आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए काम-क्रोध के परायण होकर विषय-भोगों के लिए अन्यायपूर्वक धनादि पदार्थों को संग्रह करने की चेष्टा करते रहते हैं ।

देवीभा० ३४-३३

हतं चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।।

भगव० २-१९

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।।

दोनों श्लोकों का समान भाव है कि आत्मा न कभी मरता है और न कभी मारा जाता है । आत्मा अमर है ।

देवीभा० ३५-२

न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले ।
ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः ।।

योग न आकाश-मण्डल में है, न पृथ्वी तल पर । जीव और आत्मा का ऐक्य ही योग है ।

भगव० ६-२९

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।।

योगी सभी प्राणियों में अपनी आत्मा का और अपनी आत्मा में सभी प्राणियों का दर्शन करता है । इस प्रकार योगी समदर्शी होता है और सर्वत्र आत्मा का ही दर्शन करता है ।

देवीभा० ३६-९

ओमित्येवं ध्यायेदात्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्।
दिव्ये ब्रह्मपुरे व्योम्नि आत्मा सम्प्रतिष्ठितः ।।

संसार-समुद्र से पार होने के लिए 'ओम् ' इस प्रणव मन्त्र के जप से परमात्मा का ध्यान करो। आपका कल्याण हो । वह परमात्मा अन्धकार (अज्ञान) से सर्वथा परे ब्रह्मलोक स्वरूप दिव्य आकाश (हृदय) में प्रतिष्ठित है ।

भगव० ८-१३

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ।।

जो पुरुष ॐ' इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है, वह परम गति को प्राप्त होता है ।

देवीभा० ३७-३६, ३७

यस्तु वैराग्यवानेव ज्ञानहीनो म्रियेत् चेत् ।
ब्रह्मलोके वसेन्नित्यं यावत्कल्पं ततः परम् ।।
शुचीनां श्रीमतां गेहे भवेत्तस्य जनिः पुनः ।
करोति साधनं पश्चात्ततो ज्ञानं हि जायते ।।

यदि मनुष्य वैराग्यवान् होकर पूर्ण ज्ञान के बिना मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो एक कल्प तक निरन्तर ब्रह्मलोक में निवास करता है । उसके बाद पवित्र श्रीमान् पुरुषों के घर में उसका जन्म होता

है । वहाँ पर वह साधना करता है और उसमें ज्ञान का उदय होता है ।

भगव० ४१,४२,४३,४४,४५

प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृदशम ।।
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ।।
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।।
प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ।।

योगभ्रष्ट पुरुष उत्तम लोकों को प्राप्त करके शुद्ध आचरण वाले श्रीमान् पुरुष के घर जन्म लेता है अथवा वह योगियों के कुल में ही जन्म लेता है । वहाँ उस पहले शरीर में संग्रह किये हुए बुद्धि-संयोग को पाकर फिर से सिद्धि प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है और समतायोग में सन्निष्ठ होकर वेद में कहे हुए सकाम कर्मों के फल का उल्लंघन कर जाता है । इस प्रकार सब प्रकार के दोष-पाप से मुक्त होकर परमगति को प्राप्त होता है ।

देवीभा० ३९-२२

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा वेषान्विभर्म्यहम् ।।

देवी हिमालय से कहती हैं - जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की बढ़ोत्तरी होती है, तब-तब मैं विभिन्न अवतार धारण करती हूँ ।

भगव० ४-७,८

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे ।।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं - जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म बढ़ता है तब-तब मैं साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ । साधु पुरुषों के रक्षण और दुष्टों के संहार हेतु

मैं प्रत्येक युग में प्रकट होता हूँ ।।
देवीभा० ४०-३४,३५,३६

इदं तु गीताशास्त्रं मे नाशिष्याय वदेत् क्वचित्।
नाभक्ताय प्रदातव्यं न धूर्ताय च दुर्हृदे ।।
एतत्प्रकाशनं मातुरुद्घाटनमुरोजयोः ।
तस्मादवश्यं यत्नेन गोपनीयमिदं सदा ।।
देयं भक्ताय शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय चैव हि ।
सुशीलाय सुवेषाय देवीभक्तियुताय च ।।

देवी पर्वतराज हिमालय से कहती हैं - जो शिष्य नहीं है, उसे कभी भी मेरे इस गीताशास्त्र को बताना नहीं चाहिए । साथ ही, जो भक्त न हो, धूर्त तथा दुरात्मा हो, उसे भी इसका उपदेश नहीं देना चाहिए । अनधिकारी के समक्ष इसे प्रकाशित करना अपनी माता के वक्ष को प्रकट करने के समान है, अत: इसे सदा प्रयत्नपूर्वक अवश्य गोपनीय रखना चाहिए ।
भगव० १८-६७

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं - तुझे यह गीताशास्त्ररूप उपदेश किसी भी काल में न तो तपरहित मनुष्य से कहना चाहिए, न ही भक्तिरहित मनुष्य से । साथ ही, जो सुनने की इच्छा नहीं करता और मुझमें दोष- दृष्टि रखता है, उससे भी नहीं कहना चाहिए ।

प्रज्ञादेवीभागवत

देवीभागवत श्रीमद्भागवत की तरह मोक्ष-प्रतिपादक और मोक्ष-साधक ग्रन्थ है । इसमें आयी हुई आधिकारिक और अवान्तर कथाएँ अन्तत: मोक्ष-पर्यवसायिनी हैं, चाहे वह सावित्री-सत्यवान की कथा हो अथवा नारद-पर्वत मुनि की । यह मुमुक्षुओं के लिए उपादेय वैसे ही है, जैसे भगवद्गीता और महाभारत । महाभारत में यद्यपि कौरव-पाण्डव युद्ध का वर्णन है किन्तु अन्तत: वह है शान्ति -रस-पर्यवसायी मोक्ष-ग्रन्थ । इस मोक्ष की तुलना में अमृत और स्वर्ग जैसी अतिवांछनीय वस्तुएँ अत्यन्त तुच्छ हैं ।

यह सर्वतोभावेन स्वीकार किया गया है कि ज्ञान से ही मुक्ति होती है । देवीभागवत ज्ञान का भण्डार है । इसमें व्यावहारिक ज्ञान के साथ-साथ मोक्ष-विषयक ज्ञान भी प्रभूत मात्रा में है । जैसे ब्रह्माण्ड गोल है, वैसे समय भी एकरेखीय न होकर चक्रीय है । तभी तो मन्वन्तरों और युगों, वर्षों और दिनों का आवर्तन होता रहता है । जैसे ब्रह्माण्ड प्रतिक्षण परिवर्तनशील है, वैसे ही समय भी प्रतिक्षण

परिवर्तन की ओर अग्रसर है । युगों की पुनरावृत्ति भले होती रहे, परन्तु प्रत्येक युग भिन्न-भिन्न होगा। दो सतयुग या दो द्वापर कभी एक जैसे नहीं हो सकते । तभी तो प्रत्येक द्वापर में व्यास के नाम अलग-अलग हो जाते हैं । अट्ठाईसवें द्वापर के व्यास का नाम 'कृष्णद्वैपायन' है तो उन्तीसवें द्वापर के व्यास का नाम 'द्रौणि' होगा ।

प्रेम की भूख और अमरत्व की कामना प्राणि मात्र में है । सर्वाधिक प्रेम की सम्भावना वहीं होती है जहाँ द्वैत कमसे कम हो, यानि अपने सदृश व्यक्ति में ही प्रेम प्रगाढ़ होता है । यही कारण है कि पुत्र में प्रेम सर्वाधिक होता है, क्योंकि 'आत्मा वै जायते पुत्रः' । गौरैया का अपने बच्चों के प्रति प्रेम नैसर्गिक है । व्यास की पुत्रोत्पादन कामना भी स्वाभाविक है, क्योंकि पुत्र अपना ही स्वरूप होता है । पुत्र पिता के सर्वाधिक प्रेम का आस्पद है । साथ ही, सन्तान-परम्परा अविच्छिन्न रहने से पिता को अपनी अमरता का आभास होता है । पुत्रोत्पादन से स्वर्ग की प्राप्ति, वंश-परम्परा का निर्वाह आदि अनेक बातें हैं कि व्याह को न चाहते हुए भी पुत्रोत्पादन की भावना करनी पड़ती है । स्वाभाविक रूप से न सही, अरणि-गर्भ से पुत्र शुक्रदेव का जन्म होता है । किन्तु पुत्र से सदैव सुख ही प्राप्त हो, यह आवश्यक नहीं है । यह भी हम महर्षि व्यास के जीवन-वृत्त से सीखते हैं ।

स्वार्थ के वशीभूत होकर ही समस्त लोक पाप-कर्म में प्रवृत्त होता है । यज्ञ के चतुर्दिक् बिखरे हव्य शेष को खाने की लालच में पड़कर वम्री ब्रह्मा के आदेश से विष्णु के धनुष के अग्र भाग को खाकर निद्रा-भङ्ग रूप पाप करता है । जिसे हम परमार्थ कहते हैं— जप-तप पूजा,ध्यान, दान, यज्ञादि वह भी स्वार्थ ही है । क्योंकि हम किसी न किसी कामना से परमार्थ में प्रवृत्त होते हैं । परमार्थ तो वह है जो कामनारहित हो ।

भाग्य और पुरुषार्थ दोनों समान रूप से बली हैं । जो होना होता है, वह होकर रहता है, उसे टाला नहीं जा सकता— 'अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते' । फिर भी भाग्य के भरोसे निरुद्यम होकर बैठना ठीक नहीं है । उद्यम हमारी अप्रतिहत क्षमता का द्योतक है, निरुद्यम अनुत्साह का । विष्णु का सिर कट जाने पर अत्यन्त निराश देवताओं को ब्रह्मा देवी की स्तुति करने की प्रेरणा देते हैं । देवताओं की स्तुति से प्रसन्न देवी देवताओं को वरदान देती हैं और विष्णु वाजिशिरा होकर स्वस्थ हो जाते हैं। विष्णु का हयग्रीव अवतार होता है ।

सम्भवतः दूरदर्शिता कम होने के कारण लोक में स्त्री को साधारणतः मूर्ख समझा जाता है । देवीभागवत में इसका ज्वलन्त उदाहरण है विष्णु-पत्नी लक्ष्मी । एक बार विष्णु लक्ष्मी के मुख को देखकर हँस पड़ते हैं । किसी को वैसे भी अचानक हँसी आ सकती है— बिना किसी कारण । लक्ष्मी ने आगा-पीछा विचार किये बिना क्रुद्ध होकर विष्णु को शाप दे देती हैं । 'तुम्हारा यह सिर कटकर गिर जाये' । तत्क्षण विष्णु का सिर कटकर लवणसागर में जा गिरता है । अपने वैधव्य का स्मरण करके

लक्ष्मी को बाद में बहुत पछताना पड़ता है । लोक में स्त्रियों का ऐसा व्यवहार यदा-कदा देखने को मिलता हे । पति के साधारण से व्यवहार पर पत्नी का इस प्रकार क्रुद्ध होकर अपना सर्वनाश करना अस्वाभाविक सा लगता है, पर असम्भव नहीं । शायद महर्षि व्यास बताना चाहते हैं कि जब लोकोत्तर देव-चरितों में इस प्रकार दोष आ सकते हैं, तब साधारण मनुष्यों में ऐसे दोष आयें तो साधारण सी बात है । कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि महामाया की माया सर्वातिशायी है, उससे कोई बच नहीं सकता । वह किससे कब क्या करा दे, यह कहा नहीं जा सकता । स्त्रीसुलभ दोषों की ओर संकेत करते हुए महर्षि व्यास कहते हैं—

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः।।

मिथ्याचरण, साहस, माया, मूर्खता, अति लोभ, अपवित्रता तथा दयाहीनता— ये स्त्रियों के स्वाभाविक दोष हैं । मानस में गोस्वामीजी कहते हैं —

साहस अनृत चपलता माया । भय अविवेक अशौच अदाया ।

पाँचों ज्ञानेन्द्रियों में नेत्र सर्वश्रेष्ठ इन्द्रिय मानी गयी है । नेत्र से वस्तु का परिज्ञान होता है । किन्तु यह ज्ञान प्रायः स्थूल होता है, और कभी-कभी भ्रामक भी । इसलिए नेत्र की तुलना में श्रवणेन्द्रिय को अधिक मान्यता मिली है । श्रवणेन्द्रिय से प्राप्त शास्त्रीय और लोकानुभव का ज्ञान सच्चा होता है, सार्वजनीन और शाश्वत होता है । इसलिए श्रवण का विशेष महत्त्व है । शास्त्रों के श्रवण से पशुवत् मानव-जीवन देवतुल्य हो जाता है । इस दृष्टि से रसना और घ्राणेन्द्रिय का सामान्य महत्त्व है । स्पर्श-सुख आनन्ददायी होने के कारण स्पृहणीय अवश्य है, किन्तु उसका उपयोग सन्तानोत्पादन की दृष्टि से किया जाय तो अच्छा, अन्यथा हमारे जीवन को पशुतुल्य बना सकता है । देवी के स्पर्श-सुख की चाह के चलते सभी दैत्य मृत्यु के गाल में चले जाते हैं । रावण तो अपने साथ समस्त कुल का ही विनाश करा देता है । उस विनाश में स्पर्श-सुख की ही कामना थी ।

जो जिसके वश में होता है उसे उसका दास ही समझना चाहिये । विष्णु निद्रा के वश में हैं इसलिए वे निद्रा के दास हुए और निद्रा उनकी स्वामिनी । निद्रा की अधिष्ठात्री देवी भगवती हैं । जड़-चेतन से लेकर ब्रह्मा-विष्णु-महेश सब के सब निद्रा के वशीभूत होते हैं । निद्रावस्था में सब की स्थिति एक जैसी होती है— सब प्रकार के भाव से रहित, यहाँ तक कि अपने होने तक का भी भान नहीं रहता। इसीलिए मनीषी कहते हैं— परमेश्वर ने किसी के साथ पक्षपात नहीं किया है, वह समदर्शी है । निद्रा से मुक्त होने के बाद ही विष्णु मधु-कैटभ का संहार कर पाते हैं ।

सृष्टि के मूल में अहंकार है । अहंकार के वशीभूत होकर मनुष्य अच्छे-बुरे कर्म करता है । सात्त्विक अहंकार से अच्छे और तामसिक अहंकार से बुरे कर्म होते हैं । जब मधु-कैटभ को अहंकार

हो गया कि विष्णु पर विजय प्राप्त करने वाले हम याचक कैसे हो सकते हैं, वे अपने वरदान की बात भूलकर विष्णु से वरदान माँगने को कहते हैं । अहंकार के अन्धकार में उनका विवेक-दीप बुझ जाता है और वे विष्णु द्वारा मृत्यु को प्राप्त होते हैं ।

प्राणिमात्र में सन्तान प्राप्त करने की इच्छा स्वाभाविक होती है । महातपस्वी और ज्ञानी महर्षि व्यास को भी अपनी सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा होती है किन्तु वे दार-संग्रह इसलिए नहीं करना चाहते क्योंकि स्त्री सदा बन्धनरूप और स्वेच्छासुख-विधायिनी होती है । दो अरणियों के परस्पर संघर्षण से उत्पन्न अग्नि को देखकर उनके मन में सन्तानोत्पादन की इच्छा उत्कट हो जाती है । संयोग से उसी समय घृताची अप्सरा भी दृष्टि-पथ में आती है । उसे देखकर व्यास का वीर्य स्खलित हो जाता है । व्यास के इस चरित्र का मर्म है कि प्रकृति पर विजय प्राप्त करना सहज नहीं है । मनुष्य सामान्यत: काल और परिस्थितियों का दास है । विशेष-विशेष काल और परिस्थिति में हमारे व्रत, नियम, साधना सब व्यर्थ हो जाते हैं और हम सामान्य प्राणी की श्रेणी में आ जाते हैं । महाभारत में गृहस्थाश्रम की प्रशंसा की गयी है और चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम को श्रेष्ठ माना गया है । देवीभागवत में भी गृहस्थाश्रम को श्रेष्ठ माना गया है, यदि वह मर्यादा के अनुरूप हो । पुत्र पाने की इच्छा होते हुए भी व्यास घृताची अप्सरा को पत्नी के रूप में नहीं स्वीकार कर सकते; क्योंकि वह अप्सरा है, स्वर्ग की वेश्या है, साथ ही पुत्रोत्पादन में सक्षम भी नहीं है । गृहस्थाश्रम की महिमा का बखान करते हुए व्यास कहते हैं—

गृहस्थाश्रमसम्भूतं सुखदं पुत्रकामदम् ।
स्वर्गदं च तथा प्रोक्तं ज्ञानिनां मोक्षदं तथा ।।

अर्थात् गृहस्थाश्रम पुत्र-प्राप्ति की कामना पूर्ण करने वाला, स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाला तथा ज्ञानियों को मोक्ष देने वाला कहा गया है ।

समान रूप-सौन्दर्य वाले युगल का परस्पर आकर्षण स्वाभाविक है । कभी-कभी मर्यादा का बन्धन तोड़कर व्यक्ति आकर्षक अनैतिक आचरण की ओर अग्रसर हो जाता है । चन्द्रमा और बृहस्पति की पत्नी तारा के साथ यही होता है । दोनों एक दूसरे को चाहने लगते हैं और मर्यादा का बन्धन तोड़कर साथ-साथ रहने लगते हैं । गुरु और यजमान के बीच पवित्र और पारिवारिक रिश्ता होता ह। इसीलिए बृहस्पति अपनी पत्नी तारा को चन्द्रमा के घर जाने देते हैं । यद्यपि चन्द्रमा की अट्ठाईस सुलक्षणा पत्नियाँ हैं । फिर भी वे गुरु-पत्नी तारा पर आसक्त हो जाते हैं । उधर तारा भी उनमें अनुरक्त हो जाती है । स्त्री-पुरुष में आकर्षण यदि दुर्निवार हो जाय तो परिस्थिति विकट हो जाती है । बृहस्पति के लाख चेष्टा करने पर भी चन्द्रमा तारा को विदा नहीं करते । अन्त युद्ध की नौबत आ जाती है और युद्ध शुरू भी हो जाता है । फिर ब्रह्मा के हस्तक्षेप से चन्द्रमा तारा को लौटाते हैं और युद्ध का विराम

होता है। तारा और चन्द्रमा के प्रेम-प्रसंग के अन्तर्गत कुछ बातें ध्यातव्य हैं । पहली तो यह कि अनिन्द्य-सौन्दर्य वाली युवती कभी भी फिसल सकती है क्योंकि 'स्त्रियो हि चंचला:' जैसा कि तारा के साथ हुआ। आज-कल तो मौसेरे और चचेरे भाई-बहन भी बन्धन तोड़ते दिखाई पड़ रहे हैं । दूसरी बात, समान रूप-गुण वाले दम्पती में ही प्रेम सम्भव है । यदि कहीं विषमता आयी तो पारस्परिक आकर्षण कम होने से विचलन की स्थिति बन सकती है । प्रस्तुत प्रसंग में महान् ज्ञानी और गुरु-पदवीधारी होते हुए भी बृहस्पति चन्द्रमा की तुलना में सर्वांगसुन्दरी तारा के योग्य नहीं प्रतीत होते । बृहस्पति की तुलना में चन्द्रमा अधिक तेजस्वी और दुर्धर्ष हैं । चन्द्रमा बृहस्पति की कमजोरी भी जानते हैं । बृहस्पति ने अपने छोटे भाई की गर्भिणी पत्नी के साथ बलात्कार किया था । चन्द्रमा जानते हैं कि क्रोधाकुल बृहस्पति का शाप उन पर नहीं लगेगा, अलग से पुण्य ही क्षीण होगा । बृहस्पति की भर्त्सना करते हुए चन्द्रमा कहते हैं—

क्रोधात्ते तु दुराराध्या ब्राह्मणाः क्रोधवर्जिताः।
पूजार्हा धर्मशास्त्रज्ञा वर्जनीयास्ततोऽन्यथा ।।

अर्थात् क्रोध के कारण ब्राह्मण पूजा के योग्य नहीं रह जाते । क्रोधरहित तथा धर्मशास्त्र को जानने वाले ब्राह्मण पूजा के योग्य हैं और इन गुणों से हीन ब्राह्मण त्याज्य होते हैं ।

साथ ही, अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए बार्हस्पत्य मत उद्धृत करते हैं— 'न स्त्री दुष्यति चारेण न विप्रो वेदकर्मणा' । अर्थात् संसर्ग से स्त्री और वेद-कर्म से ब्राह्मण दूषित नहीं होते ।

अपना पक्ष रखते हुए चन्द्रमा कहते हैं कि 'अपने समान गुण-सम्पन्न पति पर ही पत्नी का प्रेम स्थिर रहता है और—

'भिक्षुकस्य गृहे योग्या नेदृशी वरवर्णिनी ।'

ऐसा प्रतीत होता है कि अपने अनुरूप पति न पाकर तारा अपने पति बृहस्पति से उदासीन होकर मन-बहलाव के लिए यजमान चन्द्रमा के यहाँ चली गयी थी और वह स्वयं वहाँ से नहीं आना चाहती थी । यदि वह स्वयं आना चाहती तो चन्द्रमा कैसे रोक सकते थे? तारा को लौटाने के लिए जब दूत इन्द्र का सन्देश लेकर चन्द्रमा के पास पहुँचता है, तब चन्द्रमा दूत से नम्रतापूर्वक उत्तर देते हैं—

परोपदेशे कुशला भवन्ति बहवो जनाः ।
दुर्लभस्तु स्वयं कर्त्ता प्राप्ते कर्मणि सर्वदा ।।
स्वकीयं बलिनं सर्वं दुर्बलानां न किञ्चन
स्वीया च परकीया च भ्रमोऽदयं मन्दचेतसाम्।।
तारा मय्यनुरक्ता च यथा न च तथा गुरौ ।

अनुरक्ता कथं त्याज्या धर्मतो न्यायतस्तथ।।
गृहारम्भस्तु रक्तायां विरक्तायां कथं भवेत् ।
विरक्तेयं यदा जाता चकमेऽनुजकामिनीम् ।।

'दूसरों को उपदेश देने वाले बहुत लोग हैं, परन्तु उस उपदेश का पालन करने वाले दुर्लभ हैं। शक्तिशाली लोगों के लिए सब कुछ प्रशंसनीय है, परन्तु दुर्बलों के लिए कुछ भी नहीं । स्वकीया और परकीया का भेद मूर्ख लोगों का भ्रम है । तारा मुझमें जितनी अनुरक्त है, उतना गुरु में नहीं । ऐसी अनुरक्त स्त्री का त्याग किस धर्म अथवा न्याय से किया जाय? गृहस्थ का कार्य तो अनुरक्त स्त्री में ही सम्भव है । विरक्त स्त्री से गृहस्थ का कार्य कैसे सम्भव है? जब तारा बृहस्पति से विरक्त हुई तभी तो उन्होंने अनुज-पत्नी की इच्छा की' ।

देव-लोक भोग-भूमि है और मर्त्यलोक कर्म-भूमि । भोग की तुलना में कर्म अधिक प्रशस्त है, इसीलिए देवताओं की तुलना में मानव श्रेष्ठ माना गया है । देवताओं और मनुष्यों का एक दूसरे के लोक में जाना असम्भव नहीं था । अपरिहार्य कारण और उत्कट तपस्या के बल पर कोई स्वर्ग में जा सकता था और वहाँ से लौट भी सकता था । अर्जुन इसका उदाहरण है । और भी उदाहरण हैं । महाराज रैवत अपनी कन्या रेवती के लिए वर पूछने की इच्छा से ब्रह्मलोक गये थे, जहाँ जाने पर युग बीत जाने पर भी रैवत और उनकी कन्या रेवती पर काल का प्रभाव नहीं पड़ा । यह ब्रह्मलोक का प्रभाव था । नर-नारायण की तपस्या में विघ्न उत्पन्न करने के लिए स्वयं इन्द्र आते हैं कामदेव के साथ । साथ ही सोलह हजार पचास अप्सरायें भी आती हैं । ऐसा लगता है कि स्वर्गीय अप्सराओं की कुल संख्या इतनी ही थी । अप्सराएँ चिरयुवती परमसुन्दरी और अनपत्या हैं । अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मेनका से शकुन्तला की उत्पत्ति की बात आती है, अन्यथा देवीभागवत के अनुसार अप्सराएँ अपत्यहीन हैं । वे स्वर्ग की अप्सराएँ हैं और हैं देवताओं की भोग्या । मानव अपने गुणों और कर्मों से देवोत्तर हो सकता है। इसीलिए स्वर्ग में गये हुए अर्जुन को उर्वशी ने चाहा था, पर अर्जुन ने उसमें मातृ-भावना करके उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया था और उर्वशी के शाप से कालान्तर में उन्हें बृहन्नला (नपुंसक) बनना पड़ा था । जैसे पृथ्वी पर तपोनिष्ठ ऋषि शक्ति-सम्पन्न होते थे, वैसे देवता भी शक्ति-सम्पन्न होते थे । हालाँकि उनकी शक्ति सीमित होती थी । देवता आत्म-रंजन के लिए भी भूलोक पर आते थे । महर्षि नारद और पर्वत मुनि इसी प्रकार राजा तालध्वज के महल में पधारते हैं ।

धर्म के पुत्र नारायण की जंघा से उत्पन्न स्वर्ग की सर्वोत्तम सुन्दरी उर्वशी शापग्रस्त होकर धरती पर आती है । शाप की अवधि व्यतीत होने तक किसी पुरुष का वरण करने की इच्छा से वह पुरूरवा के पास आती है । इससे अनुमान किया जा सकता है कि अपने समय में पुरूरवा शक्ति, ऐश्वर्य, गुण और ज्ञान में अप्रतिम रहे होंगे । किन्तु उर्वशी के जिन शर्तों को स्वीकार करके उसे अपनी अर्द्धांगिनी बनाते हैं, उससे उनकी किञ्चित् अदूरदर्शिता झलकती है, साथ ही उर्वशी के त्यागकर चले जाने पर

बच्चों की तरह विलाप करते हैं । उधर उर्वशी उनकी उपेक्षा करते हुए कहती है—

मूर्खोंडसि नृपशार्दूल ! ज्ञानं कुत्र गतं तव ।
क्वापि सख्यं न च स्त्रीणां वृकाणामिव पार्थिव।।
न विश्वासो हि कर्त्तव्यः स्त्रीषु चौरेषु पार्थिवैः।
गृहं गच्छ सुखं भुक्ष्व मा विषादे मनः कृथाः।।

हे राजेन्द्र ! आप मूर्ख हैं । आपका ज्ञान कहाँ चला गया ? जैसे भेड़ियों से मित्रता नहीं होती, वैसे स्त्रियों से भी किसी की मित्रता नहीं होती । राजा को स्त्री और चोर में विश्वास नहीं करना चाहिए। अपने घर जाइए, राज-पाट कीजिए, मन को दु:खी मत कीजिए' ।

ध्यातव्य है कि उर्वशी का चरित्र सामान्य नारी का चरित्र नहीं है । स्वैरिणी स्त्री ही उपर्युक्त कथन करके प्रेमी को दुत्कार सकती है । इससे प्रतीत होता है कि पुरूरवा के प्रति उर्वशी का प्रेम स्वाभाविक न होकर कृत्रिम था ।

अरणीगर्भसम्भूत शुकदेव अयोनिज है । वे गर्भयोगी हैं और हैं निवृत्तिमार्गी । पिता के लाख समझाने पर भी विण्मूत्रसम्भव नारी, पुत्र-पौत्र और गार्हस्थ्य के प्रति उनका आकर्षण नहीं होता । अन्तत: विदेहराज जनक के समझाने पर पितरों की कन्या पीवरी से विवाह करते हैं- वह भी गार्हस्थ्य धर्म के अनुष्ठान के निमित्त । फिर भी वे जीवन-पर्यन्त निवृत्तिपरायण ही रहते हैं और अन्त में पिता का भी त्याग करके कैलास पर्वत के शिखर पर चले जाते हैं और वहाँ से उड़कर आकाश में सूर्य के समान सुशोभित होते हैं ।

यहाँ विचार उठता है कि व्यास और शुकदेव दोनों का ज्ञान समान है, फिर भी एक संसार में अनुरक्त है और दूसरा विरक्त । जबकि व्यास का गार्हस्थ्य नहीं है और शुकदेव गृहस्थ हैं । यह है भगवती की महामाया !

शुकदेव-जनक संवाद में कुछ बातें बड़ी गूढ़ हैं । पहली तो यह कि घर-परिवार पुत्र-कलत्र बन्धन नहीं हैं । हमारा मन ही बन्धन का कारण है, साथ ही मुक्ति भी उसी से है । जिस चाभी से ताला बन्द होता है उसी से खुलता भी है । यदि मन राग-द्वेष से सर्वथा रहित हो जाय तो हम मुक्त ही हैं। आत्मा शुद्ध चैतन्य रूप है, वह बन्धन में कैसे आ सकता है? मन जड़ है, वह आत्मा को कैसे बाँध सकता है ? मन को अहमियत देना ही हमारे सुख-दु:ख का कारण है ।

मोक्षशास्त्र में मोक्ष के दो मार्ग बताये गये हैं— १- पिपीलिका मार्ग, २- विहंगम मार्ग । देवीभागवत के अनुसार जब शुकदेव जैसे गर्भयोगी के लिए भी विहंगम मार्ग प्रशस्त नहीं बताया गया है, तब साधारण साधकों के लिए तो वह सर्वथा वर्ज्य ही है । भारतीय मनीषा भी विहंगम मार्ग को प्राय: न स्वीकार करके पिपीलिका मार्ग को ही अपनाने का सुझाव देती है । पुरुषार्थ-चतुष्टय इसी

भावना की देन है । महाराज जनक शुकदेव मुनि को उपदेश करते हुए कहते हैं—

विहङ्गस्तरसा याति विघ्नशङ्कामुदस्य वै ।
श्रान्तो भवति विश्रम्य सुखं याति पिपीलिका।।

विघ्न-शंका के भय से कोई पक्षी तीव्र गति से आसमान में उड़ता है और परिणामत: थक जाता है । किन्तु चींटी सुखपूर्वक विश्राम ले-लेकर अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाती है । इसलिए—

आश्रमादाश्रमं गच्छेदिति शिष्टानुशासनम् ।

एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाना चाहिए, यही शास्त्र की मर्यादा है ।

मुनि पराशर और सत्यवती की कथाा का सन्देश है कि काम पर विजय प्राप्त करना साधारण काम नहीं है । अशक्त होना एक बात है और काम-जय करना दूसरी बात । दुर्गन्धियुक्त निषादकन्या में क्या देखा जो महाज्ञानी मुनि उस पर आसक्त हुए और उससे सम्बन्ध बनाये बिना न रह सके ? वह दुर्धर्ष काम ही था जिसने मुनि को वश में कर रखा था । निषादकन्या तो माध्यम बनी । जब काम वेगवान् हो जाता है तब असुन्दर भी सुन्दर, घृणित भी प्रिय और दुर्गन्ध भी सुगन्ध प्रतीत होने लगती है । आम जीवन में तो यही देखा जाता है । युवावस्था में पत्नी के सुन्दर मुख का लोभी प्रिय पति वृद्धावस्था में उसके विवर्ण रूप को देखकर सोचता है कि क्या यही रूप था जिसे मैं कभी इतना प्यार किया करता था ! क्योंकि तब न काम का उतना वेग रह पाता है और न प्रिय पत्नी के रूप में उतना आकर्षण ही । रूप-सौन्दर्य की क्षणिकता उसका ऐश्वर्य भी है और उसकी विपन्नता भी ।

मुनि पराशर और निषादकन्या सत्यवती का चरित लोक-गर्हित है, किन्तु उसका फल उज्ज्वलतम । दोनों के संसर्ग से महामुनि व्यास का जन्म होता है, जो आगे चलकर वेदों का विभाग करते हैं, विभिन्न पुराण-संहिताओं ओर महाभारत की रचना करते हैं । मुनि पराशर के चरित्र के सम्बन्ध में ग्रन्थकार का निर्देश है—

'महतां चरितेनैव गुणा ग्राह्याः ।

अर्थात् महापुरुषों के चरित से केवल गुण ही ग्रहण करना चाहिए ।

भीष्म को जन्म देकर गंगा राजा शन्तनु को त्यागकर चली जाती है । राजा अपने एकाकीपन को दूर करने के लिए अधिकतर आखेट में व्यस्त रहते हैं । योजनगन्धा निषादकन्या सत्यवती से प्रणय-निवेदन करते हैं । सत्यवती भी उन्हें चाहने लगती है । फिर भी वह शन्तनु की तरह अधीर नहीं होती और पाणि-ग्रहण के लिए पिता से आज्ञा मिलने की अपेक्षा करती है । वह कुल-कन्या की मर्यादा का पालन करती हुई राजा से कहती है—

मनोभवस्त्वां नृप किं दुनोति यथा पुनर्मां नवयौवनां च।
दुनोति तत्रापि हि रक्षणीया धृतिः कुलाचारपरम्परासु ।।

'हे राजन् ! जैसे कामदेव आपको पीड़ित करता है, वैसे ही मुझे भी पीड़ित करता है । फिर भी हमें कुल और मर्यादा की परम्परा के अनुसार धैर्य धारण करना चाहिए' ।

राजा शन्तनु सत्यवती को न पाकर दु:खी हैं । गंगापुत्र भीष्म अपने पिता के कष्ट का कारण जानना चाहते हैं । पिता के कष्ट का कारण जानकर उसका निवारण करना अपना सर्वप्रथम कर्त्तव्य समझते हैं । वे कहते हैं—

किं तेन जातेन सुतेन राजन् दु:खं न जानाति न नाशयेद्य:।
ऋणं गृहीतुं समुपागतोऽसौ प्राग्जन्मजं नात्र विचारणास्ति।।

'हे राजन् ! भला उस उत्पन्न हुए पुत्र से क्या लाभ? जो पैदा होकर अपने पिता का दु:ख न समझे तथा उसको दूर करने का उपाय न करे । एसा कुपुत्र तो पूर्व जन्म के किसी ऋण को वापस लेने के लिए आता है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है ।

दैवं मतिं समाधाय यस्तिष्ठेत्तु निरुद्यम: ।
विरक्तस्तु यतिर्भूत्वा भिक्षार्थं याति सर्वथा ।
गृहस्थानां गृहे काममाहूतो वायवान्यथा ।
यदृच्छयोपपन्नं च क्षिप्तं केनापि वा मुखे ।।
उद्यमेन बिना चास्यादुदरे संविशेत्कथम् ।
प्रयत्नश्चोद्यमे कार्यो यदा सिद्धिं न याति चेत्।।
तदा दैवं स्थितं चेति चित्तमालम्बयेद् बुध:।।

भाग्य के भरोसे रहकर उद्यम न करने वाला वस्तुत: कोई मनुष्य नहीं है । गृहस्थी से विरक्त मनुष्य संन्यासी होकर जगह-जगह भिक्षाटन के लिए बुलाने पर अथवा बिना बुलाये भी गृहस्थों के घर जाता ही है । दैवात् प्राप्त उस भोजन को भी क्या कोई मुख में डालता है ? उद्यम के बिना वह भोजन मुख से उदर में कैसे प्रवेश कर सकता है? अत: प्रयत्नपूर्वक यत्न तो करना ही चाहिए, यदि सफलता न मिले तो बुद्धिमान मनुष्य मन में विश्वास कर ले कि यहाँ दैव प्रबल है ।

अठारह हजार श्लोकों में रूपायित देवीभागवत स्वयं देवी के स्वात्म-कथन 'सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम् ' की व्याख्या है । वेदोक्ति है - 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म ' । इन दोनों उक्तियों में प्रस्थान भेद से अन्तर है । तात्त्विक दृष्टि से दोनों उक्तियाँ एक ही सच्चित्सुखात्मक परमात्मा का संकेत करती हैं जो अवाङ्मनस्गोचर है । श्रुतियाँ उसी को निषेध रूप से 'नेति-नेति' कहकर सम्पूर्ण दृश्य पदार्थ का निरास करके उस एक सत्ता का उद्घोष करती हैं, जो सर्वत्र परिव्याप्त होकर भी सबसे पृथक् भी है। जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त है, फिर भी सबसे असम्पृक्त है ।

देवीभागवत में शक्ति-प्रस्थान से सत्ता का निर्वचन हुआ है । वेद का ब्रह्म सत्ता-प्रस्थान से

निरूपित हुआ है' इसलिए वह अनाम, अरूप, निर्गुण और निराकार है । देवी अपने शक्ति-तत्त्व का वर्णन करती हुई कहती हैं—

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च ।
योऽसौ साहमहं योऽसौ भेदो मतिविभ्रमात् ।।
आवयोरन्तरं सूक्ष्मं यो वेद मतिमान्हि सः ।
वियुक्तः स तु संसारान्मुच्यते नात्र संशयः ।।
एकमेवाद्वितीयं वै ब्रह्म नित्यं सनातनम् ।
द्वैतभावं पुनर्याति काल उत्पत्तिज्ञसंज्ञके ।।
यथा दीपस्तथोपाधेर्योगात्सञ्जायते द्विधा ।
छायेवादर्शमध्यो वा प्रतिबिम्बं तथावयोः ।।

'मैं और परब्रह्म सदा एक ही हैं; कोई भेद नहीं है; क्योंकि जो वे हैं, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही वे हैं । बुद्धिभ्रम से ही हम दोनों में भेद दिखायी पड़ता है । इसलिए हम दोनों में विद्यमान सूक्ष्म अन्तर को जो जानता है, वह संसार के बन्धन से छूट जाता है । और वह सदैव के लिए मुक्त हो जाता है । ब्रह्म अद्वितीय, एक, नित्य और सनातन है; केवल सृष्टि-रचना के समय वह पुनः द्वैत भाव को प्राप्त होता है । जिसप्रकार एक ही दीपक उपाधि-भेद से दो प्रकार का दिखायी पड़ता है अथवा दर्पण में पड़ती हुई छाया दर्पण भेद से भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है, उसी प्रकार मैं और ब्रह्म एक होते हुए भी उपाधि भेद से अनेक हो जाते हैं' ।

जैसे सिक्का एक है किन्तु उसके दो पहलू हैं और दोनों भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं किन्तु दोनों पहलुओं को अलग नहीं किया जा सकता । वैसे ही शक्ति और शक्तिमान् यानि देवी और ब्रह्म परस्पर संयुक्त हैं— अद्वय रूप से । शिव के अर्द्धनारींश्वर स्वरूप में भी यही भावना निहित है ।

देवी शक्तिस्वरूपा हैं । जल में शीतलता, अग्नि में उष्णता और सूर्य में प्रकाश तथा चन्द्रमा में ज्योत्सना सब उन्हीं के प्रकट रूप हैं । ईश्वर में जब सिसृक्षा उत्पन्न होती है और वे संकल्पवान् होते हैं, तब उसमें शक्ति ही कारण है । जब वे शक्ति से युक्त होते हैं तभी सृष्टिकर्त्ता हो पाते हैं । आकाश की अवकाश शक्ति, वायु की चालन शक्ति, अग्नि की दाहकता शक्ति, जल की शीतलता शक्ति और पृथ्वी की धारणा शक्ति - ये सब शक्ति-संस्थान रूपी देवी की विविध शक्तियाँ हैं ।

तात्पर्य यह कि परमशक्ति ही परमात्मा हैं और परमात्मा ही परमशक्ति है । समस्त शास्त्रों और वेदों का ज्ञान प्राप्त करके भी पर वैराग्य के बिना कोई इन दोनों के सूक्ष्म अन्तर को नहीं जान सकता। यह जगत् अहंकार से निर्मित है । कोई भी प्राणी अहंकार से रहित नहीं हो सकता । अहंकारयुक्त मनुष्य अहंकार के मूल (ब्रह्म का निर्गुण स्वरूप) को नहीं जान सकता । सारी वस्तुओं को देखने वाले नेत्र

अपने आपको नहीं देख सकते । नेत्रों को देखने के लिए दर्पण चाहिए । वैसे ही ब्रह्म के स्वरूप को जानने के लिए शक्तिस्वरूपा देवी के सगुणरूप का सम्यक् ध्यान कला चाहिए ।

संसार त्रिगुणात्मक है । ये तीन गुण हैं- सत, रज और तम । सरलता, सत्य, शौच, श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, कृपा, लज्जा, शान्ति और सन्तोष - ये सतोगुण के लक्षण हैं । उत्कण्ठा, अधीरता, चंचलता, ईर्ष्या, द्रोह, अभिमान, मद और गर्व-ये रजोगुण के लक्षण हैं । आलस्य, अज्ञान, निद्रा, दीनता, असूया, नास्तिकता - ये तमोगुण के लक्षण हैं ।

आत्मकल्याण की इच्छा रखने वाले को अपने में निरन्तर सतोगुण का विकास करना चाहिए, रजोगुण पर नियन्त्रण रखना चाहिए तथा तमोगुण का नाश कर देना चाहिए । ये तीनों गुण परस्पर विपरीत स्वभाव वाले होकर भी सदैव मिलकर ही रहते हैं । यह अलग बात है कि कभी और किसी में सत, रज या तम अधिक प्रभावी हो जाता है । ये तीनों गुण वैसे ही मिलकर कार्य करते हैं जैसे आग, रूई और तेल परस्पर मिलकर दीपक बनकर प्रकाश बिखेरते हैं ।

मुनियों के लिए सात्त्विक यज्ञ, राजाओं के लिए राजस यज्ञ, राक्षसों के लिए तामस यज्ञ, ज्ञानियों के लिए निर्गुण यज्ञ और वैराग्ययुक्त लोगों के लिए ज्ञानमय यज्ञ निहित हैं । यज्ञ के फल की प्राप्ति के लिए द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मन्त्रशुद्धि आवश्यक है । न्यायपूर्वक उपार्जित धन से ही पुण्य कार्य करना चाहिए । उससे लोक में कीर्ति और परलोक में आनन्द मिलता है ।

साधनहीन सामान्य लोगों और मोक्षपरायण मुनियों के लिए मानसिक यज्ञ श्रेष्ठ यज्ञ है । कर्म करने पर भी यदि विपरीत परिणाम प्राप्त होता है तो विद्वानों को सोचना चाहिए कि कार्य करने में कोई कमी अवश्य रह गयी थी । पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया था, किन्तु तत्काल बाद उन्हें बारह वर्ष की वनवास-यन्त्रणा झेलनी पड़ी थी । लोभ तथा मोह से घिरे हुए लोगों का तीर्थ, दान, अध्ययन- सब व्यर्थ हो जाता है, उनका किया हुआ वह सारा कर्म न करने के समान हो जाता है -

वृथा तीर्थं वृथा दानं वृथाध्ययनमेव च ।
लोभमोहावृतानां वै कृतं तदकृतं भवेत् ।।

प्रारब्ध पूरा हो जाने पर करोड़ों प्रयत्न करने पर भी अन्ततः, मनुष्य मर ही जाता है और दैव के अनुकूल रहने पर बिना किसी रक्षा के ही वह हजारों वर्षों तक जीवित रहता है । पूर्व जन्म में किये गये शुभ या अशुभ कर्मों का फल प्राणी को भोगना ही पड़ता है, तो फिर अपने द्वारा किये गये कर्म का फल भोगने में विवेकी पुरुषों को शोक कैसा ? अपने द्वारा उपार्जित कर्म-फल भोगने में दुःख प्राप्त होने के कारण अज्ञानी तथा अल्पबुद्धि वाला प्राणी निमित्त कारण के प्रति शत्रुता का भाव रखने लगता है ।

जो स्त्री अनेक पुरुषों के समक्ष उपस्थित होती है, उसका सतीत्व विनष्ट हो जाता है; क्योंकि

उसे देखकर वे सभी अपने मन में यही संकल्प कर लेते हैं कि यह स्त्री किसी तरह से मेरी हो जाय। कोई स्त्री अपने हाथ में जयमाल लेकर जब स्वयंवर-मण्डप में आती है तब वह एक साधारण स्त्री हो जाती है और उस समय वह एक व्यभिचारिणी स्त्री की भाँति प्रतीत होती है ।

अपने किये हुए शुभ तथा अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है । इसलिए सुख-दु:ख के विषय में शोक नहीं करना चाहिए । मनुष्य को चाहिए कि दु:ख की स्थिति में अधिक दु:ख वालों को और सुख की स्थिति में अधिक सुख वालों को देखे; अपने आपको हर्ष-शोक रूपी शत्रुओं के अधीन न करे । सब कुछ दैव के अधीन है, अपने अधीन नहीं । अतएव बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि शोक से अपनी आत्मा को न सुखाये । जीव को सर्वत्र अपने कर्म के अधीन होकर रहना पड़ता है । मानव जन्म दुर्लभ है । आहारादि का सुख तो अन्य योनियों में मिल सकता है । स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले इस मनुष्य तन को पाकर धर्म-साधन करना चाहिए; क्योंकि अन्य योनियों में यह दुर्लभ है ।

विपत्ति तथा सम्पत्ति— इन दोनों ही स्थितियों में धैर्य धारण करते हुए जो एक समान रहते हैं, वे ही धीर होते हैं; किन्तु अल्प बुद्धि वाले लोग तो सम्पत्ति की दशा में भी कष्ट में पड़े रहते हैं। संयोग तथा वियोग— ये दोनों ही दैव के अधीन होते हैं । शरीर तो आत्मा से भिन्न है, अत: उसके लिए शोक कैसा ?

सुख के बाद दु:ख तथा दु:ख के बाद सुख आया-जाया करते हैं । सदा एक स्थिति नहीं रहती। सुख-दु:ख के आने पर जिसका मन कातर हो जाता है वह शोक-सागर में निमग्न रहता है और कभी सुखी नहीं रह सकता । दु:ख आने पर शोक नहीं करना चाहिए । विज्ञ पुरुष को चाहिए कि ऐसी परिस्थिति में मन को सचेत करके अनुकूल समय की प्रतीक्षा करता रहे ।

दिखाई पड़ने वाला कर्म स्थूल होता है । प्रत्येक कर्म के पीछे वासना होती है जो सूक्ष्म होने के कारण दिखाई नहीं देती, किन्तु प्रधान वही होती है । धर्म के सम्बन्ध में भी वासना ही प्रधान है । वासना में मलिनता आने पर धर्म भी मलिन हो जाता है । मलिन वासना विनाश की ओर ले जाती है। सज्जन पुरुषों के लिए हर समय सतयुग है और दुष्ट लोगों के लिए सर्वदा कलियुग ही रहता है ।

तप में विघ्न उत्पन्न करने के लिए स्वर्गागत अप्सराओं के प्रति यदि धर्मपुत्र नारायण तटस्थ रहते तो वे अप्सराएँ जैसे आयी थी वैसे ही चली जाती । किन्तु अपने तपोबल से उर्वशी आदि अप्सराओं को उत्पन्न करके वे स्वयं अप्सराओं के चक्कर में पड़ गये । उन्हें यह दु:ख अहंकार से प्राप्त हुआ । जैसे मकड़ी अपने ही बनाये जाल में फँस जाती है वैसे ही नारायण भी फँस गये । अब यदि क्रोध करके अप्सराओं को शाप देते हैं तब भी उनका तप व्यय होता है और उन्हे दोष भी लगता है, क्योंकि तपस्वी को शान्त रहना चाहिए । क्रोध तप के सर्वथा विपरीत है । यह सब विचारकर वे सँभल

जाते हैं और शान्ति का आश्रय लेते हैं । वे विचार करते हैं - 'अहंकार के बाद क्रोध दूसरा प्रबल शत्रु है । यह क्रोध संसार में काम तथा लोभ से भी अधिक भयंकर है । क्रोध के वशीभूत प्राणी हिंसा तक कर बैठता है । जिस प्रकार वृक्षों के परस्पर घर्षण से उत्पन्न अग्नि वृक्ष को जला डालती है, उसी प्रकार शरीर से उत्पन्न भीषण क्रोध उसी शरीर को जला डालता है' ।

मन, वचन तथा कर्म से शुद्ध प्राणियों के लिए तो पद-पद पर तीर्थ हैं किन्तु दूषित मन वाले के लिए गंगा भी मगध से अधिक अपवित्र हो जाती हैं—

मनोवाक्कायशुद्धानां राजंस्तीर्थं पदे-पदे ।
तथा मलिनचित्तानां गङ्गापि कीकटाधिका ।।

गंगा के किनारे रहने वाले कितने लोग गंगा-जल का पान करते हैं और उसमें स्नान भी करते हैं, किन्तु उनमें से कोई शुद्ध अन्त:करण वाला नहीं होता । तब नानाविध वासनाओं से प्रदूषित चित्त वालों के लिए तीर्थ का क्या फल हो सकता है? कल्याण की कामना वाले पुरुष को आचार के साथ-साथ मन:शुद्धि करनी चाहिए । मन के शुद्ध होने पर स्थान-शुद्धि, जल-शुद्धि और द्रव्य-शुद्धि स्वत: हो जाती है ।

घर, सेना, धन सब कुछ छोड़कर प्राण-रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि प्राण-रक्षा होने पर ये सब पुन: प्राप्त हो सकते हैं । जहाँ भी सुखपूवक रहने का प्रबन्ध हो जाय वही पैतृक देश हेाता है—

प्राणत्राणं प्रकर्त्तव्यं त्यक्त्वा गेहं बलं धनम् ।
सुखेन स्थीयते यत्र स देशः खलु पैतृकः ।।

जरासन्ध ने मथुरा पर सत्रह बार आक्रमण किया । अठारहवीं बार उसने कालयवन को भेजा। श्रीकृष्ण ने शत्रुओं से मुक्ति पाने के लिए हजारों मील दूर समुद्र-कूल द्वारिका में राजधानी बनायी और और अपने पैतृक स्थल मथुरा का त्याग कर दिया ।

अकारो भगवान्ब्रह्माप्युकारः स्याद्धरिः स्वयम्।
मकारो भगवान् रुद्रोऽप्यर्द्धमात्रा महेश्वरी ।
उत्तरोत्तर भावेनाप्युत्तमत्वं स्मृतं बुधैः ।
अतः सर्वेषु शास्त्रेषु देवी सर्वोत्तमा स्मृता ।
अर्द्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।।

ॐकार का 'अ' ब्रह्मा का रूप है, 'ऊ' विष्णु का रूप है 'म' भगवान् शिव का रूप है और अर्द्धमात्रा (चन्द्रबिन्दु) भगवती महेश्वरी का रूप है । ये उत्तरोत्तर क्रम से एक-दूसरे से उत्तम हैं - ऐसा विद्वानों ने कहा है । अतएव समस्त शास्त्रों में देवी सर्वोत्तम मानी गयी है । वे भगवती बिन्दुरूप नित्य अर्द्धमात्रा में स्थित हैं, जो अर्द्धमात्रा विशेष रूप से उच्चारित नहीं की जा सकती ।

जब हर्ष अथवा शोक उत्पन्न हो तब अपनी बुद्धि से निश्चय करके उनसे अप्रभावित बने रहना चाहिए । दु:ख आने पर सोचना चाहिए कि दु:ख किसे हो रहा है? मैं तो गुणों से रहित अविनाशी आत्मा हूँ । भूख तथा प्यास का सम्बन्ध प्राण से, शोक तथा मोह का सम्बन्ध मन से एवं जरा तथा मृत्यु का सम्बन्ध शरीर से है । मैं इन छहों ऊर्मियों से रहित सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ । ममता सबसे बड़ा दु:ख है और ममतारहित हो जाना सबसे बड़ा सुख । सन्तोष से बढ़कर सुख का कोई स्थान नहीं है। प्रारब्ध के विषय में विवेक का आश्रय लेना चाहिए । बिना भोग के प्रारब्ध का नाश नहीं होता । सुख के उपभोग से पुण्य का क्षय हाता है । बुद्धिमान पुरुषों को सुख-क्षय की स्थिति में हर प्रकार से प्रसन्नता का अनुभव करना चाहिए ।

जन्तुः कृतस्य भोक्ता वै शुभस्य त्वशुभस्य च ।
द्रोहं कृत्वा कुतः शान्तिमाप्नुयान्नष्टचेतनः ।।
विश्वासघातकर्त्तारो नरकं यान्ति निश्चयम् ।
दुःखं च समवाप्नोति नूनं विश्वासघातकः ।।
निष्कृतिर्ब्रह्महन्तॄणां सुरापानां च निष्कृतिः ।
विश्वासघातिनां नैव मित्रद्रोहकृतामपि ।।

'मनुष्य अपने किये शुभ और अशुभ कर्मों को भोगता है । जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी हो, वह द्रोह करके भी क्या शान्ति पा सकता है? विश्वासघाती निश्चित ही दु:ख पाता है और नरक भोगता है। ब्राह्मण की हत्या करने वाले और मद्यपान करने वाले के लिए तो फिर भी प्रायश्चित्त है, किन्तु मित्र से द्रोह करने वाले और विश्वासघाती के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है' ।

लोभ मनुष्यों की देह में रहने वाला सबसे बड़ा शत्रु है । यह समस्त दु:खों का आगार, दु:खदायी तथा प्राणों का नाश करने वाला कहा गया है । यह लोभ सम्पूर्ण पापों की जड़ तथा सभी दु:खों का कारण है । लोभ के वशीभूत प्राणी अपने सदाचार तथा कुल-धर्म का भी परित्याग कर देते हैं । वे अपने माता, पिता, भाई, गुरु, मित्र, पत्नी, पुत्र तथा बहन तक का वध कर देते हैं । काम, क्रोध से भी बढ़कर है लोभ । लोभ में पड़कर मनुष्य अपने प्राण तक गँवा देता है -

प्राणांस्त्यजति लोभेन कि पुनः स्यादनावृतम् ।
सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी ।।
सत्यं प्रोक्तः परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ।।
अश्वमेधसहस्रं तु सत्यं च तुलना धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेकं विशिष्यते ।।

सत्य से ही सूर्य तपता है । सत्य पर धरती टिकी हुई है । सत्य में ही परम धर्म स्थिर है । स्वर्ग भी सत्य में प्रतिष्ठित है । हजारों अश्वमेध यज्ञ की भी तुलना सत्य से नहीं हो सकती । हजार अश्वमेध

की तुलना में सत्य बढ़कर है ।

सृष्टि के पूर्व केवल एक सत्ता रहती है । उसे हम चित् या संवित् या ब्रह्म कह सकते हैं । ब्रह्म और देवी दो अलग सत्ता न होकर एक सत्ता हैं । शैवदर्शन में इसे ही प्रकाश कहा गया है । देवी की एक शक्ति है माया जो सदैव उनके साथ रहती है । हम कह सकते हैं कि देवी का एक रूप अक्रिय और कूटस्थ है और दूसरा रूप क्रियाशील । यही क्रियाशील रूप सिसृक्षावान् होता है, तब सृष्टि होती है । महाप्रलय और महासृष्टि देवी का निमेष-संचालन है । ये दोनों क्रमशः आवर्तित होते रहते हैं । यही 'प्रकाश' और 'विमर्श' है शैवदर्शन में । इस प्रकार 'प्रकाश' और 'विमर्श' की क्रीड़ा चलती रहती है । ज्ञानी भक्त देवी की इस क्रीड़ा को जानकर अपने को पाँच क्लेशों अथवा पाँच कंचुकों (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश) से मुक्त करके अनासक्त भाव से जीवन-यापन करता है । वह सर्वतोभावेन देवी को समर्पित हो जाता है ।

यावन्मनो लयं याति देव्यां संविदि पर्वत ।
तावदिष्टमनुं मन्त्री जपहोमैः समभ्यसेत् ।।
मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञेयज्ञानाय कल्पते ।
न योगेन बिना मन्त्रो न मन्त्रेण बिना हि सः ।।
द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम् ।
तमः परिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते ।।

'जब तक ज्ञानरूपिणी मुझ भगवती में मन का लय न हो जाय, तब तक मन्त्रजापक को जप-होम के द्वारा अपने इष्ट मन्त्र का अभ्यास करते रहना चाहिए । मन्त्राभ्यास योग के द्वारा ज्ञेय तत्त्व का ज्ञान प्राप्त हो जाता है । योग के बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होता और मन्त्र के बिना योग सिद्ध नहीं होता। अतः योग और मन्त्र दोनों का अभ्यास ही ब्रह्मसिद्धि का साधन है । अन्धकार से आच्छादित घर में स्थित घड़ा दीपक के प्रकाश में दिखायी देने लगता है, इसी प्रकार माया से आवृत आत्मा मन्त्र के द्वारा दृष्टिगोचर होने लगता है' ।

तिस्रो भार्यास्त्रिशीलाश्च त्रयो भृत्याश्च बान्धवाः ।
ध्रुवं वेदविरुद्धाश्च न ह्येते मङ्गलप्रदाः ।।
स्त्रीपुंवच्च गृहे येषां गृहिणां स्त्रीवशः पुमान् ।
निष्फलं च जन्म तेषामशुभं च पदे-पदे ।।
मुखे दुष्टा योनिदुष्टा यस्य स्त्री कलहप्रिया ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं महारण्यं गृहाद्वरम् ।।
जलानां च स्थलानां च फलानां प्राप्तिरेव च ।
सततं सुलभा तत्र न तेषां गृह एव च ।।

भिन्न-भिन्न स्वभाव वाली तीन पत्नियों, तीन भृत्यों और तीन भाइयों का एक स्थान पर रहना वेद-विरुद्ध है । यह मंगलकारी नहीं होता । जिस घर में स्त्री पुरुष की भाँति व्यवहार करे और पुरुष स्त्री के अधीन रहे, उसका जन्म निष्फल हो जाता है और पग-पग पर अमंगल होता है । जिसकी स्त्री कुवचन बोलने वाली, व्यभिचार में लिप्त रहने वाली तथा कलहप्रिया है, उस व्यक्ति को जंगल में चले जाना चाहिए । क्योंकि उसके लिए बड़े से बडा जंगल भी घर से बढ़कर श्रेयस्कार होता है; क्योंकि वहाँ उसे जल, स्थल और फल आदि की प्राप्ति होती रहती है, किन्तु घर पर ये सब नहीं मिल पाते।

समय से ही वृक्ष उगते हैं, समय से ही उनमें शाखाएँ निकलती हैं और फिर क्रमशः पुष्प तथा फल भी उनमें कालानुसार ही लगते हैं । तत्पश्चात् उन वृक्षों के फल भी समय से ही पकते हैं । अन्त में फलयुक्त वे सभी वृक्ष समयानुसार नष्ट भी हो जाते हैं । संयोग और वियोग काल निर्मित हैं । काल का अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता । कोई किसी का बन्धु नहीं है । परमप्रभु परमेश्वर ही सबके बन्धु हैं । जिनकी आज्ञा में काल जड़-चेतन जगत् को अपने वश में किये हुए हैं ।

ऐश्वर्य विपदां बीजं ज्ञानप्रच्छन्नकारणम् ।
मुक्तिमार्गकुठारश्च भक्तेश्च व्यवधायकम् ।
जन्ममृत्युजराशोकरोगबीजाङ्कुरं परम् ।
सम्पत्तितिमिरान्धश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति ।।
सम्पन्मत्तो विमूढश्च सुरामत्तः स एव च ।
बान्धवैर्वेष्टितः सोऽपि बन्धुत्वेनैव हे हरे ।।
सम्पत्तिमदमत्तश्च विषयान्धश्च विह्वलः ।
मद्यकामी राजसिकः सत्त्वमार्गं न पश्यति ।।

ऐश्वर्य समस्त विपत्तियों का बीज-स्वरूप है, ज्ञान का आच्छादन करने वाला है, मुक्तिमार्ग का कुठार है तथा भक्ति में व्यवधान उत्पन्न करने वाला है । ऐश्वर्य, जन्म, मृत्यु, जरा, शोक और रोग के बीज का महान् अंकुर है । सम्पत्ति के घोर अन्धकार से अन्धा बना हुआ मनुष्य मुक्ति का मार्ग नहीं देख पाता । जो मूर्ख सम्पत्ति से उन्मत्त है, उसको वास्तव में मदिरा पान से अधिक प्रमत्त समझना चाहिए। बन्धु-बान्धव उसे बन्धु मानकर सदैव घेरे रहते हैं । सम्पत्ति के मद में उन्मत्त वह व्यक्ति विषयान्ध, विह्वल, महाकामी और राजसिक होकर सात्त्विक मार्ग का अवलोकन नहीं कर पाता ।

आत्मनश्च सहायार्थं पिता माता न तिष्ठति ।
न पुत्रदारा न ज्ञातिधर्मस्तिष्ठति केवलम् ।।
तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चितु साधनैः ।
धर्मेणैव सहायात्तु तमस्तरति दुस्तरम् ।।

'पिता, माता, पुत्र, पत्नी तथा बन्धु-बान्धव कोई भी परलोक में जीव की सहायता के लिए उपस्थित नहीं रहते, केवल धर्म ही उपस्थित होता है । अत: आत्म-कल्याण के लिए समस्त साधनों में धर्म का नित्य संचय करना चाहिए । धर्म की सहायता से मनुष्य दुस्तर अन्धकार को पार कर जाता है'।

आचारल्लभते चायुराचाराल्लभते प्रजाः ।
आचारादन्नमक्षय्यमाचारो हन्ति पातकम् ।।
आचारः प्रथमो धर्मो नृणां कल्याणकारकः ।
इह लोके सुखी भूत्वा परत्र लभते सुखम् ।।
अज्ञानान्धजनानां तु मोहितैर्भ्रामितात्मनाम् ।
धर्मरूपो महादीपो मुक्तिमार्गप्रदर्शकः ।।

आचार से आयु प्राप्त होती है, आचार से सन्तान प्राप्त होती है । आचार से अन्न अक्षय होता है और आचार पातक को नष्ट कर देता है । मनुष्यों के लिए कल्याणकारी पहला धर्म आचार है । आचार का पालन मनुष्यों के लिए कल्याणकारी पहला धर्म आचार है । आचार का पालन करने से मनुष्य इस लोक में तो सुखी होता ही है परलोक में भी सुख प्राप्त करता है । मोह-जाल में पड़े अज्ञानी लोगों के लिए आचार ही धर्म है । आचार-धर्म रूपी महाप्रदीप मोक्ष का पथ दिखाने वाला है ।

देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञो भूतयज्ञस्तथैव च ।
पितृयज्ञो मनुष्यस्य यज्ञश्चैव पञ्चमः ।।

देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ और मनुष्ययज्ञ (अतिथियज्ञ) ये पाँच महायज्ञ हैं ।

अकृत्वा वैश्वदेवं तु यो भुंक्ते मूढधीर्द्विजः ।
स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाकशिराः ।।

जो मूर्खबुद्धि द्विज बिना बलिवैश्वदेव किये भोजन करता है, वह कालसूत्र नरक में सिर नीचे किये हुए निवास करता है ।

अकृते वैश्वदेवं तु भिक्षौ भिक्षार्थमागते ।
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत् ।।
वैश्वदेवकृतं दोषं शक्तो भिक्षु व्यपोहितुम् ।
न तु भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति ।।

वैश्वदेव करने से पूर्व ही भिक्षा के लिए किसी भिक्षुक के आ जाने पर वैश्वदेव के लिए सामग्री अलग करके शेष सामग्री में से भिक्षा देकर उसे विदा कर देना चाहिए; क्योंकि पहले वैश्वदेव न करने से उत्पन्न दोष को शान्त करने के लिए भिक्षुक तो समर्थ है, किन्तु भिक्षुक के अपमानजन्य दोष का

शमन करने में वैश्वदेव समर्थ नहीं है ।

यत्फलं सोमयागेन प्राप्नोति धनवान्द्विजः ।
सम्यक् पञ्चमहायज्ञैर्दरिद्रस्तेन चाप्नुयात् ।।

धनवान् द्विज सोमयज्ञ करने से जो फल प्राप्त करता है, वही फल एक दरिद्र पंचमहायज्ञों द्वारा सम्यक् रूप से प्राप्त कर लेता है ।

देवीगीता भाष्य

(सप्तम स्कन्ध - ३२ वें अध्याय से लेकर ४० वें अध्याय तक)

मूल श्लोक, अन्वय, पदच्छेद अर्थसहित, भावार्थ, भाष्य

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः (बत्तीसवाँ अध्याय)

श्लोक १ -

शृण्वन्तु निर्जराः सर्वे व्याहरन्त्या वतो मम ।
यस्य श्रवणमात्रेण मद्रूपत्वं प्रपद्यते ।।

अन्वय-

सर्वे निर्जराः मम व्याहरन्त्या वचः श्रुण्वन्तु।
यस्य श्रवणमात्रेण मत् रूपत्वं प्रपद्यते ।।

पदच्छेद अर्थ सहित—

सर्वे = सभी, निर्जराः = निर्गतं जरा यस्मात् स निर्जरः- निर्जराः (बहुवः) = देवताओं, मम= मेरी, व्याहरन्त्या = कही हुई, वचः = वाणी, वचन, श्रुण्वन्तु = सुनें, यस्य = जिसके, श्रवणमात्रेण = श्रवण मात्र से, मत् = मेरे, रूपत्वं = रूप को, प्रपद्यते = प्राप्त हो जाता है ।

भावार्थ—

देवी बोलीं - सभी देवता मेरे द्वारा कहे जाने वाले वचन को सुनें, जिसके श्रवणमात्र से मनुष्य मेरे स्वरूप को प्राप्त हो जाता है ।

भाष्य—

तारकासुर के त्रास से आक्रान्त सभी देवता गिरिराज हिमालय पर एकत्र होकर देवी की स्तुति करते हैं । देवी प्रसन्न होकर 'गौरी' के रूप में हिमालय के घर अवतार लेना स्वीकार करती हैं । भविष्य में 'गौरी' से उत्पन्न पुत्र भगवान् स्कन्द द्वारा तारकासुर का बध होगा । हिमालय देवी के अप्रत्याशित

कृपा से अभिभूत हैं । देवी की अहैतुकी कृपा से हिमालय का चित्त निर्मल हो जाता है और सतोगुण के अतिरेक से उनमें तत्त्व-जिज्ञासा उत्पन्न होती है । वे देवी से आकांक्षा करते हैं - सर्ववेदान्तसिद्धं च तवदरूपं ब्रूहि मे तथा । किसी को पाने का एकमात्र उपाय है उसको सम्यक् रूप से जानना । सच्चा श्रवण श्रोतव्य की प्राप्ति करा देता है 'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुमहि तुमहि होइ जाई - 'मानस'। देवी का सम्यक् बोध उनका सायुज्य प्राप्त करा देता है । मीराबाई कृष्ण को जानकर कृष्णमय हो गयी थीं और अन्त में उन्हीं के विग्रह में विलीन हुईं - यह सर्वविदित है ।

श्लोक २—

तस्यां कर्माणि जीवानां जीवाः कालाश्च सञ्चरे ।
अभेदेन विलीनाः स्युः सुषुप्तौ व्यवहारवत् ।।

अन्वय—

जीवाः, कालाः, जीवानां, कर्माणि च तस्यां सञ्चरे । सुषुप्तौ व्यवहारवत् (तस्यां) अभेदेन विलीनाः स्यु।

पदच्छेद अर्थसहित—

जीवाः = नाना प्रकार के जीव, कालाः = भूत, भविष्य, वर्तमान - ये तीन काल, जीवानां= जीवों के, कर्माणि = कर्म, च = और, तस्यां = उसमें (माया में), सञ्चरे = रहते हैं, सुषुप्तौ = सुषुप्ति में, व्यवहारवत् = व्यवहार के समान, अभेदेन = अभेदपूर्वक, विलीनाः = विलीन, स्युः = हो जाते हैं।

भावार्थ—

नाना प्रकार के जीव, भूत-भविष्य-वर्तमान ये तीनों काल तथा जीवों के कर्म, ये सबके सब माया में निवास करते हैं । जैसे सुषुप्ति काल में सारा प्रपंच समाप्त हो जाता है, वैसे ही प्रलय काल आने पर जीव, काल तथा कर्म, माया सहित मुझमें विलीन हो जाते हैं ।

भाष्य—

प्रपञ्च का आधार है माया और माया का आधार स्वयं देवी हैं । नाना प्रकार के जीव, जीवों के कर्म और उनके परिणाम तथा भूत-भविष्य-वर्तमान ये तीनों काल माया में निवास करते हैं । प्रलय काल में जीव, काल और कर्म माया में विलीन हो जाते हैं और स्वयं माया देवी में विलीन हो जाती हैं । भाव यह कि समस्त प्रपञ्च का विनाश हो जाता हे और माया विशुद्ध सतोमयी रूप में देवी से युक्त हो जाती है ।

श्लोक २—

अहमेवास पूर्वं तु नान्यत्किञ्चिन्नगाधिप ।
तदात्मरूपं चित्संवित्परब्रह्मैकनामकम् ।।

अन्वय—

नगाधिप ! पूर्वं अहम् एव आस, अन्यत्, किञ्चित न (आस) तदात्मरूपं चित्संवित्परब्रह्मैकनामकम् ।।
पदच्छेद अर्थसहित -
नगाधिप = हे पर्वतराज ! पूर्व = पहले पहल अर्थात् सृष्टि के आदि में, अहम् = मैं, एव = ही, आस= थी, अन्यत् = दूसरा, किञ्चित् = कुछ, न= नहीं, तदा= तब, आत्मरूपं = अपना अर्थात् मेरा रूप, चित् = विशुद्ध चैतन्य, संवित् = विशुद्ध ज्ञान, परब्रह्म = परम ब्रह्म, एकनामकम् = नाम वाला ।

भावार्थ—

हे पर्वतराज ! पूर्व में केवल मैं ही थी और कुछ भी नहीं था । उस समय मेरा रूप चित् , संवित् (ज्ञानस्वरूप) और परब्रह्म नाम वाला था ।

भाष्य—

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में आया है - जब प्रकाश नहीं था, अन्धकार भी नहीं था, तब क्या था? उसी प्रश्न का उत्तर यहाँ है । देवी ही 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' है । ब्रह्माण्ड शून्य से उत्पन्न हुआ है, शून्य ही में विलीन हो जाएगा । परन्तु यह शून्य असत्तात्मक नहीं है । अपितु परम सत्य, विशुद्ध चैतन्य और अखण्ड आनन्द स्वरूप वाला है । यह कारण ब्रह्म है जो देवी का स्वरूप है । ब्रह्माण्ड की सत्ता, चेतनता और सुख का कारण भी यही है । प्रपञ्च देवी से अपृथक् है - 'सर्वं देवीमयं जगत् ।

श्लोक ३—

अप्रतर्क्यमनिर्देश्यमनौपम्यमनामयम् ।
तस्य काचित्स्वतः सिद्धा शक्तिर्मायेति विश्रुता।।

अन्यव—

अप्रतर्क्यम् अनिर्देश्यम् अनौपम्यम् अनामयम् ।
तस्य काचित्स्वतःसिद्धा शक्तिः माया इति विश्रुता ।।

पदच्छेद अर्थसहित—

अ+प्र+तर्क्यम् = जिसके सम्बन्ध में कोई तर्क नहीं किया जा सकता, अ+ निर्देश्यम् = वह ऐसा है- इस प्रकार कहा नहीं जा सकता । अनौपम्यम् = अन् + औपम्यम् = जिसकी कोई उपमा नहीं है, अनामयम् = अन् + आमयम् = जो विकार रहित है, तस्य = उसकी काचित् = कोई, स्वत: सिद्धा= अपने आप सिद्ध, शक्ति = शक्ति, माया = मा= नहीं, या= जो, अर्थात् जो न होकर भी हो, इति = ऐसा, विश्रुता = प्रसिद्ध ।

भावार्थ—

देवी कहती हैं कि सृष्टि के पूर्व जो मेरा स्वरूप था, उसके सम्बन्ध में कोई तर्क नहीं किया जा सकता अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता कि वह वैसा क्यों था । साथ ही, यह भी नहीं कहा जा सकता कि

वह ऐसा था । मेरा वह स्वरूप सर्वथा विकार रहित था । उसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती (क्योंकि उपमा दी जाने वाली सभी वस्तुएँ विकार से युक्त हैं) वह वस्तुत: मेरी स्वतसिद्ध शक्ति है, जो संसार में माया के नाम से जानी जाती है ।

भाष्य—

देवी के दो रूप हैं - पर और अपर । पर रूप में वह सबका कारणभूत तथा अवाङ्मनस्गोचर है । अपर रूप में वह सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है । पर रूप माया रहित है तो अपर रूप माया सहित। मायारहित देवी के पर रूप का मायोपहित अपर रूप से सम्बन्ध सर्वथा अतर्क्य और अचिन्त्य है ।

श्लोक ४—

न सतीं सा नासती सा नोभयात्मा विरोधतः ।
एतद्विलक्षणा काचिद्वस्तुभूतास्ति सर्वदा ।।

अन्वय—

सा न सती, सा न असती । (सा) विरोधत: उभयात्मा एतत् विलक्षणा काचित् वस्तुभूता सर्वदा अस्ति।

पदच्छेद अर्थ सहित—

सा =वह, न= न ही, सती = सत् , सा = वह, न= नहीं, असती = असत् , विरोधत: = परस्पर विरोध होने से, उभयात्मा = सत् और असत् दोनों, न = नहीं, एतत् = वह अर्थात् माया विलक्षण= सत् और असत् देानों से अलग, काचित् = कोई, वस्तुभूता = वस्तु, सर्वदा = सदैव, अस्ति = है।

भावार्थ—

देवी कहती हैं कि मेरी माया न सत् है, न असत् । परस्पर विरोध होने के कारण वह सत् -असत् अर्थात् उभयरूप भी नहीं है । सत् - असत् इन दोनों से विलक्षण वह माया कोई अन्य ही वस्तु है ।

भाष्य—

माया को सत् नहीं कहा जा सकता । क्योंकि सत् का तात्पर्य है जो सदैव समान स्थिति में रहे । माया ऐसा नहीं है । शशशृंगवत् माया असत् भी नहीं हे, क्योंकि उसकी सता प्रतीत होती है । संसार को ही लिजिए । जाग्रत अवस्था में इसकी सत्ता रहती है, सो जाने पर इसकी सत्ता का लोप हो जाता है। माया को सत् और असत् दोनों कहना वदतोव्याघात है । माया की सत्ता तो है, किन्तु उस सता का स्वरूप क्या है, इस पर कुछ इदमित्थं नहीं कहा जा सकता ।

श्लोक ५-

पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः ।
चन्द्रस्य चान्द्रिकेवेयं ममेयं सहजा ध्रुवा ।

अन्वय—

पावकस्य उष्णाता इव, उष्णांशोः दीधितिः इव, चन्द्रस्य चन्द्रिका इव इयं मम ध्रुवा सहजा ।

पदच्छेद अर्थ सहित–

पावकस्य = अग्नि की, उष्णता = गरमी, इव = जैसे, उष्णांशोः = सूर्य की, दीधितिः = किरण, इव= जैसे, चन्द्रस्य = चन्द्रमा की , चन्द्रिका = चाँदनी, इव = जैसे, इयं = यह (माया) मम = मेरी, ध्रुवा = अचल, सहजा =सहज ।

भावार्थ–

जैसे अग्नि में उसकी गरमी सदा रहती है, सूर्य में प्रकाश की किरण और चन्द्रमा में उसकी चाँदनी विद्यमान रहती है, उसी प्रकार यह माया अचल रूप से सदैव मेरे साथ रहती है ।

भाष्य–

चतुर्थ श्लोक में कहा गया कि सदसद्विलक्षण माया की सत्ता अवश्य है । प्रश्न है कि माया का आधार क्या है? प्रस्तुत श्लोक बताता है कि माया का आधार स्वयं देवी भुवनेश्वरी हैं । माया भुवनेश्वरी से सदा अपृथक् है । प्रश्न है, सृष्टि के पूर्व माया देवी के साथ रहती है कि नहीं ? इसका उचित उत्तर यही है कि माया उस समय भी देवी से पृथक् नहीं रहती, क्योंकि पृथक् मान लेने पर माया की स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध होगी । हाँ, सृष्टि के पूर्व माया निष्क्रिय ओर निस्पन्द रहती है, जैसे बीज के अन्तर्गत पौधा सोया रहता है । उस स्थिति में देवी और माया अद्वय भाव से रहते हैं ।

श्लोक ६–

स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता ।
स्वाधारावरणात्तस्या दोषत्वं च समागतम् ।।

अन्वय–

स्वशक्तेश्च समायोगात् अहं बीजात्मतां गता ।
तस्या स्वाधारावरणात् दोषत्वं समागतम् च ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

स्व = अपनी, शक्तेः = शक्ति के, च= और, समायोगात् = समायोग से, अहं = मैं, बीजात्मतां = बीज रूप को, गता= प्राप्त हुई, तस्या = उसके (माया के), स्व = अपने, आधार = आधार, आवरणात् = अवगुण्ठन, परदा के चलते, दोषत्वं = दोष, समागतम् = आ गया ।

भावार्थ–

मैं अपनी शक्ति (माया) से संयोग करने के कारण बीज रूप को प्राप्त हुई, अर्थात् मुझमें सृष्टि के कर्तृत्व का उदय हुआ । माया के आधार रूपी आवरण के कारण मुझमें उसका कुछ दोष आ गया ।

भाष्य–

माया देवी की शक्ति है जो अपने आप स्फुरित नहीं हो सकती । देवी से युक्त होकर भी माया देवी से

प्रेरित हुए बिना सृष्टि नहीं कर सकती । 'सोऽकामयत् । एकोऽहं बहुस्याम' - इस श्रुति के अनुसार भी सृष्टि की जनयिता देवी है । माया सृष्टि का साधन है । माया का सहयोग लिए बिना सृष्टि सम्भव नहीं है । माया रहित देवी का स्वरूप सर्वथा निष्कलुष है । माया के संयोग से देवी में कुछ दोष तो आ ही जाता है, जैसे - कर्तृत्व दोष । देवी के माया रहित होने का तात्पर्य है माया के गुणों से देवी का अप्रभावित रहना, ठीक वैसे ही जैसे कमल का पत्ता जल से अप्रभावित रहता है ।

श्लोक ८—

चैतन्यस्य समायोगान्निमित्तत्वं च कथ्यते ।
प्रपञ्चपरिणामाच्च समवायित्वमुच्यते ।।

अन्वय - चैतन्यस्य समायोगात् निमित्तत्वं कथ्यते च । प्रपञ्चपरिणामात् समवायित्वमुच्यते च ।

पदच्छेद अर्थसहित–

चैतन्यस्य = चैतन्य के, समायोगात् = समायोग से, निमित्तत्वं = निमित्त कारण, कथ्यते = कहा जाता है। प्रपञ्चपरिणामात् = प्रपञ्च के परिणाम से, समवायित्वम् = समवायि कारण, उच्यते = कहा जाता है ।

भावार्थ–

चैतन्य के सम्बन्ध से मुझे संसार का निमित्त कारण कहा जाता है । साथ ही, मेरा परिणाम रूप यह सृष्टि प्रपञ्च मुझसे ही उत्पन्न होता तथा मुझमें ही विलीन होता है, अतः मुझे समवायिकारण भी कहा जाता है ।

भाष्य–

संसार जड़ है । जड़ता में चेतनता कहाँ से आयी ? उत्तर है, देवी से । देवी विशुद्ध चैतन्य स्वरूप हैं । उन्हीं के चैतन्य के कुछ अंश से संसार चैतन्य है । इसलिए देवी संसार का निमित्त कारण हैं । साथ ही, जड़ की स्वतन्त्र सत्ता नहीं होने से देवी संसार का उपादान कारण भी हैं, जिसे समवायिकारण भी कहते हैं । कारण ही जब कार्यरूप में परिणत होता है, तब उसे समवायि कारण कहा जाता है । सृष्टि प्रपञ्च देवी से उत्पन्न होता और उनमें ही विलीन होता है ।

श्लोक ९–

केचित्तां तप इत्याहुस्तमः केचिज्जड परे ।
ज्ञानं मायां प्रधानं च प्रकृतिं शक्तिमप्यजाम् ।।

अन्वय–

केचित् तां तप इति आहुः, (केचित्) तमः, परे जडम् (आहुः) । (केचित्) ज्ञानं, मायां, प्रधानं, शक्तिं, अजाम् अपि (आहुः) ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

केचित् = कुछ लोग, ताम् = उसको (माया को) तप= तपस्या, इति= इस प्रकार, आहुः = कहते हैं (कुछ लोग उसे) ज्ञानम् = ज्ञान, मायां = माया, प्रधानं = प्रधान, प्रकृतिं =प्रकृति, शक्तिम् = शक्ति, अजाम् = अजा, अपि भी, आहुः = कहते हैं ।

भावार्थ–

कुछ लोग माया को तप कहते हैं, कुछ उसे 'तम' कहते हैं और कुछ जड़ । माया के अनेक नाम हैं, जैसे- ज्ञान, माया, प्रधान, प्रकृति, शक्ति और अजा ।

भाष्य–

माया की सहायता के बिना सृष्टि सम्भव नहीं है । पुरुषार्थ की पराकाष्ठा होने से सृष्टि को तप:साध्य कहा गया है । विष्णु ने सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा को तप करने को कहा । सृष्टि में सहयोगी होने के कारण 'माया' को तप कहा गया । ज्ञान (प्रकाश) पर आवरण डालने के कारण माया 'तप' है, साथ ही देवी के चैतन्य के बिना सृष्टि करने में अक्षम होने के कारण 'जड़' है । ज्ञान, माया, प्रधान, प्रकृति और शक्ति - ये माया के गुणवाचक नाम हैं । माया अनादि है, इसीलिए वह अजा है ।

श्लोक १०–

विमर्श इति तां प्राहुः शैवशास्त्रविशारदाः ।
अविद्यामितरे प्राहुर्वेदतत्त्वार्थचिन्तकाः ।।

अन्वय–

शैवशास्त्रविशारदाः तां विमर्श इति प्राहुः ।
वेदतत्त्वार्थचिन्तकाः इतरे अविद्यां प्राहुः ।।

पदच्छेद अर्थ सहित–

शैवशास्त्र + विशारदाः = शैवशास्त्र के मनीषी, ताम् = उसको (देवी) विमर्श = विमर्श, इति = ऐसा, प्राहुः = कहते हैं, वेदतत्त्व + अर्थ + चिन्तकाः = वेद तत्त्व के अर्थ को जानने वाला, इतरे = अन्य मनीषी, अविद्याम् = अविद्या, प्राहुः = कहते हैं ।

भावार्थ–

शैवशास्त्र के मनीषी देवी को 'विमर्श' संज्ञा देते हैं तथा वेदतत्त्व को जानने वाले मनीषी उन्हे 'अविद्या' नाम से अभिहित करते हैं ।

भाष्य–

'विमर्श' और 'अविद्या' दोनों पारिभाषिक शब्द हैं, अभिप्राय दोनों का एक है । कश्मीरी शैवदर्शन में जो 'विमर्श' है, वेदान्त में उसे 'अविद्या' कहा गया है । दोनों का कार्य एक है - सत्ता पर आवरण डाल देना, जिसके चलते सत्ता तिरोहित हो जाती है और उसके स्थान पर संसार दिखायी पड़ने लगता

है । सत्ता रूप में एकमात्र देवी है, किन्तु अविद्यावशात् संसार दृश्यमान हो रहा है ।

श्लोक ११–

एवं नानाविधानि स्युर्नामानि निगमादिषु ।
तस्या जडत्व दृश्यत्वाज्ज्ञाननाशात्ततोऽसती ।।

अन्वय–

एवं निगमादिषु नानाविधानि नामानि स्युः ।
दृश्यत्वात् तस्या जडत्वं ज्ञाननाशात् ततः असती।।

पदच्छेद अर्थ सहित–

एवम् = इस प्रकार, निगमादिषु = वेद आदि ग्रन्थों में, नानाविधानि = नाना प्रकार के, नामानि = नाम, स्युः = हैं, दृश्यत्वात् = दिखायी पड़ने के कारण, तस्याः = उसकी (देवी की) जडत्वम् = जड़ता, ज्ञाननाशात् = ज्ञान-प्राप्ति से नष्ट होने के कारण, ततः = इसलिए, असती = असत् (स्त्री)

भावार्थ–

वेद आदि आर्ष ग्रन्थों में देवी के नाना प्रकार के नाम मिलते हैं । संसार के रूप में दृश्यमान होने के कारण देवी की सत्ता जड़ प्रतीत होती है । ज्ञान होने पर संसार नष्ट हो जाता है, तब संसार के रूप में देवी की जड़ता का भी अस्तित्व नहीं रहता ।

भाष्य–

अज्ञान की दृष्टि से सारा प्रपञ्च ही देवीमय है । इसलिए सृष्टि के सभी नाम देवी के नाम है । संसार के रूप में देवी का स्वरूप जड़ है । वह जड़ तभी तक है जब तक संसार है । ज्ञान से जब संसार का नाश हो जाता है तब देवी का जड़ भाव भी समाप्त हो जाता है और वह अपने विशुद्ध चैतन्य रूप में रहती है, जो उनका शाश्वत स्वरूप है ।

श्लोक १२–

चैतन्यस्य न दृश्यत्वं दृश्यते जड़मेव तत् ।
स्वप्रकाशं च चैतन्यं न परेण प्रकाशितम् ।।

अन्वय–

चैतन्यस्य दृश्यत्वं न दृश्यत्वे तत् जड़म् एव ।
चैतन्यं च स्वप्रकाशं परेण प्रकाशितं न ।।

पदच्छेद अर्थ सहित–

चैतन्यस्य = चैतन्य का, दृश्यत्वं = दिखायी पड़ना, न = नहीं, दृश्यत्वे = दिखायी पड़ने पर, तत्= वह (चैतन्य), जड़म् = जड़, एव = ही, चैतन्यं = चैतन्य, च = और, स्वप्रकाशं = स्वयं प्रकाशस्वरूप, परेण = किसी दूसरे द्वारा, प्रकाशितम् = प्रकाशित, न = नहीं ।

भावार्थ–

चैतन्य दिखायी नहीं पड़ता । जो दिखाई पड़ता है वह जड़ है । चैतन्य स्वप्रकाश स्वरूप है, वह दूसरे से प्रकाशित नहीं होता ।

भाष्य–

सभी दिखायी पड़ने वाली वस्तुएँ जड़ हैं । चैतन्य दिखायी नहीं पड़ता, क्योंकि दिखायी पड़ेगा तो वह भी जड़ हो जाएगा । जड़ वस्तु को देखने के लिए चैतन्य चाहिए । चैतन्य स्वयं प्रकाश स्वरूप हे । चैतन्य को देखा नहीं जा सकता, वह केवल अनुभव में आता हे । क्योंकि जड़ स्वयं अपना अनुभव नहीं करा सकता । जड़ की जड़ता का अनुभव करने के लिए चैतन्य अनिवार्य है ।

श्लोक १३–

अनवस्थादोषसत्त्वान्न स्वेनापि प्रकाशितम् ।
कर्मकर्त्रीविरोधः स्यात्तस्मात्तद्दीपवत्स्वयम् ।।

अन्वय–

अनवस्थादोषसत्त्वात् स्वेन अपि प्रकाशितम् न ।
कर्मकर्त्रीविरोधः स्यात् तस्मात् स्वयं दीपवत् ।।

पदच्छेद अर्थ सहित–

अनवस्थादोषसत्त्वात् = अनवस्था दोष होने के कारण, स्वेन = अपने द्वारा, अपि = भी, प्रकाशितम्= प्रकाशित्, न= नहीं, कर्मकर्त्रीविरोध: = कर्मत्व और कर्तृत्व में विरोध, स्यात् = हो जाएगा, तस्मात्= इसलिए, स्वयं =स्वदीपवत् = दीपक के समान ।

भावार्थ–

यह भी नहीं कहा जा सकता कि चैतन्य अपने आप द्वारा प्रकाशित है, क्योंकि तब अनवस्था दोष उत्पन्न हो जाएगा । कर्तृत्व और कर्मत्व दोनों परस्पर विरुद्ध हैं । वे एक साथ नहीं रह सकते । जैसे दीपक स्वयं प्रकाशित है और दूसरों को भी प्रकाशित करता है, वैसा ही चैतन्य है ।

भाष्य–

दीपक का उदाहरण उपलक्षण मात्र है । दीपक के प्रकाश के लिए पात्र, तेल और बत्ती के साथ प्रकाशमान दूसरा दीपक चाहिए । चैतन्य के साथ ऐसी बात नहीं है । चैतन्य के प्रकाश के लिए किसी बाह्य साधन अथवा अन्य चैतन्य की आवश्यकता नहीं पड़ती । अन्य चैतन्य मानने पर उसे प्रकाशित करने के लिए किसी तीसरे चैतन्य को मानना पड़ेगा । यही अनवस्था दोष है । अज्ञानवश हम चैतन्य में कर्तृत्व का संधान कर लेते हैं, किन्तु कर्मत्व तो असम्भव है ।

श्लोक १४–

प्रकाशमानमन्येषां भासकं विद्धि पर्वत ।

अतएव च नित्यत्वं सिद्धसंवित्तनोर्मम् ।।

अन्वय–

पर्वत प्रकाशमानम् अन्येषां भासकं विद्धि ।
अतएव मम सिद्धसंवित्तनोः च नित्यत्वं ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पर्वत = हे पर्वत ! प्रकाशमानम् = प्रकाशमान (चैतन्य) को, अन्येषाम् दूसरों का, भासकं = प्रकाशक, विद्धि = समझिये । अतएव = इसलिए, मम = मेरा, संवित्तनोः = ज्ञान रूप शरीर का, नित्यत्वं = नित्यत्व, सिद्ध = सिद्ध ।।

भावार्थ–

हे पर्वत ! प्रकाशमान चैतन्य को दूसरों का अर्थात् जड़ वस्तुओं का प्रकाश समझिये । इस प्रकार मेरे ज्ञानरूप शरीर की नित्यता स्पष्ट सिद्ध है ।

भाष्य–

जड़ वस्तुओं के ज्ञान हेतु चैतन्य का होना आवश्यक है । इस प्रकार चैतन्य संसार का प्रकाशक है । चैतन्य स्वयं प्रकाशमान है । प्रकाशरहित होने पर वह दूसरों को कैसे प्रकाशित कर पाता ? देवी का स्वरूप विशुद्ध चैतन्य है । विशुद्ध चैतन्य ही ज्ञान है और ज्ञान स्वयं नित्य है ।

श्लोक १५–

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादौ दृश्यस्य व्यभिचारतः ।
संविदो व्यभिचारश्च नानुभूतोऽस्ति कर्हिचित् ।।

अन्वय–

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति आदौ दृश्यस्य व्यभिचारतः ।
संविदो व्यभिचारः च कर्हिचित् अनुभूतो न अस्ति ।।

पदच्छेद अर्थ सहित–

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति = जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति - ये तीन अवस्थाएँ, आदौ = आदि में, दृश्यस्य = दृश्य (जगत) के, व्यभिचारतः = अभाव से, संविदः = संवित् , यानि ज्ञान का, व्यभिचारः = अभाव, च = और, कर्हिचित् = कभी भी, अनुभूतः = अनुभव, न= नहीं, अस्ति = है ।

भावार्थ–

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति - इन तीन अवस्थाओं में संसार की सत्ता व्यभिचारी रूप में रहती है, अर्थात् एक रूप में नहीं रहती । किन्तु संसार की अनेकरूपता का ज्ञान (संवित्) सदैव एक जैसा रहता है। ज्ञान (संवित्) का अभाव कभी नहीं होता ।

भाष्य–

जाग्रत अवस्था में संसार का एकदेशीय और आंशिक ज्ञान होता है । स्वप्नावस्था में संसार का कल्पित यानि मिथ्या ज्ञान होता है तथा सुषुप्ति अवस्था में ज्ञान का सर्वथा विलोप हो जाता है । संवित् ज्ञान की वह अवस्था है जिसमें इन तीनों का ज्ञान रहता है अर्थात् ज्ञान के अभाव का भी ज्ञान रहता है । यह ज्ञान नित्य और अव्यभिचारी होता है ।

श्लोक १६–

यदि तस्याप्यननुभवस्तर्ह्येयं येन साक्षिणा ।
अनुभूतः स एवात्र शिष्टः संविद्वपुः पुरा ।।

अन्वय–

यदि तस्य अपि अननुभवः तर्हि साक्षिणा अयं पुरा अनुभूतः स एव अत्र शिष्टः संविद्वपुः ।

पदच्छेद अर्थ सहित–

यदि = यदि, तस्य = उसका, अपि = भी, अननुभव = अभाव का अनुभव, तर्हि = तब, येन = जिससे, साक्षिणा = साक्षी के द्वारा, अयम् = यह (संवित्) पुरा = पहले, अनुभूतः = अनुभव किया, स= वह, एव = ही, अत्र = यहाँ, शिष्टः = वास्तविक, संविद्वपुः = ज्ञान यानि संवित् का स्वरूप ।

भावार्थ–

यदि पूर्व श्लोक में कहे गये संवित् (ज्ञान) के अभाव का अनुभव हो (जो असम्भव है) तो जिस साक्षी के द्वारा ज्ञान के अभाव का अनुभव हुआ है, वही संवित् का वास्तविक स्वरूप होगा ।

भाष्य–

ज्ञान के अभाव का ज्ञान संवित् है । संवित् का कोई साक्षी नहीं हो सकता । साक्षी मानने पर अनवस्था दोष उत्पन्न होगा । फिर भी, संवित् का कोई साक्षी हो तो वह भी संवित् कहलायेगा । साथ ही, पूर्व संवित् और पर संवित् में कोई अन्तर न रहेगा ।

श्लोक १७–

अतएव च नित्यत्वं प्रोक्तं सच्छास्त्रकोविदैः ।
आनन्दरूपता चास्याः परप्रेमास्पदत्वतः ।।

अन्वय–

अतएव सच्छास्त्रकोविदैः नित्यत्वं प्रोक्तं ।
परप्रेमास्पदत्वतः च अस्याः आनन्दरूपता ।।

पदच्छेद अर्थ सहित–

अतएव = इसलिए, सत् + शास्त्र + कोविदैः = उत्तम शास्त्रों के विद्वानों द्वारा, नित्यत्वं = नित्यता, च = और, प्रोक्तम् = कहा गया है, पर+प्रेमास्पदत्वतः = परम प्रेमास्पदता के कारण, अस्याः = इसकी, आनन्दरूपता = आनन्द ही जिसका स्वरूप है, उसका भाव ।

भावार्थ–

इसलिए उत्तम शास्त्र के ज्ञाता विद्वानों ने संवित् को नित्य कहा है । संवित् परम प्रेमस्वरूप है, इसलिए वह आनन्द से परिपूर्ण है ।

भाष्य–

संवित् (ज्ञान) नित्य है । प्रेमस्वरूप होने के कारण उसमें आनन्द का अतिरेक है, और यही देवी का स्वरूप है । सत्ता, ज्ञान और आनन्द की परिपूर्णता देवी के स्वरूप की विशेषता है । व्यभिचारी होने के कारण संवित् परम प्रेमास्पद है और सर्वोच्च शुभ भी ।

श्लोक १८–

मा न भूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनि स्थितम् ।
सर्वस्यान्यस्य मिथ्यात्वादसङ्गत्वं स्फुटं मम ।।

अन्वय–

न भूवं मा हि भूयासम् इति प्रेमात्मनि स्थितम् ।
अन्यस्य सर्वस्य मिथ्यात्वात् मम असङ्गत्वं स्फुटम्।।

पदच्छेद अर्थसहित–

न = नहीं, भूवम् = थी, मा = नहीं, हि = क्योंकि, भूयासम् = थी, इति = इस प्रकार, प्रेमात्मनि = प्रेम रूप में सबकी आत्मा में, अन्यस्य = अन्य के, सर्वस्य = सबके, मिथ्यात्वात् = मिथ्या होने के कारण, मम = मेरी, असङ्गत्वम् = असंगता, स्फुटम् = स्पष्ट ।

भावार्थ–

पूर्व में मेरा अभाव था, ऐसा नहीं; मैं तब भी थी । उस समय मैं प्रेम रूप में सबकी आत्मा में थी । अन्य सभी वस्तुओं के मिथ्या होने के कारण मेरा उन वस्तुओं से सम्बन्ध न होना स्पष्ट (स्वाभाविक) है ।

भाष्य–

देहधारी देवी कहती हैं कि देह धारण के पूर्व भी मेरा अस्तित्व था । मेरा अस्तित्व चिरन्तन है । देहरहित अवस्था में मैं सबकी आत्मा में प्रेम रूप में विराजमान रहती हूँ । प्रेम रूप में देवी रूप-आकार रहित हैं, आत्मा भी रूप आकार से रहित है । प्रेम रूप में देवी सनातन हैं और पार्थिव वस्तुओं से मेरा सम्बन्ध कभी नहीं रहा । अविनाशी का नश्वर से मेल कैसे हो सकता है?

श्लोक १९–

अपरिच्छिन्नताप्येवमत एव मता मम ।
तच्च ज्ञानं नात्मधर्मो धर्मत्वे जडतात्मनः ।।

अन्वय–

अत एव मम अपरिच्छिन्नता अपि एवं मता ।
तत् च ज्ञानं आत्मधर्मो न धर्मत्वे आत्मनः जडता।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अत एव = इसप्रकार, मम= मेरी, अपरिच्छिन्नता = व्यापकता, अपि = भी, एवम् = और, मता = स्वीकार की गयी, तत् = वह, च = और ज्ञानम् = ज्ञान, आत्मधर्मः = आत्मा का धर्म, न = नहीं, धर्मत्वे = धर्म में, आत्मनः = आत्मा की, जडता = जड़ता ।

भावार्थ–

प्रेम रूप में मैं निराकार हूँ । इस प्रकार मुझे अपरिच्छन्न अथवा सर्वव्यापक माना गया है । ज्ञान आत्मा का धर्म नहीं है, क्योंकि ज्ञान को आत्मा का धर्म (गुण या स्वभाव) मान लेने से आत्मा की जड़ता सिद्ध हो जाएगी । जबकि आत्मा चैतन्य स्वरूप है ।

भाष्य–

वस्तुतः चैतन्य यानि ज्ञान तथा आत्मा कहने को दो हैं, वे हैं एक । प्रेम और आनन्द - ये दो नहीं, एक ही हैं । दोनों अनुभवात्मक हैं । इनका कोई रूप नहीं है । इनका अनुभव भी सर्वव्यापक है। आनन्दरूपता जड़ और चेतन सब में समान रूप से अनुस्यूत है ।

श्लोक २०–

ज्ञानस्य जडशेषत्वं न दृष्टं न च सम्भवति ।
चिद्धर्मत्वं तथा नास्ति चितश्चिन्न हि भिद्यते ।।

अन्वय–

ज्ञानस्य जडशेषत्वं न दृष्टं न च सम्भवति ।
तथा चिद्धर्मत्वं नास्ति हि चितश्चिन्न भिद्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ज्ञानस्य = ज्ञान का, जडशेषत्वम् = किसी भी अंश में जड़ता, न = नहीं , दृष्टम् = देखा गया, न= नहीं, च = और, सम्भवति = सम्भव है, तथा = साथ ही, चित् + धर्मत्वम् = चित् में धर्म (गुण) का होना, न + अस्ति = नहीं है, हि = क्योंकि, चितः + चित् + न = चित् से चित् नहीं, भिद्यते = भेद है ।

भावार्थ–

ज्ञान के किसी अंश में जड़ता नहीं देखी गयी, भविष्य में भी देखे जाने की सम्भावना नहीं है । चित् में भी कोई धर्म अथवा विकार नहीं है । इस प्रकार ज्ञान और चित् दोनों समानधर्मा हैं । ज्ञान रूप चित् और आत्मरूप चित् दोनों एक हैं ।

भाष्य–

ज्ञान और आत्मा दोनों चित्स्वरूप हैं । दोनों में कोई धर्म अथवा विकार न होने से नित्य हैं । वस्तुत: दोनों एक हैं । संवित् और ज्ञान में जो अन्तर है, वही चित् और चित्त में अन्तर है । संवित् समस्त इन्द्रियगोचर वस्तुओं के ज्ञान का आधार है यानि यह निर्विशेष ज्ञान है । इसी प्रकार चित् (विशुद्धचैतन्य) समस्त चिन्तन का आधार यानि निर्विशेष चित्त है ।

श्लोक २१–

तस्मादात्मा ज्ञानरूपः सुखरूपश्च सर्वदा ।
सत्यः पूर्णोऽप्यसङ्गश्च द्वैतजालविवर्जितः ।।

अन्वय–

तस्मात् आत्मा सर्वदा ज्ञानरूपः सुखरूपः च ।
सत्यः पूर्णः अपि असङ्गः द्वैतजालविवर्जितः च।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तस्मात् = इसलिए, आत्मा = आत्मा, सर्वदा = सदैव, ज्ञानरूप: = ज्ञान स्वरूप, सुखरूप: = सुखस्वरूप, च = और, सत्य: = सत्य, पूर्ण: = पूर्ण, अपि = भी, असङ्ग = संगरहित, द्वैतजालविवर्जित: = द्वैत के जाल से रहित, च = और ।

भावार्थ–

इसलिए आत्मा सदैव ज्ञानस्वरूप और सुखस्वरूप है । वह सत्य है, पूर्ण है और संगरहित है । साथ ही, उसमें द्वैतपन का लेश भी नहीं है ।

भाष्य–

आत्मा विशुद्ध चैतन्यस्वरूप होने के कारण ज्ञानस्वरूप है । सर्वाधिक प्रिय होने के कारण वह सुखस्वरूप भी है । सु = सुन्दर, ख = आकाश । आत्मा आकाश के समान व्यापक, निर्मल और प्रसन्न है । अखण्ड और शाश्वत सत्ता होने के कारण आत्मा सत्य है । वह पूर्ण है और संगरहित है । जब आत्मा के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं तब आत्मा किससे संग करेगा । आत्मा अद्वैत है क्योंकि उसके अतिरिक्त किसी की सत्ता नहीं है ।

श्लोक २२–

स पुनः कामकर्मादियुक्त्या स्वीयमायया ।
पूर्वानुभूतसंस्कारात् कालकर्मविपाकतः ।।

अन्वय–

स पुनः कामकर्मादियुक्त्या स्वीयमायया ।
पूर्वानुभूत संस्कारात् कालकर्मविपाकतः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सः = वह आत्मा, पुनः = फिर, कालकर्मादियुक्त्या = काल, कर्म आदि से युक्त होकर, स्वीयमायया= अपनी माया से, पूर्वानुभूतसंस्कारात् = पहले अनुभव किये गये संस्कार से, काल और कर्म के परिणाम से ।

भावार्थ–

वही आत्मा इच्छा और अदृष्ट से युक्त होकर, अपनी माया से, पूर्व जन्म में अनुभव हुए संस्कारों से तथा काल और कर्म के परिणाम से (सृष्टि करने की इच्छा वाला हो जाता है) ।

भाष्य–

यद्यपि आत्मा विशुद्ध चैतन्यस्वरूप, पूर्ण और असंग है, किन्तु देवी की माया की प्रेरणा से प्राक्तन संस्कारों के उद्बुद्ध हो जाने से दोषयुक्त हो जाता है । प्रथम दोष है इच्छा का उदय । एक इच्छा अनेक इच्छाओं को जन्म देती है । इच्छा के कारण मुक्तस्वरूप आत्मा अपने को बद्ध समझने लगता है । वस्तुतः इच्छा का मूल कारण देवी हैं । अज्ञानवश मनुष्य अपने को इच्छा का कारण मानता है । सृष्टि, भुक्ति और मुक्ति तीनों की स्वामिनी तो देवी ही हैं ।

सृष्टि की उत्पत्ति अहंकार से है । विद्या माया से युक्त होने के कारण अहंकार जिसमें उत्पन्न हुआ, वह ईश्वर बन्धन में आया । किन्तु अविद्या माया से मोहित जीव अहंकार को अपना मानकर सर्वदा सर्वदा के लिए बँध गया । निरहं होकर ही जीव मुक्ति का अनुभव कर सकता है ।

श्लोक २३–

अविवेकाच्च तत्त्वस्य सिसृक्षावान्प्रजायते ।
अबुद्धिपूर्वः सर्गोऽयं कथितस्ते नगाधिप ।।

अन्वय–

नगाधिप ! तत्त्वस्य अविवेकात् (स आत्मा) सिसृक्षावान् प्रजायते च । अयम् अबुद्धिपूर्वः सर्गः ते कथितः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नगाधिप = हे पर्वतराज, तत्त्वस्य = तत्त्व के, अविवेकात् = विवेक न होने से, सिसृक्षावान् = सृष्टि की इच्छा वाला, प्रजायेत = हो जाता है, च = और अयम् = यह, अबुद्धिपूर्वः = अज्ञानपूर्ण, सर्गः= सृष्टि = ते = तुमको, कथितः = कहा है ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज हिमालय ! तत्त्व का विवेक न होने से शुद्धबुद्धपूर्ण आत्मा सृष्टि की इच्छा वाला हो जाता है । सृष्टि अज्ञान की उपज है - यह मैंने आपसे बताया ।

भाष्य–

सत्तारूप में सृष्टि कभी सिद्ध नहीं होती । यह भी नहीं कहा जा सकता कि सृष्टि की सत्ता नहीं है । पर इसमें सन्देह नहीं कि सृष्टि रूप में सारा प्रपञ्च अज्ञान की देन है । ज्ञान के आलोक में सृष्टि अस्तित्व विहीन है ।

श्लोक २४–

एतद्धि यन्मया प्रोक्तं मम रूपमलौकिकम् ।
अव्याकृतं तदव्यक्तं मायाशबलमित्यपि ।।

अन्वय–

एतत् हि यत् मम अलौकिकं रूपं मया प्रोक्तम् ।
तद् अव्यक्तम् अव्याकृतं मायाशबलम् इति अपि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

एतत् = यह, हि = क्योंकि, यत् = जो, मम = मेरा, अलौकिकम् = अलौकिक रूपम् = स्वरूप, मया = मेरे द्वारा, प्रोक्तम् = कहा गया, तत् = वह, अव्यक्तम् = अव्यक्त , अव्याकृतम् = प्रारम्भिक, मायाशबलम् = माया से आवृत, इति = ऐसा, अपि = भी ।

भावार्थ–

देवी कहती हैं कि मैंने अपने जिस अलौकिक स्वरूप का वर्णन किया है, वह अव्यक्त (सृष्टि का आदि कारण) अव्याकृत (प्रारम्भिक) तथा माया से आवृत है ।

भाष्य–

देवी के दो रूप हैं - व्यक्त और अव्यक्त । अव्यक्त रूप में वे सृष्टि का आदि कारण हैं । इस रूप का निर्वचन नहीं हो सकता । अव्यक्त रूप मायाशबल भी है, तभी देवी के नाना अवतार सम्भव हैं ।

श्लोक २५–

प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु सर्वकारणकारणम् ।
तत्त्वान्यमादिभूतं च सच्चिदानन्दविग्रहम् ।।

अन्वय–

सर्वशास्त्रेषु सर्वकारणकारणं तत्त्वानामादिभूतं।
सच्चिदानन्दविग्रहं च प्रोच्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सर्वशास्त्रेषु = समस्त शास्त्रों में, सर्वकारणकारणम् = सभी कारणों का कारण, तत्त्वानाम् = तत्त्वों का, आदिभूतम् = आदि कारण, सच्चिदानन्दविग्रहम् = सत् +चित् + आनन्दविग्रहम् = सत् = चित् = आनन्दमय विग्रह वाला, च = और ।

भावार्थ–

समस्त शास्त्रों में मेरे इस रूप को सभी कारणों का कारण; महत् अहंकार आदि तत्त्वों का आदि कारण तथा सत् = चित् - आनन्दमय विग्रह वाला बताया गया है ।

भाष्य–

उपर्युक्त श्लोकों में देवी ने अपने जिस स्वरूप का वर्णन किया है, वह पूर्ण सत्य, पूर्ण चैतन्य और पूर्ण आनन्द स्वरूप है । वह सभी कारणों का कारण है, इसीलिए उसे महद्योनि कहा गया है ।

श्लोक २६–

सर्वकर्मघनीभूतमिच्छाज्ञानक्रियाश्रयम् ।
ह्रींकारमन्त्रवाच्यं तदादितत्त्वं तदुच्यते ।।

अन्वय–

तदा तत् सर्वकर्मघनीभूतम् इच्छाज्ञानक्रियाश्रयम् ।
ह्रींकारमन्त्रवाच्यं आदितत्वम् उच्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तदा = तब, इसलिए; तत् = उसे, सर्वकर्मघनीभूतम् = सम्पूर्ण कर्मों का साक्षी, इच्छाज्ञानक्रिया + आश्रयम् = इच्छा - ज्ञान और क्रिया का अधिष्ठान, ह्रींकारमन्त्रवाच्यम् = ह्रींकार मन्त्र द्वारा वाच्य, आदितत्त्वम् = आदि तत्त्व, उच्यते = कहा गया ।

भावार्थ–

उस रूप को सम्पूर्ण कर्मों का साक्षी, इच्छा - ज्ञान तथा क्रियाशक्ति का अधिष्ठान, ह्रींकार मन्त्र द्वारा वाच्य (अर्थ) और आदि तत्त्व कहा गया है ।

भाष्य–

देवी का उपर्युक्त रूप सम्पूर्ण कर्मों का साक्षी है । सभी कर्म देवी से ही उत्पन्न होते हैं परन्तु देवी स्वयं उनके प्रति कर्त्ता भाव नहीं रखतीं - साक्षी, चेता, केवल निर्गुणश्च । मानव की तीन प्रवृत्तियाँ हैं - इच्छा, ज्ञान और क्रिया । इन तीनों क्रियाओं का अधिष्ठान देवी हैं । ह्रींकार मंत्र, जो देवी का मूल बीज मन्त्र हैं, का अभिप्राय भी देवी का उपर्युक्त स्वरूप है । यही आदि तत्त्व है । भ्रामरी रूप में देवी ने ह्रींकार ध्वनि किया । वही 'ह्रीं' कामराज बीजमंत्र बना । यद्यपि यह महालक्ष्मी का मंत्र है किन्तु इसमें महासरस्वती (ऐं) और महाकाली (क्लीं) का भी समाहार है । हकार, रकार, ईकार और अनुस्वार से समन्वित यह बीज मंत्र देवी के स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीयावस्था को समेटे हुए है, साथ ही देवी की तुरीयातीतावस्था भी गुप्त है ।

श्लोक २७–

तस्मादाकाश उत्पन्नः शब्दतन्मात्ररूपकः ।
भवेत्स्पर्शात्मको वायुस्तेजोरूपात्मकः पुनः ।।

अन्वय–

तस्मात् शब्दतन्मात्ररूपकः आकाश उत्पन्नः ।
पुनः स्पर्शात्मको वायुः रूपात्मकं तेजो भवेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तस्मात् = उससे (आदि तत्त्व से), शब्दतन्मात्ररूपकः = शब्द तन्मात्रा वाला, आकाशः = आकाश, उत्पन्नः = उत्पन्न हुआ, पुनः = फिर, स्पर्शात्मकः = स्पर्श तन्मात्रा वाला, वायुः = वायु, रूपात्मकम्= रूप तन्मात्रा वाला, तेजः = तेज, भवेत् = उत्पन्न हुआ ।।

भावार्थ–

देवी के आदि तत्त्व से शब्द तन्मात्रा वाला आकाश उत्पन्न हुआ फिर स्पर्श तन्मात्रा वाला वायु और रूप तन्मात्रा वाला तेज उत्पन्न हुआ ।

भाष्य–

यहाँ सृष्टि की प्रक्रिया बतायी जा रही है । देवी का आदि तत्त्व सभी कारणों का कारण है । उसी से महत अहंकार जैसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व उत्पन्न होते हैं । तत्त्वों में सर्वप्रथम अनुभव आने वाला आकाश है । इसलिए आकाश को प्रथम सृष्टि माना गया । आकाश से वायु, वायु से तेज उत्पन्न हुआ। आकाश सब वस्तुओं को अवकाश प्रदान करता है ।

श्लोक २८–

जलं रसात्मकं पश्चात्ततो गन्धात्मिका धरा ।
शब्दैकगुण आकाशो वायुः स्पर्शरवान्वितः ।।

अन्वय–

ततः पश्चात् रसात्मकं जलं गन्धात्मिका धरा ।
आकाशः शब्दैकगुणः वायुः स्पर्शरवान्वितः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ततः पश्चात् = इसके बाद, रसात्मकम् = रसयुक्त, जलम् = जल, गन्धात्मिका = गन्ध गुण वाली, धरा = पृथ्वी, आकाशः = आकाश, शब्दैकगुणः = शब्द नामक एक गुण वाला, वायुः = वायु, स्पर्शरवान्वितः = शब्द तथा स्पर्श - इन दो गुणों से युक्त ।

भावार्थ–

इसके बाद रस युक्त जल तथा गन्ध गुण वाली पृथ्वी की क्रमशः उत्पत्ति हुई । आकश का एक मात्र गुण है शब्द । वायु के दो गुण हैं - शब्द और स्पर्श ।

भाष्य–

पंचभूतों में सबसे सूक्ष्म है आकाश, जिसकी तन्मात्रा शब्द है । स्थूल सृष्टि की प्रथम रचना आकाश

है । आकाश का गुण शब्द है । अन्य धर्मग्रन्थों में सृष्टि का उद्भव शब्द से माना गया है । वैज्ञानिक भी आदिम विस्फोट को सृष्टि का कारण मानते हैं । पंचभूतों में आकाश से स्थूल है वायु । वायु के दो गुण हैं - शब्द और स्पर्श । वायु में वस्तुओं को संचालित करने की विशेषता है ।

श्लोक २९–

शब्दस्पर्शरूपगुणं तेज इत्युच्यते बुधैः ।
शब्दस्पर्शरूपरसैरापो वेदगुणाः स्मृताः ।।

अन्वय–

शब्दस्पर्शरूपगुणं तेज इति बुधैः उच्यते ।
शब्दस्पर्शरूपरसैरापो वेदगुणाः स्मृताः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

शब्दस्पर्शरूपगुणम् = शब्द, स्पर्श और रूप - इन तीन गुणों से युक्त तत्त्व को, तेज = तेज, इति= इस प्रकार, बुधैः = विद्वानों द्वारा, उच्यते = कहा जाता है, शब्दस्पर्शरूपरसैः, शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस से युक्त तत्त्व को, आपः = जल के वेदगुणाः = गुण, स्मृताः = कहे गये हैं ।

भावार्थ–

तेज नामक तत्त्व शब्द, स्पर्श और रूप - इन तीन गुणों से युक्त है । विद्वान ऐसा मानते हैं। इसीप्रकार, शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस - ये चार गुण जल के बताये गये हैं ।

भाष्य–

आकाश नामक तत्त्व एक है, उसका गुण भी एक है । सृष्टि के विस्तार के साथ-साथ तत्त्वों की संख्या बढ़ती जाती है । प्रत्येक परवर्ती तत्त्व में उसके पूर्ववर्ती गुण अवश्य रहते हैं ।

श्लोक ३०–

शब्दस्पर्शरूपरसगन्धैः पञ्चगुणा धरा ।
तेभ्योऽभवन्महत्सूत्रं यल्लिङ्गं परिचक्षते ।।

अन्वय–

शब्दस्पर्शरूपरसगन्धैः पञ्चगुणा धरा ।
तेभ्यों महत्सूत्रम् अभवन् यत् लिङ्गं परिलक्षते।।

पदच्छेद अर्थसहित–

शब्द + स्पर्श + रूप + रस + गन्धैः = शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध द्वारा पञ्चगुणाः = पाँच गुणों से युक्त, धरा = पृथ्वी, तेभ्यः = पंच महाभूतों से महत् = महान, सूत्रम् = सूत्र, अभवन्= उत्पन्न हुआ, यत् = जो, लिङ्गम् = लिङ्ग, परिचक्षते = कहा जाता है ।

भावार्थ–

शब्द, स्पर्श, रुप, रस और गन्ध - इन पाँच गुणों से युक्त पृथ्वी है । इन्हीं पाँच गुणों से महान् सूत्र उत्पन्न हुआ, जिसे लिङ्ग कहा जाता है ।

भाष्य–

यह लिङ्ग परमात्मा का सूक्ष्म शरीर है । स्थूल सृष्टि पञ्चभूतात्मक है । सूक्ष्म सृष्टि पञ्चतन्मात्रक है । महान् सूत्र को लिङ्गदेह भी कहते हैं । महान् सूत्र संज्ञा इसलिए पड़ी क्योंकि स्थूल सृष्टि का सूत्रपात लिङ्ग से होता है ।

श्लोक ३१–

सर्वात्मकं तत्सम्प्रोक्तं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः ।
अव्यक्तं कारणो देहः स चोक्तः पूर्वमेव हि ।।

अन्वय–

तत् सर्वात्मकं सम्प्रोक्तम् अयम् आत्मनः सूक्ष्मदेहः ।
अव्यक्तं कारणो देहः स हि च पूर्वम् एव उक्तः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत् = वह लिङ्ग, सर्वात्मकम् = सर्वात्मक, सम्प्रोक्तम् = कहा गया है, अयम् = यह लिङ्ग, आत्मनः= परमात्मा का, सूक्ष्मदेहः = सूक्ष्म देह, अव्यक्तम् = अव्यक्त कारण देहः = कारण शरीर, सः = वह, हि = क्योंकि, च= और,पूर्वम् = पहले, एव = ही, उक्तः = कहा गया है ।

भावार्थ–

यह लिङ्ग सर्वात्मक कहा गया है । यह हिरण्यगर्भ यानि ईश्वर का सूक्ष्म शरीर है । जिसमें यह जगत् बीज रूप में स्थित है और जिससे लिङ्गदेह की उत्पत्ति हुई है, वह अव्यक्त कहा जाता है । वह ईश्वर का कारण शरीर है, जिसके विषय में पहले कहा जा चुका है ।

भाष्य–

जैसे मनुष्य के स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर होते हैं; वैसे ही विराट पुरुष (ईश्वर) के भी स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर होते हैं । ईश्वर का कारण शरीर अव्यक्त है, उसमें सिसृक्षा नहीं है, वह सर्वदा ज्ञान रूप तथा सुख रूप है । किन्तु उसमें जगत् बीज रूप में स्थित है । उसी से लिङ्गदेह की उत्पत्ति होती है । उसे परमात्मा कहा गया है ।

श्लोक ३२–

यस्मिञ्जगद्बीजरूपं स्थितं लिङ्गोद्भवो यतः ।
ततः स्थूलानि भूतानि पञ्चीकरणमार्गतः ।।

अन्वय–

यस्मिन् जगद्बीजरूपं स्थितं यतः लिङ्गोद्भवः ।

ततः पञ्चीकरणभार्गतः स्थूलानि भूतानि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यस्मिन् = जिसमें (ईश्वर के कारण शरीर में), जगद्बीजरूपम् = संसार बीज रूप में, स्थितम्= स्थित हैं, यतः = जिसमें से, लिङ्गोद्भवः = लिङ्ग की उत्पत्ति, ततः = उसके द्वारा, पञ्चीकरणमार्गतः= पञ्चकरण प्रक्रिया द्वारा, स्थूलानि = स्थूल, भूतानि = भूत ।

भावार्थ–

जिस ईश्वर के कारण शरीर में जगत् बीज रूप में स्थित है तथा जिससे लिङ्ग की उत्पत्ति हुई है, उसी से पञ्चीकरण प्रक्रिया द्वारा स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं ।

भाष्य–

सृष्टि के सभी उपादान ईश्वर से उत्पन्न हैं । ऐसा न मानने पर तत्तत् पदार्थ की स्वतन्त्र सत्ता हो जाएगी। तब ईश्वर का सामर्थ्य कुंठित हो जाएगा, जो सम्भव नहीं है ।

श्लोक ३३–

पञ्चसंख्यानि जायन्ते तत्प्रकारस्तथोच्यते ।
पूर्वोक्तानि च भूतानि प्रत्येकं विभजेद् द्विधा ।।

अन्वय–

पञ्चसंख्यानि जायन्ते तत्प्रकारः तथा उच्यते ।
पूर्वोक्तानि भूतानि च प्रत्येकं द्विधा विभजेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पञ्चसंख्यानि = पाँच महाभूत, जायन्ते = होते हैं, तत्प्रकारः = उनके प्रकार तथा = इस प्रकार, उच्यते= कहा जाता है, पूर्वोक्तानि = पहले कहे गये, भूतानि = भूत, च + और, प्रत्येकम् = प्रत्येक भूत को, द्विधा = दो बराबर बराबर भाग करके, विभजेत् = बाँट दे ।

भावार्थ–

कुल पाँच महाभूत होते हैं - आकाश, वायु, तेज, जल तथा अग्नि ।प्रत्येक भूत को दो बराबर - बराबर भाग में बाँट दें ।

भाष्य–

यहाँ पञ्चींकरण प्रक्रिया का वर्णन किया जा रहा है ।

श्लोक ३४–

एकैकं भागमेकस्य चनुर्धा विभजेत् गिरे ।
स्वस्वेतरद्वितीयांशे योजनात्पञ्च पञ्च ते ।।

अन्वय–

गिरे एकस्य एकैकं भागं चतुर्धा विभजेत् ।
स्वस्वेतरद्वितीयांशं योजनात् ते पञ्च पञ्च ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

गिरे = हे पर्वतराज, एकस्य = प्रत्येक भूत के, एकैकं भागम् = प्रथम आधे भाग को, चतुर्धा = चार भागों में, विभजेत् = विभक्त कर दे, स्व + स्व + इतर + द्वितीय + अंशे = अन्य चार भूतों के अवशिष्ट अर्द्धांश में, योजनात् = संयोजन करने से, ते = वे, पञ्च पञ्च = पाँच स्थूल भूत ।

भावार्थ–

प्रत्येक भूत के प्रथम आधे भाग को पुनः चार भागों में विभक्त कर दे, इसप्रकार प्रथम भाग के विभक्त चतुर्थांश को अन्य चार भूतों के अवशिष्ट अर्द्धांश में संयोजित कर दे । इस प्रकार भूत के अर्द्धांश में तदतिरिक्त चार भूतों के अंश का योग होने से पाँचों स्थूल भूतों का निर्माण हो जाता है ।

भाष्य–

पंचीकरण की प्रक्रिया का वर्णन है ।

श्लोक ३५–

तत्कार्यं च विराड्देहः स्थूलदेहोऽयमात्मनः ।
पञ्चभूतस्थसत्त्वांशैः श्रोत्रादीनां समुद्भवः ।।

अन्वय–

तत्कार्यं विराड्देहः च अयम् आत्मनः स्थूलदेहः।
पञ्चभूतस्थसत्त्वांशैः श्रोत्रादीनां समुद्भवः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत् = वह, कार्यम् = सृष्टि, विराड्देहः = विराट् शरीर, च = और , अयम् = य आत्मनः = परमात्मा का, स्थूलदेहः = स्थूल देह, पञ्चभूतस्थसत्त्वांशैः = पंच भूत में स्थित सत्त्व अंशों से, श्रोत्रादीनाम् = श्रोत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों की, समुद्भवः = उत्पत्ति ।

भावार्थ–

इस प्रकार पंचीकृत भूतरूपी कारण के द्वारा जो कार्य (सृष्टि) हुआ, वहीं विराट् शरीर है और वहीं परमात्मा का स्थूल देह है । पंच भूतों में स्थित सत्त्व के अंशों के परस्पर मिलने से श्रोत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति हुई ।

भाष्य–

प्रथम स्थूल सृष्टि परमात्मा का स्थूल देह ही है । पंच भूतों के दो अंश हैं - सात्विक और राजस। सात्विक अंश से ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है ।

श्लोक ३६–

ज्ञानेन्द्रियाणां राजेन्द्र प्रत्येकं मिलितैस्तु तैः ।
अन्तःकरणमेकं स्याद् वृत्तिभेदाच्चतुर्विधम् ।।

अन्वय–

राजेन्द्र प्रत्येकं तैः मिलितैः तु ज्ञानेन्द्रियाणाम् (समुद्भवः) अन्तःकरणम् एकं स्याद् वृत्तिभेदात् चतुर्विधम।।

पदच्छेद अर्थसहित–

राजेन्द्र = हे राजेन्द्र ! प्रत्येकम् = परस्पर, तैः = उनके द्वारा (पंच भूतों में स्थित सत्त्वांशों द्वारा), मिलितैः = मिलने से, तु = तो, ज्ञानेन्द्रियाणाम् = ज्ञानेन्द्रियों का, अन्तःकरणम् = अन्तःकरण, एकम्= एक, स्यात् = हुआ, वृत्तिभेदात् = वृत्ति के भेद से, चतुर्विधम् = चार प्रकार का ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! पंचभूतों में स्थित सत्त्वांशों के परस्पर मिलने से पाँच ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति हुइ। साथ ही, एक अन्तःकरण भी उत्पन्न हुआ, जो वृत्ति भेद से चार प्रकार (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) का हो जाता है ।

भाष्य–

ज्ञानेन्द्रियों से हमें भौतिक पदार्थों का ज्ञान मिलता है । सत्त्व का गुण है ज्ञान, प्रकाश । इसीलिए पंचभूतों के सत्त्व अंशों से ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति हुई । समस्त ज्ञान का स्रोत अन्तःकरण है । उसकी भी उत्पत्ति पंचभूतों के सत्त्व अंशों से हुई है ।

श्लोक ३७–

यदा तु संकल्पविकल्पकृत्यं तदा भवेत्तन्मन इत्यभिख्यम् ।
स्याद् बुद्धिसंज्ञं च यदा प्रवेत्ति सुनिश्चितं संशयहीनरूपम् ।।

अन्वय–

यदा तु संकल्पविकल्पकृत्यं भवेत् तदा तत् मन इत्यभिख्यम् ।
यदा संशयहीनरूपं सुनिश्चितं प्रवेत्ति च बुद्धिसंज्ञं स्यात् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यदा = जब, तु = तो, संकल्पविकल्पकृत्यम् = संकल्प - विकल्प वृत्ति से युक्त, भवेत् = होता है, तदा = तब, तत् = वह यानि अन्तःकारण, मन = मन, इति = इस प्रकार, अभिख्यम् = संज्ञा वाला, यदा = जब, संशयहीनरूपम् = संशयरहित, सुनिश्चितम् = निश्चयात्मक वृत्ति से युक्त, प्रवेत्ति = जानता है, च = और बुद्धिसंज्ञम् = बुद्धि की संज्ञा वाला ।

भावार्थ–

जब वह यानि अन्तःकरण संकल्प-विकल्प वृत्ति से युक्त होता है, तब उसकी मन संज्ञा होती है तथा वही अन्तःकरण जब संशयरहित निश्चयात्मक वृत्ति से युक्त होता है तब उसे 'बुद्धि' की संज्ञा

मिलती है ।

भाष्य–

करण दो हैं - अन्त:करण और बहि:करण । बहि:करण के भी दो भेद हैं - ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय। ज्ञानेन्द्रियों से बाह्य जगत् का ज्ञान होता है और कर्मेन्द्रियों से शरीर की आवश्यकता की पूर्ति होती है। बहि:करण स्थूल हैं, अन्त:करण सूक्ष्म । अन्त:करण के प्रसुप्त होने पर बहि:करण निष्क्रिय हो जाते हैं । सभी कर्मों का प्रेरक अन्त:करण है । शरीर में इसका कोई निश्चित स्थान नहीं बताया जा सकता। सामान्यत: इसका स्थान मस्तिष्क माना जाता है ।

श्लोक ३८–

अनुसन्धानरूपं तच्चितं च परिकीर्तितम् ।
अहङ्कृत्यामवृत्त्या तु तदहङ्कारतां गतम् ।।

अन्वय–

अनुसन्धानरूपं तत् च चित्तं परिकीर्तितम् ।
तद्तुअहङ्कृत्यात्मवृत्त्या अहंकारतां गतम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अनुसन्धानरूपम् = चिन्तन वृत्ति वाला, तत् = वह (अन्त:करण), च = और चित्तम् = चित्त, परिकीर्तितम् = कहा जाता है, तत् = वह (अन्त:करण), अहङ्कृति + आत्मवृत्त्या = अहंकार वृत्ति से युक्त होने पर, अहङ्कारताम् = अहंकारता को, गतम् = प्राप्त हुआ ।

भावार्थ–

वह अन्त:करण चित्तवृत्ति वाला होने पर 'चित्त' कहलाता है तथा अहंकृति से युक्त होने पर 'अहंकार' की संज्ञा पा जाता है ।

भाष्य–

अन्त:करण एक इन्द्रिय है किन्तु वह चार प्रकार के कार्य करती है । इसलिए अन्त:करण को अन्त:चतुष्ट्य या करण-चतुष्ट्य भी कहा जाता है । मनुष्य के सभी अच्छे - बुरे कर्मों का प्रेरक अन्त:करण ही है । सारी साधनाएँ अन्त:करण की शुद्धि के लिए हैं । निर्मल मन में परमात्मा प्रतिबिम्बित होता है - 'निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा' - 'मानस' । ऋषि परमेश्वर से प्रार्थना करता है - 'तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु' । व्यासपुत्र शुकदेव को महाराज जनक उपदेश करते हैं—

मनस्तु सुखदु:खानां महतां कारणं द्विज ।
जाते तु निर्मले ह्यस्मिन्सर्वं भवति निर्मलम् ।।

देवी भा० प्र०स्क० १८-३७

हे ब्राह्मणकुमार ! मनुष्य के सुख-दु:ख का सबसे बड़ा कारण मन है । मन के निर्मल (राग-द्वेष से रहित) हो जाने पर सब कुछ निर्मल अर्थात् सच्चित्सुखात्मक हो जाता है ।

श्लोक ३९–

तेषां रजोंशैर्जातानि क्रमात्कर्मेन्द्रियाणि च ।
प्रत्येकं मिलितैस्तैस्तु प्राणो भवति पञ्चधा ।।

अन्वय–

तेषां रजोंशैः च क्रमात् कर्मेन्द्रियाणि जातानि ।
तु तैः प्रत्येकं मिलितैः प्राणः पञ्चधा भवति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तेषाम् = उनके, रजोंशै: = राजस अंशों द्वारा, च = और, क्रमात् = क्रमश:, कर्मेन्द्रियाणि = कर्मेन्द्रियाँ, जातानि = उत्पन्न हुई, तै: = राजस अंशों के द्वारा, प्रत्येकम् = प्रत्येक, मिलितै: = मिलने से, प्राण: = प्राण,पञ्चधा = पाँच प्रकार के, भवति = होता है ।

भावार्थ–

पाँच भूतों के राजस अंशों से क्रमश: पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं । प्रत्येक राजस अंशों के मिलने से पाँच प्रकार के प्राण उत्पन्न हुए ।

भाष्य–

रजोगुण का स्वभाव है चंचलता, क्रियाशीलता, गति । कर्मेन्द्रियों से मनुष्य क्रियाशील होता है । मनुष्येतर प्राणी अधिक क्रियाशील होते हैं, इसलिए उनकी कर्मेन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा अधिक विकसित और क्रियाशील होती हैं । प्राण भी सदैव क्रियाशील रहते हैं । राजस क्रिया-प्रधान है, इसलिए उससे पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच प्राण उत्पन्न हुए ।

श्लोक ४०–

हृदि प्राणो गुदेऽपानो नाभिस्थस्तु समानकः ।
कण्ठदेशेऽप्युदानः स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः ।।

अन्वय–

प्राणो हृदि अपानो गुदे समानकः तु नाभिस्थः ।
उदानः अपि कण्ठदेशे व्यानः सर्वशरीरगः स्यात् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

प्राण: = प्राण, हृदि= हृदय में, अपान: = अपान, गुदे = गुदा में, समानक: = समान, तु = तो, नाभिस्थ: = नाभि में स्थित, उदान: = उदान, अपि = भी कण्ठदेशे = कण्ठदेश में, व्यान:, सर्वशरीरग: = समस्त शरीर में प्रसरणशील, स्यात् = है ।

भावार्थ–

प्राण हृदय में, अपान गुदा में, समान नाभि में, उदान कण्ठ में तथा व्यान सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हुआ ।

भाष्य–

यहाँ पंच प्राणों के स्थान का वर्णन हुआ हे । इन्हीं पाँच प्राणों की सहायता से जड़ शरीर चेतन जैसा व्यवहार करता है । प्राण-वायु तो वस्तुत: एक है किन्तु कार्य की भिन्नता के चलते उसके पाँच नाम और स्थान बताये जाते हैं । व्यावहारिक दृष्टि से चैतन्य जीवात्मा और जड़ शरीर के मध्य स्थित हैं ये पाँच प्राण । दोनों के योजक हैं प्राण ।

श्लोक ४१–

ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च ।
प्राणादिपञ्चकं चैव धिया च सहितं मनः ।।

अन्वय–

ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव कर्मेन्द्रियाणि च पञ्च ।
प्राणादिपञ्चकं चैव धिया सहितं च मनः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ज्ञानेन्द्रियाणि = ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च + एव = पांच ही, कर्मेन्द्रियाणि = कर्मेन्द्रियाँ, च = और, पञ्च = पाँच, प्राणादिपञ्चकम् = प्राण + आदिपञ्चकम् = प्राण आदि पाँच, यानि पाँच प्राण, चैव = च+ एव= और+ही, धिया = बुद्धि द्वारा, सहितम् = च = और, मनः = मन ।

भावार्थ–

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, प्राण आदि पाँच वायु और बुद्धि सहित मन इन सत्रह अवयवों वाला सूक्ष्म शरीर है ।

भाष्य–

१. पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ - श्रोत्र, नेत्र, नासिका, जिह्वा और त्वचा ।
२. पाँच कर्मेन्द्रियाँ - हस्त, पाद, उपस्थ, गुदा और मुख ।
३. पाँच प्राण - प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान ।
४. बुद्धि
५. मन

उपर्युक्त सत्रह अवयवों से देवी का सूक्ष्म शरीर बना है । सूक्ष्म शरीर को लिङ्ग शरीर भी कहते हैं । ध्यातव्य है कि जिह्वा ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों है । जिह्वा से हम रस का स्वाद भी लेते हैं और बोलने का कार्य भी करते हैं । सूक्ष्म शरीर में कर्मेन्द्रियों का अस्तित्व मात्र रहता है । उनसे कार्य नहीं

किया जा सकता । कर्मेन्द्रियों से कार्य कराने के लिए स्थूल शरीर का सहारा लेना पड़ता है ।

श्लोक ४२–

एतत्सूक्ष्मं शरीरं स्यान्मम लिङ्गं यदुच्यते ।
तत्र या प्रकृतिः प्रोक्ता सा राजन्द्विविधा स्मृता ।।

अन्वय–

एतत्सूक्ष्मं शरीरं स्यात् यद् मम लिङ्गम् उच्यते ।
राजन् तत्र या प्रकृति प्रोक्ता सा द्विविधा स्मृता ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

एतत् = यह, सूक्ष्मम् = सूक्ष्म, शरीरम् = देह, यत् = जो, मम = मेरा, लिङ्गम् = लिङ्ग, पहचान, उच्यते = कहा जाता है, राजन = हे राजा, तत्र = वहाँ, या = जो, प्रकृतिः = प्रकृति, प्रोक्ता = कही गयी, सा= वह, द्विविधा = दो प्रकार की, स्मृता= मानी गयी है ।

भावार्थ–

सत्रह अवयवों वाले मेरे इस सूक्ष्म शरीर को 'लिङ्ग' भी कहते हैं । हे राजन् ! प्रकृति दो प्रकार की मानी गयी है ।

भाष्य–

इसके पूर्व देवी ने अपने अन्तर्गत नित्य निवास करने वाली माया का कथन किया है । प्रकृति और माया दोनों समानार्थक हैं । एक होते हुए भी कार्य रूप से माया के दो भेद हैं - १. विद्या माया और २. अविद्या माया । प्रकृति माया का वह आदि स्वरूप है जिसमें ये दो भेद नहीं रहते । उसे हम प्रकृति का विशुद्ध रूप कह सकते हैं । देवी का प्रकृति के इस रूप से निरन्तर योग है । सृष्टि के लिए प्रकृति का साथ अनिवार्य है । प्रलय काल में भी यह प्रकृति देवी के अव्यक्त या कारण शरीर में प्रसुप्त भाव से रहती है । इसी लिए देवी ने पहले कहा है कि वह सदा मेरी सहचरी है ।

श्लोक ४३–

सत्त्वात्मिका तु माया स्यादविद्या गुणमिश्रिता ।
स्वाश्रयं या तु संरक्षेत्सा मायेति निगद्यते ।।

अन्वय–

सत्त्वात्मिका तु माया गुणमिश्रिता अविद्या स्यात् ।
या तु स्वाश्रयं संरक्षेत् सा माया इति निगद्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सत्त्वात्मिका = शुद्ध सत्त्वप्रधान, तु = तो, माया = माया, गुणमिश्रिता = गुणों से मिश्रित, अविद्या= अविद्या, स्यात् = है, या = जो, तु = तो, स्वाश्रयम् = अपने आश्रित को, संरक्षेत् = रक्षा करे, सा=

वह, माया =माया, इति = ऐसा, निमद्यते = कहीं जा सकती हैं ।

भावार्थ–

प्रकृति के दो भेद हैं - १. शुद्ध सत्त्वप्रधान २. मलिन सत्त्वप्रधान । शुद्ध सत्त्वप्रधान प्रकृति को माया और मलिन सत्त्वप्रधान प्रकृति को अविद्या कहते हैं । शुद्ध सत्त्वप्रधान होने के कारण माया अपने आश्रित रहने वाले की रक्षा करती है । अर्थात् उस पर आवरण नहीं डालती या ब्यामोह पैदा नहीं करती।

भाष्य–

माया और अविद्या एक ही प्रकृति से उत्पन्न हुई हैं । एक में शुद्ध सत्त्व है तो दूसरे में मलिन सत्त्व । शुद्ध सत्त्व को ग्रहण करने वाला प्रकृति के बन्धन में नहीं आता । मलिन सत्त्व ज्ञान पर आवरण डालता है । इसीलिए मलिन सत्त्व को ग्रहण करने वाला पुरुष प्रकृति के बन्धन में सहज ही आ जाता है । संसार में अधिकांश मलिन सत्त्व वाले लोग देखे जाते हैं, इसलिए व्यवहार में माया और अविद्या दोनों पर्याय मान लिये गये हैं ।

श्लोक ४४–

तस्यां यत्प्रतिबिम्बं स्याद् बिम्बभूतस्य चेशितुः।
स ईश्वरः समाख्यातः स्वाश्रयज्ञानवान्परः ।।

अन्वय–

तस्यां यत्प्रतिबिम्बं स्यात् ईशितुः बिम्बभूतस्य च ।
स स्वाश्रयज्ञानवान्परः ईश्वरः समास्यातः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तस्याम् = उस में (शुद्ध सत्त्वप्रधान माया में), यत् = जो, प्रतिबिम्बम् = प्रतिबिम्ब, स्यात् = है, ईशितुः = परमात्मा का, बिम्बभूतस्य = बिम्बभूत का, च = और, सः = वह, स्वाश्रयज्ञानवान्परः = स्व+आश्रय +ज्ञानवान् + परः = अपने आश्रय अर्थात् ब्रह्म को जानने वाला तथा परात्पर, ईश्वरः = ईश्वर, समाध्यातः = कहा गया है ।

भावार्थ–

उस शुद्ध सत्त्वप्रधान माया में बिम्ब रूप परमात्मा का जो प्रतिबिम्ब होता है, वही ईश्वर कहा गया है। वह ईश्वर अपने आश्रय यानि ब्रह्म को जानने वाला तथा परात्पर है ।

भाष्य–

परमात्मा वैसे तो निर्गुण और निराकार है और इसलिए उसका बिम्ब सम्भव नहीं है, किन्तु शुद्ध सत्त्व प्रधान माया के सान्निध्य में वह प्रतिबिम्बित होता है । उसे हम ईश्वर कहते हैं । एक प्रकार से ईश्वर मायाविशिष्ट ब्रह्म है । परमात्मा निर्गुण और निराकार है, परन्तु ईश्वर में सर्व गुणों की अतिशयता है । इसीलिए ईश्वर को 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः स ईश्वरः ' कहा गया है । यह ईश्वर

अपने आश्रय परमात्मा या ब्रह्म को जानता है, साथ ही, परात्पर, सर्वज्ञ और समस्त प्राणियों पर कृपा करने वाला है । इसी ईश्वर की परमात्मा रूप में उपासना की जाती है ।

श्लोक ४५-४६–

सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता च सर्वानुग्रहकारकः ।
अविद्यायां तु यत्किञ्चित्प्रतिबिम्बं नगाधिप ।।
तदेव जीवसंज्ञं स्यात्सर्वदुःखाश्रयं पुनः ।
द्वयोरपीह सम्प्रोक्तं देहत्रयमविद्यया ।।

अन्वय–

सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता सर्वानुग्रहकारकः च ।
नगाधिप अविद्यायां तु यत्किञ्चित्प्रतिबिम्बम्।।
तदेव जीवसंज्ञं स्यात् पुनः सर्वदुःखाश्रयम् ।
इह अविद्यया द्वयोरपि देहत्रयं सम्प्रोक्तम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सर्वज्ञः = सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता = सब कुछ करने वाला, सर्वानुग्रहकारकः = सब पर कृपा करने वाला, च = और, नगाधिप = हे पर्वतराज, अविद्यायाम् = अविद्या में, तु = तो, यत् = जो, किञ्चित् = कुछ, प्रतिबिम्बम् = प्रतिबिम्ब, तत् = वह, एव = हि, जीवसंज्ञं = जीव की संज्ञा, स्यात् = है, पुनः = फिर, सर्वदुःख + आश्रयम् = सभी दुःखों का घर, इह = यहाँ, अविद्यया = अविद्या के कारण, द्वयोः = दोनों का, अपि = भी, देहत्रयम् = तीन देह वाला, सम्प्रोक्तम् = कहा गया ।

भावार्थ–

ईश्वर सर्वज्ञ, सब कुछ करने वाला और सब पर कृपालु है । हे राजन् ! अविद्या में परमात्मा का जो प्रतिबिम्ब होता है, उसी की जीव संज्ञा दी जाती है । जीव सभी दुःखों का आश्रय है । माया और अविद्या के कारण ईश्वर और जीव - इन दोनों के तीन देह तथा देहत्रय के अभिमान के कारण तीन नाम कहे जाते हैं - कारण देहाभिमानी जीव को 'प्राज्ञ' सूक्ष्म देहाभिमानी जीव को 'तैजस' तथा स्थूलदेहाभिमानी जीव को 'विश्व' कहा गया है ।

भाष्य–

अविद्या के द्वारा आनन्दांश का आवरण कर देने के कारण जीव सब दुःखों का आश्रय हो जाता है । ईश्वर अविद्या से सम्पृक्त नहीं होता इसलिए उसमें दुःख का लेश मात्र भी नहीं है । ईश्वर और जीव में यही अन्तर है । अन्यथा, दोनों की सत्ता है और दोनों में चैतन्य भी है । परमात्मा सच्चिदानन्दमय है । जीव में जो थोड़ा सुख का आभास पाया जाता है, उसका कारण है कि वह परमात्मा का अंश है । ईश्वर जैसी पूर्ण सत्ता और पूर्ण चैतन्य तो जीव में भी नहीं है, आनन्दमयता तो अत्यन्त अल्प है।

जीव की अतिशय परिच्छिन्नता का कारण है अविद्या । जितनी ही अविद्या उतना ही दु:ख की भरमार।

श्लोक ४७-४८

देहत्रयाभिमानाच्चाप्यभून्नामत्रयं पुनः ।
प्राज्ञस्तु कारणात्मा स्यात्सूक्ष्मदेही तु तैजसः ।।
स्थूलदेही तु विश्वाख्यस्त्रिविधः परिकीर्तितः ।
एवमीशोऽपि सम्प्रोक्त ईशसूत्रविराट्पदैः ।।

अन्वय–

देहत्रयाभिमानात् पुनः च नामत्रयोऽपि अभूत् ।
कारणात्मा तु प्राज्ञः सूक्ष्मदेही तु तैजसः स्यात्।।
स्थूलदेही तु विश्वाख्यः त्रिविधः परिकीर्तितः ।।
एवमीशोऽपि ईशसूत्रविराट्पदैः सम्प्रोक्तः ।

पदच्छेद अर्थसहित–

देहत्रयस्य = तीन देह के, अभिमानात् = अभिमान से, पुनः = फिर, च = और, नामत्रयः = तीन नाम, अपि = भी, अभूत = हुआ, कारणात्मा = कारण आत्मा, प्राज्ञः = प्राज्ञ, सूक्ष्मदेही = सूक्ष्मदेहाभिमानी जीव, तैजसः = तैजस, स्थूलदेही = स्थूलदेहाभिमानी जीव, विश्वाख्यः = विश्व नाम वाला, त्रिविधः= तीन प्रकार का, परिकीर्तितः = कहा गया है, एवम् = इसीप्रकार, ईशः = ईश्वर, अपि = भी, ईशसूत्रविराट्पदैः = ईश, सूत्र और विराट् नामों से, सम्प्रोक्तः = कहा गया है ।

भावार्थ–

तीन देह के अभिमान से जीव के तीन नाम कहे गये हैं - 'प्राज्ञ 'तैजस' और 'जीव' । इसी प्रकार ईश्वर के भी तीन नाम हैं । कारण देहाभिमानी ईश्वर को 'ईश' सूक्ष्म देहाभिमानी ईश्वर को 'सूत्र' तथा स्थूल देहाभिमानी ईश्वर को 'विराट् ' कहा गया है ।

भाष्य–

जैसे जीव का जन्म होता है, वैसे ईश्वर का भी जन्म होता है । अन्तर इतना है कि जीव एकदेशीय और मृण्मय है, परन्तु ईश्वर व्यापक और चिन्मय है । जीव अणु है, ईश्वर विभु है । जिस प्रकार 'प्राज्ञ' तैजस' और 'विश्व' जीव की विभिन्न अवस्थाओं के नाम हैं, इसी प्रकार 'ईश' 'सूत्र' तथा 'विराट् ' ईश्वर की विभिन्न अवस्थाओं के नाम हैं । इन पारिभाषिक नामों की दार्शनिक व्याख्या है । व्यवहार में जीव और ईश्वर ये दो नाम सामान्य रूप से प्रचलित हैं ।

श्लोक ४९–

प्रथमो व्यष्टिरूपस्मृतः समष्टयात्मा परः स्मृतः ।
स हि सर्वेश्वरः साक्षाज्जीवानुग्रहकाम्यया ।।

अन्वय–

प्रथमो व्यष्टिरूपः परः समष्ट्यात्मा स्मृतः ।
स हि सर्वेश्वरः साक्षात् जीवानुग्रहकाम्यया ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

प्रथमः = पहला यानि जीव, व्यष्टिरूपः = व्यष्टि रूप वाला, परः = ईश्वर, समष्ट्यात्मा = समष्टिरूप वाला, स्मृतः = कहा गया है, सः = वह, सर्वेश्वरः = सबका ईश्वर, अधिपति, साक्षात् = स्वयं, जीव+ अनुग्रह = काम्यया = जीवों पर अनुग्रह करने की इच्छा से ।

भावार्थ–

देवी भगवती कहती हैं—

जीव को व्यष्टि रूप तथा ईश्वर को समष्टि रूप कहा गया है । वे सर्वेश्वर मेरी माया शक्ति की प्रेरणा के बिना सृष्टि नहीं करते । तात्पर्य यह कि ईश्वर भी माया के अधीन हैं । जीव संसार में आकर दुःखी न रहे, इसलिए ईश्वर नाना भोगों की सृष्टि करते हैं । किन्तु ये भोग मात्र भोगने के लिए नहीं हैं । अपितु इन भोगों के सृष्टा ईश्वर पर ध्यान लगाकर ईश्वर की प्रेरक माया और माया की भी स्वामिनी ब्रह्मरूपिणी देवी की शरण जाने के लिए हैं, जो भुक्ति-मुक्ति दोनों को देने वाली हैं । इस प्रकार ईश्वर द्वारा प्रदत्त भोग बन्धन का कारण न बनकर मोक्ष का साधन बन जाएँगे ।

श्लोक ५०–

करोति विविधं विश्वं नानाभोगाश्रयं पुनः ।
मच्छक्तिप्रेरितां नित्यं मयि राजन् प्रकल्पितः ।।

अन्वय–

पुनः नानाभोगाश्रयं विविधं विश्वं करोति ।
राजन् मच्छक्तिप्रेरितो मयि नित्यं प्रकल्पितः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पुनः =फिर, नानाभोगाश्रयम् = नाना प्रकार के भोगों से युक्त, विविधम् = अनेक प्रकार के, विश्वम्= विश्व, करोति = सृष्टि करते हैं, राजन् = हे राजन् ! मत् = मेरा, शक्तिप्रेरितः = शक्ति से प्रेरित, मयि= मुझ में, नित्यम् = नित्य, प्रकल्पितम् = कल्पित ।

भावार्थ–

ईश्वर जीवों पर कृपा करने की कामना से नाना प्रकार के भोगों से युक्त विश्वों की सृष्टि करते हैं । हे राजन्! वे ईश्वर मेरी शक्ति के अधीन होकर रज्जु में सर्प की भाँति मुझमें कल्पित हैं ।

भाष्य–

जैसे जीव अविद्या का परिणाम है, ईश्वर भी माया का परिणाम हैं । दोनों ही सत्ताएँ कल्पित हैं । इनकी काल्पनिक सत्ता का आधार स्वयं देवी भुवनेश्वरी हैं । जब जीव इस रहस्य को जान जाता है, तब उसे अपनी वास्तविक स्थिति का बोध होता है । वह जीवनन्मुक्त हो जाता है । इस प्रकार माया और अविद्या यद्यपि बन्धन के कारण हें किन्तु मोक्ष के साधन भी वही हैं ।

देवीगीता

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः (तैंतीसवाँ अध्याय)

श्लोक १–

मन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम् ।
सापि मत्तः पृथङ्माया नास्त्येव परमार्थतः ।।

अन्वय–

सर्वं चराचरं जगत् मन्मायाशक्तिसंक्लृप्तम् ।
सा माया अपि परमार्थतः मत्तः पृथक् न एव अस्ति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सर्वम् = समस्त, चराचरम् = जगत् = संसार, मत् = मेरी, तः = से, मायाशक्तिसंक्लृप्तम् = माया शक्ति से उत्पन्न, सा = वह, माया = माया, अपि = भी, परमार्थतः = परमार्थ की दृष्टि से, मत्तः = मुझसे, पृथक् = अलग, न = नहीं, अस्ति = है ।

भाष्य–

देवी ब्रह्मरूपिणी है । ब्रह्म के अतिरिक्त कोई सत्ता है नहीं । ऐसी स्थिति में नानात्मक सृष्टि की उत्पत्ति के लिए माया का अस्तित्व अनिवार्य है, क्योंकि ब्रह्म निर्विकार है, उसमें सृष्टि रूपी विकार नहीं आ सकता । किन्तु वस्तुतः माया का अस्तित्व ब्रह्म से पृथक् नहीं है । पृथक् मानने पर माया की स्वतंत्र सत्ता माननी पड़ेगी । इसीलिए परमार्थतः माया देवी से पृथक् नहीं है ।

श्लोक २–

व्यवहारदृशा सेयं विद्या मायेति विश्रुता ।
तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम् ।।

अन्वय–

सा विद्या व्यवहारदृशा माया इति विश्रुता ।
तत्त्वदृष्ट्या इयम् तु नास्ति एव केवलम् तत्त्वम् अस्ति।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सा = वह, विद्या = विद्या, व्यवहारदृशा = व्यवहार की दृष्टि से, माया = माया, इति = ऐसा,

विश्रुता= प्रसिद्ध, तत्त्वदृष्ट्या = तत्त्वदृष्टि से, इयम् = यह (माया) तु = तो, न = नहीं, अस्ति = है, एव = ही, केवलम् = मात्र, तत्त्वम् = तत्त्व ।

भावार्थ–

वह मेरी विद्या व्यवहार की दृष्टि से माया नाम से प्रसिद्ध है । तात्त्विक दृष्टि से मुझमें और माया में कोई भेद नहीं है । दोनों एक ही तत्त्व हैं ।

भाष्य–

माया के भी दो भेद हैं - १. विद्या माया और २. अविद्या माया । विद्या माया ज्ञान पर आवरण नहीं डालती, वह बताती है कि देवी और माया दोनों एक तत्त्व हैं । अविद्या माया ज्ञान पर आवरण डालकर सत्ता रूप में देवी का विलोप कर संसार को प्रत्यक्ष करती है ।

श्लोक ३–

साहं सर्वं जगत्सृष्ट्वा तदन्तः प्रविशाम्यहम् ।
मायाकर्मादिसहिता गिरे प्राणपुरःसरा ।।

अन्वय–

गिरे सा अहं सर्वं जगत्सृष्टवा मायाकर्मादिसहिता प्राणपुरःसरा तदन्तः प्रविशामि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

गिरे = हे पर्वतराज हिमालय ! सा = वह, अहम् = मैं, सर्वम् = समस्त, जगत्सृष्ट्वा = जगत् की रचना करके, मायाकर्मादिसहिता = माया और कर्म आदि के साथ, प्राणपुरःसरा = प्राणों को आगे करके, तत् = वह, अन्तः = भीतर, प्रविशामि = प्रवेश करती हूँ ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज हिमालय ! मैं सम्पूर्ण जगत् की रचना करके माया और कर्म आदि के साथ प्राणों को आगे करके उस जगत् के भीतर प्रवेश करती हूँ ।

भाष्य–

देवी जगत् की निमित्त और उपादान कारण दोनों हैं । वे माया शक्ति से जगत् की सृष्टि करती हैं । सृष्टि की निरन्तरता के लिए माया, कर्म और प्राणों को लेकर देवी स्वयं जगत् के भीतर प्रवेश करती हैं। इससे निष्कर्ष निकलता है कि सम्पूर्ण जगत् देवी का स्वरूप हे । देवीभागवत में ही आया है - 'सर्वं' देवीमय जगत्' । अज्ञानी जगत् को सुख-दुःख देने वाला और नाशवान् रूप में देखता हे । ज्ञानी जगत् को देवीमय और जगत् के व्यापार को देवी के लीला -विलास के रूप में देखता है ।

श्लोक ४–

लोकान्तरगतिर्नोचेत्कथं स्यादिति हेतुना ।
यथा यथा भवन्त्येव मायाभेदास्तथा तथा ।।

अन्वय–

नोचेत् लोकान्तरगतिः कथं स्याद् इति हेतुना ।
यथा यथा मायाभेदाः (भवन्ति) तथा तथा भवन्ति।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नोचेत् = नहीं तो, लोकान्तरगतिः = लोकों के अन्दर प्रवृत्त होने वाली विविध प्रकार की गतिविधियाँ, कथम् = कैसे, स्यात् = हो, इति = इस, हेतुना = कारण, यथा यथा = जैसी जैसी,मायाभेदाः = माया के अनेक भेद, तथा तथा = वैसी-वैसी, भवन्ति = होती हैं ।

भावार्थ–

यदि मैं इस जगत् के अन्तर में प्रवेश न करूँ तो जड़ लोकों के भीतर नाना प्रकार की गतिविधियाँ कैसे संचालित हों ? इसलिए, मैं माया के साथ प्रविष्ट होकर लोकों के अन्दर माया-भेद के अनुसार नाना प्रकार के क्रिया-कलाप सम्पन्न करती हूँ ।

भाष्य–

जैसे आकाश एक है, किन्तु उपाधि भेद से घटाकाश, मठाकाश आदि नाना प्रकार के रूप-नाम धारण कर लेता है, वैसे ही देवी माया से विशिष्ट होकर लोकों में नाना प्रकार के नाम- रूप धारण करती तथा अनेकविध क्रिया-कलाप करती हैं । अज्ञानी मनुष्य इन क्रिया-कलापों का कर्त्ता कभी अपने को मानता है, कभी जड़ प्रकृति को ।

श्लोक ५–

उपाधिभेदाद्भिन्नाहं घटाकाशादयो यथा ।
उच्चनीचादिवस्तूनि भासयन्भास्करः सदा ।।

अन्वय–

अहं यथा घटाकाशादयः उपाधिभेदाद् भिन्ना ।
भास्करः उच्चनीचादिवस्तूनि सदा प्रकाशयन् ।।

पदच्देद अर्थसहित–

अहम् = मैं, यथा = जैसे, घटाकाशादयः = घटाकाश, मठाकाश आदि, उपाधिभेदात् = उपाधि के भेद से, भिन्ना = पृथक् , भास्करः = सूर्य, उच्च = ऊँची, नीच + आदिवस्तूनि = नीच आदि वस्तुओं को, सदा = सदैव, प्रकाशित करता हुआ ।

भावार्थ–

जैसे आकाश एक है, किन्तु घट आदि की उपाधियों से अनेक नामों से जाना जाता है । वैसे ही, मैं एक होती हुई भी उपाधि भेद से भिन्न हूँ । जैसे सूर्य उत्तम और निकृष्ट - सभी वस्तुओं को प्रकाशित करता है, वैसे ही मैं नानात्मक सृष्टि में व्याप्त हूँ ।

भाष्य--

एक ही सूर्य जल में, पत्ते पर तथा शीशे में अलग-अलग दिखायी पड़ता है। वैसे ही, सम्पूर्ण सृष्टि में एक मात्र देवी व्याप्त होते हुए भी नानाविध वस्तुएँ परिलक्षित होती हैं।

श्लोक ६–

न दुष्यति तथैवाहं दोषैर्लिप्ता कदापि न ।
मयि बुद्ध्यादिकर्तृत्वमध्यस्यैवापरे जनाः ।।

अन्वय–

(भास्करः) न दुष्यति तथैव अहं कदापि दोषैः न लिप्ता ।
अपरे जनाः मयि बुद्ध्यादिकर्तृत्वम् अध्यस्य ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

न = नहीं, दुष्यति = दूषित होता है, तथैव = उसी प्रकार, अहम् = मैं, कदापि = किसी प्रकार भी, दोषैः = दोषों से, न = नहीं, लिप्ता = लिपायमान, अपरे = दूसरे, जनाः = लोग, मयि = मुझमें, बुद्धि + आदि + कर्तृत्वम् = बुद्धि आदि कर्तृत्व को, अध्यस्य = आरोप करके।

भावार्थ–

जैसे उत्कृष्ट और निष्कृष्ट दोनों स्थानों पर प्रकाश बिखेरता हुआ भी सूर्य दूषित नहीं होता, वैसे ही संसार के सभी पदार्थों में व्याप्त होकर भी उनके दोषों से मैं लिप्त नहीं होती। अज्ञानी जन मुझमें बुद्धि आदि के कर्तृत्व का आरोप लगाते हैं।

भाष्य–

अज्ञानी जन कहते हैं कि संसार में जो पीड़ा, संत्रास है; उसका कारण इसकी सृष्टि करने वाली भगवती है। वास्तव में देवी का सृष्टि और तज्जन्य पीड़ा से कुछ भी लेना-देना नहीं है। जैसे सूर्य संसार के सभी पदार्थों पर समान रूप से प्रकाश बिखेरता हुआ भी उन-उन पदार्थों से असम्पृक्त रहता है, वैसे ही देवी का भी संसार और उसके सुख-दुःख से कोई व्यावहारिक सम्बन्ध नहीं है। सम्बन्ध यदि कोई है तो वह एकमात्र तात्विक सम्बन्ध है। तत्त्व की दृष्टि से देवी के अतिरिक्त किसी की सत्ता नहीं है। संसार से प्राप्त होने वाले सुख-दुःख की सत्ता व्यावहारिक है, जो अज्ञानमूलक हो।

श्लोक ७–

वदन्ति चात्मा कर्मेति विमूढा न सुबुद्धयः ।
अज्ञानभेदतस्तद्वन्मायया भेदतस्तथा ।।

अन्वय–

आत्मा कर्म च इति विमूढा वदन्ति न सुबुद्धयः ।
अज्ञानभेदतः तद्वत् तथा मायया भेदतः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

आत्मा = जीव, कर्म = कर्म, च = और, इति = इस प्रकार, विमुख = अज्ञानी, न = नहीं, सुबुद्धय:= विज्ञजन, अज्ञानभेदत: = अज्ञान के चलते भेद होने से, तत् = वह, वत् = जैसा, तथा= उसी प्रकार, मायया = माया के द्वारा, भेदत: = भेद होने से ।

भावार्थ–

अज्ञानी जन मुझमें कर्तृत्व का आरोप करके मुझे आत्मा तथा कर्म की संज्ञा देते हैं, किन्तु विज्ञजन ऐसा नहीं करते । सारे भेदों का मूल अज्ञान है और यही माया है ।

भाष्य–

यहाँ माया का अर्थ है अविद्या । देवी में कर्तृत्व नहीं है, अज्ञानवश देवी में कर्तृत्व प्रतीत होता है ।

श्लोक ८–

जीवेश्वरविभागश्च कल्पितो मायया‌ैव तु ।
घटाकाशमहाकाशविभाग: कल्पितो यथा ।।

अन्वय–

जीवेश्वरविभागश्च तु मायया‌ैव कल्पित: ।
यथा घटाकाशमहाकाशविभाग: कल्पित: ।।

पदच्देद अर्थसहित–

जीव + ईश्वरविभाग: = जीव और ईश्वर का विभाग, च = और, तु = तो, मायया‌ैव = मायया + एव= माया के द्वारा, कल्पित; = कल्पित है, यथा = जैसे, घटाकाशमहाकाशविभाग: = घटाकाश और महाकाश का विभाग, कल्पित: = कल्पित है ।

भावार्थ–

जीव और ईश्वर का विभाग माया द्वारा कल्पित है, ठीक वैसे ही, जैसे घटाकाश और महाकाश का विभाग कल्पित है ।

भाष्य–

घटाकाश और महाकाश में तत्त्वत: कोई अन्तर नहीं है । अन्तर केवल उपाधि का है । उपाधि है घट की दीवार । घट की दीवार टूटते ही केवल महाकाश बच रहता है । उपाधि रहते हुए भी यह महाकाश ही था । घट की दीवार के चलते घटाकाश महाकाश से भिन्न लग रहा था । ऐसे ही, जीव और ईश्वर में तात्त्विक अन्तर नहीं है । शरीर रूपी उपाधि के द्वारा जीव ईश्वर से भिन्न प्रतीत हो रहा था । जीव का ईश्वर से भेद माया द्वारा कल्पित है ।

श्लोक ९–

तथैव कल्पितो भेदो जीवात्मपरमात्मनोः ।
यथा जीवबहुत्वं च माययैव न च स्वतः ।।

अन्वय–

तथैव जीवात्मपरमात्मनोः भेदः कल्पितः ।
यथा जीवबहुत्वं च माययैव न च स्वतः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तथैव = उसी प्रकार, जीवात्मपरमात्मनोः = जीवात्मा और परमात्मा का, भेदः = भेद, कल्पितः = कल्पित, यथा = जैसे, जीवबहुत्वम् = जीव की अनेकता, च = और मायया + एव = माया द्वारा ही, न = नहीं, च = और, स्वतः = वस्तुतः ।

भावार्थ–

जीव और परमात्मा का भेद कल्पित है । जीव अनेक प्रतीत होते हैं, किन्तु वस्तुतः वे अनेक नहीं है । माया के कारण एक मात्र सत्ता (परमात्मा) अनेक जीवों के रूप में दिखलायी पड़ रही ।

भाष्य–

सूर्य एक है, किन्तु विभिन्न स्थानों पर पड़ने से उसकी सता नानाविध दिखायी पड़ती है । सूर्य का अनेक प्रतीत होना अज्ञान है । वैसे ही सत्ता (परमात्मा) एक है, किन्तु वहीं अनेक जीवों के रूप में दिखायी पड़ रही है । ऐसा माया के कारण हो रहा है । माया सत्ता (परमात्मा) पर आवरण करके नाना जीवों को परिलक्षित करा रही है ।

श्लोक १०–

तथेश्वरबहुत्वं च मायया न स्वभावतः ।
देहेन्द्रियादिसङ्घातवासनाभेदभेदिता ।।

अन्वय–

तथेश्वरबहुत्वं च मायया न स्वभावतः ।
देहेन्द्रियादिसङ्घातवासनाभेदभेदिता ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तथा = वैसे ही, ईश्वर बहुत्वम् = ईश्वर की विविधता, च = और, मायया = माया के द्वारा, न= नहीं, स्वभावतः = वास्तव में, देहेन्द्रियः = देह + इन्द्रिय = देह और इन्द्रिय, आदिसङ्घात = आदि का संघात, वासनाभेदभेदिता = वासना के भेद के कारण किया ।

भावार्थ–

अनेक प्रकार के ईश्वर की कल्पना भी वास्तविक नहीं है । इसका भी कारण माया ही है । विभिन्न जीवों के देह तथा इन्द्रियों के समूह में भेद की प्रतीति का कारण विद्या है, वास्तविक नहीं है ।

भाष्य–

परम सत्ता एक है, इसलिए सता का प्रतिनिधि ईश्वर भी एक है । अनेक ईश्वर की कल्पना का कारण माया है । जीवों में भेद रूपाकृति तथा इन्द्रिय - समूह के विशेष - विशेष प्रकार के व्यवहार के चलते माना जाता है । यह भी वास्तविक नहीं है, क्योंकि सभी जीव तथा उनके इन्द्रिय-समूह का एक मात्र अधिष्ठान तो परमात्मा है ।

श्लोक ११–

अविद्या जीवभेदस्य हेतुर्नान्यः प्रकीर्तितः ।
गुणानां वासनाभेदभेदिता या धराधर ।।

अन्वय–

धराधर जीवभेदस्य हेतुः अविद्या अन्यः न प्रकीर्तितः ।
गुणानां वासनाभेदभेदिता या ।

पदच्छेद अर्थसहित–

धराधर = हे धरा को धारण करने वाले पर्वतराज हिमालय, जीवभेदस्य = जीवों में परस्पर भेद का, हेतुः = कारण, अविद्या = अविद्या, अन्यः = दूसरा, न = नहीं, प्रकीर्तितः = बताया गया, गुणानाम्= गुणों के, वासनाभेदभेदिता = वासना के भेद से मिन्नता की प्रतीति कराने वाली, या = जो, यानि अविद्या माया ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज हिमालय ! जीवों में परस्पर भेद का कारण अज्ञान है, दूसरा कुछ नहीं । गुणों के कार्यरूप वासना के भेद से जो भिन्नता की प्रतीति कराने वाली है, वही अविद्या माया एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में भेद का हेतु है ।

भाष्य–

गुण तीन हैं - सत्त्व, रज और तम । सत्त्व का कार्य है ज्ञान, प्रकाश । रज का कार्य है क्रियाशीलता, गतिशीलता । तमोगुण का कार्य है अज्ञान, अन्धकार । इन तीन गुणों के कार्य रूप वासना के भेद से प्रत्येक पदार्थ एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होता है ।

श्लोक १२–

माया सा परभेदस्य हेतुर्नान्यः पदाचन ।
मयि सर्वमिदं प्रोतमोतं च धरणीधर ।।

अन्वय–

परभेदस्य हेतुः सा माया अन्यः कदाचन न ।
धरणीधर इदं सर्वं मयि च प्रोतमोतम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

परभेदस्य = परस्पर भेद का, हेतुः = कारण, सा = वह, माया = माया, अन्यः = दूसरा, कदाचन= कभी भी, न = नहीं, धरणीधर = पृथ्वी को धारण करने वाले हिमालय, इदम् = यह, सर्वम् = सब कुछ, मयि = मुझमें, च = और, प्रोतमोतम् = प्रोतम् + ओतम् = ओतप्रोत ।

भावार्थ–

वस्तुओं में परस्पर भेद होने का कारण वह अविद्या माया ही है, अन्य कोई नहीं । हे हिमालय! यह समग्र जगत् मुझमें ओतप्रोत है ।

भाष्य–

सम्पूर्ण जगत् देवी की सत्ता से परिव्याप्त है । जब एक मात्र देवी की सत्ता है, तब वस्तुओं में परस्पर भेद होने का प्रश्न ही नहीं । श्रीमद्भगवदगीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी यही बात कही है - 'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव' ।

श्लोक १३–

ईश्वरोऽहं च सूत्रात्मा विराडात्माऽहमस्मि च ।
ब्रह्माहं विष्णुरुद्रौ च गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी ।।

अन्वय–

अहम् ईश्वरः सूत्रात्मा च अहं विराडात्मा च अस्मि ।
अहं ब्रह्मा विष्णुरुद्रौ च गौरी ब्राह्मी वैष्णवी च ।।

पदच्देद अर्थसहित–

अहम् = मैं, ईश्वरः = ईश्वर, सूत्रात्मा = सूत्रात्मा, च = और, अहम् = मैं, विराट् + आत्मा = विराट् आत्मा, अस्मि = हूँ, विष्णुरुद्रौ = विष्णुः च रुद्रः च ।

भावार्थ–

देवी कहती हैं - ईश्वर, सूत्रात्मा और विराट् आत्मा मैं ही हूँ । ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी मैं ही हूँ ।

भाष्य–

परमात्मा का मूल रूप अव्यक्त है । अव्यक्त में सृष्टि नहीं है । सृष्टि होने के लिए अव्यक्त को व्यक्त होना पड़ता है । अव्यक्त प्रलय की अवस्था है, व्यक्त सृष्टि की । अव्यक्त परमात्मा के व्यक्त होने की तीन अवस्थाएँ हैं - ईश्वर, सूत्रात्मा और विराट् आत्मा । ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र क्रमशः सृष्टि, पालन और संहार के अधिष्ठातृ देवता हैं । सृष्टि, पालन और संहार अनवरत चल रहा हे । यह देवी का लीला-विलास है । सृष्टि देवी से पृथक् नहीं है, इसलिए ईश्वर, सूत्रात्मा और विराट् आत्मा तथा ब्रह्मा, विषु और रूद्र देवी के ही रूप हैं ।

श्लोक १४–

सूर्योऽहं तारकाश्चाहं तारकेशस्तथास्म्यहम् ।
पशुपक्षिस्वरूपाहं चाण्डालोऽहं च तस्करः ।।

अन्वय–

अहं सूर्यः तारकाः च तथा अहं तारकेशः ।
अहं पशुपक्षिस्वरूपा अहं चाण्डालः तस्करः च।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अहम् = मैं, सूर्यः = सूर्य, तारकाः = ताराएँ, च = और, तथा = और, अहम् = मैं, तारकेशः = चन्द्रमा, पशुपक्षिस्वरूपा = पशु और पक्षियों के रूप वाली, चाण्डालः = चाण्डाल, तस्करः = चोर।

भावार्थ–

मैं ही सूर्य और ताराएँ हूँ। मैं चन्द्रमा भी हूँ। पशु और पक्षी भी मैं ही हूँ। मैं ही चाण्डाल हूँ। मैं ही चोर हूँ।

भाष्य–

पूर्व में देवी ने कहा है कि सृष्टि मुझसे उत्पन्न हुई और सृष्टि उत्पन्न होने के बाद मैं इसमें प्रविष्ट हो गयी। तात्पर्य यह कि सम्पूर्ण सृष्टि देवीमय है। सृष्टि में कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसकी सत्ता देवी से पृथक् हो। सूर्य, ताराएँ, चन्द्रमा, पशु-पक्षी, यहाँ तक कि निकृष्ट चाण्डाल और चोर सब देवी के रूप हैं। 'सर्वं देवीमयं जगत् '।

श्लोक १५–

व्याधोऽहं क्रूरकर्माहं सत्कर्माहं महाजनः ।
स्त्रीपुन्नपुंसकाकारोऽप्यहमेव न संशयः ।।

अन्वय–

अहं क्रूरकर्मा व्याधः अहं सत्कर्मा महाजनः ।
अहमेव स्त्रीपुन्नपुंसकाकारः संशयः न ।

पदच्छेद अर्थसहित–

अहम् = मैं, क्रूरकर्मा = क्रूर कर्म करने वाला, व्याधः = व्याध, सत्कर्मा = सत्कर्म करने वाला, महाजनः = श्रेष्ठ जन, स्त्रीपुन्नपुंसकाकारः = स्त्री, पुरुष और नपुंसक, न = नहीं, संशयः = संशय।

भावार्थ–

क्रूर कर्म करने वाला व्याध मैं हूँ तथा सत्कर्म करने वाला श्रेष्ठ जन भी मैं ही हूँ। स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक सब मैं हूँ।

भाष्य–

यहाँ देवी 'अहमेव द्वितीयो नास्ति' - अपने कथन को विवृत करती हैं । क्रूरकर्मा व्याध तथा सत्कर्म करने वाला महाजन - ये दोनों देवी के ही रूप हैं । न केवल स्त्री तथा पुरुष, अपितु उपेक्षणीय नपुंसक भी देवी के रूप हैं । ऐसा कहकर देवी भेदमयी सृष्टि में अभेद का प्रतिपादन करके सर्वतोभावेन अपनी उपासना की ओर इंगित करती हैं । हममें जब तक भेद-दृष्टि रहेगी, तब तक न तो हम देवी को जान सकेंगे और न ही सच्ची उपासना कर सकेंगे ।

श्लोक १६–

यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्याहं सर्वदा स्थिता ।।

अन्वय–

यत् किञ्चित् क्वचित् च वस्तु दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
तत् सर्वं अन्तर्बहिश्च व्याप्य अहं सर्वदा स्थिता ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यत् = जो, किञ्चित् = कुछ, क्वचित् = कहीं भी, च = और, वस्तु = वस्तु, दृश्यते = दिखायी पड़ती है, श्रूयते = सुनाई पड़ती है, अपि = भी, वा = अथवा, तत् = वह, सर्वम् = अन्तर्बहिः = बाहर-भीतर, च = और, व्याप्य = व्याप्त होकर, अहम् = मैं, सर्वदा = सदैव, स्थिता = स्थित हूँ।

भावार्थ–

कहीं भी, कोई भी वस्तु, जो दिखायी अथवा सुनायी पड़ती है; उन सबके बाहर भीतर व्याप्त होकर मैं ही स्थित हूँ ।

भाष्य–

देवी प्रत्येक वस्तु के भीतर और बाहर समान रूप से व्याप्त हैं । ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ देवी का अस्तित्व न हो । श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान् ने अर्जुन से यही बात कही है - 'मत्तः परतरं नास्ति किञ्चिदस्ति धनञ्जय' ।

श्लोक १७–

न तदस्ति मया त्यक्तं वस्तु किञ्चिच्चराचरम् ।
यद्यस्ति चेत्तच्छून्यं स्याद्वन्ध्यापुत्रोपमं हि तत् ।।

अन्वय–

चराचरं किञ्चित् तद् वस्तु मया त्यक्तं न अस्ति । यद्यस्ति चेत्तच्छून्यं स्यात् हि तत् बन्ध्यापुत्रोपम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

चराचरम् = चराचर, किञ्चित् = कोई, तत् = वह, वस्तु = वस्तु, मया = मेरे द्वारा' त्यक्तम् = रहित, न= नहीं, अस्ति = है, यदि = यदि, अस्ति = है, चेत् = तो, शून्यम = अस्तित्वहीन, स्यात् = है,

हि = क्योंकि, बन्ध्यापुत्रोपमम् = बन्ध्यापुत्र के समान ।

भावार्थ–

चराचर कोई भी वस्तु मुझसे रहित नहीं हैं । यदि मुझसे शून्य कोई वस्तु है तो वह अस्तित्वहीन है, बन्ध्यापुत्र के समान असम्भव ।

भाष्य–

बन्ध्यापुत्र की कल्पना तो हो सकती है, किन्तु उसकी सत्ता असम्भव है । ऐसे ही, कोई कह सकता है कि अमुक वस्तु देवी से रहित है, किन्तु उसका यह कथन एकदम असत्य होगा । क्योंकि सारा संसार ही देवीमय है ।

श्लोक १८–

रज्जुर्यथा सर्पमालाभेदैरेका विभाति हि ।
तथैवेशादिरूपेण भाम्यहं नास्त्र संशयः ।।

अन्वय–

यथा हि एका रज्जुः सर्पमालाभेदैः विभाति ।
तथैव अहम् ईशादिरूपेण भामि अत्र संशयः न ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यथा = जिस प्रकार, हि = क्योंकि, एका = एक, रज्जु = रस्सी, सर्पमालाभेदै: = सर्प अथवा माला के रूप में, विभाति = प्रतीत होती है । तथैव = वैसे ही, अहम् = मैं, ईशादिरूपेण = ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि रूप से, भामि = प्रतीत होती हूँ, अत्र = इसमें, संशय = संशय, न = नहीं ।

भावार्थ–

जिस प्रकार एक रस्सी भ्रम से सर्प अथवा माला के रूप में दिखायी पड़ती है, वैसे ही अधिष्ठान रूप में मुझे न जानने के कारण लोगों को मैं ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि रूपों में प्रतीत होती हूँ । इसमें संशय नहीं है ।

भाष्य–

कुछ के स्थान पर कुछ और दिखायी पड़ना ही भ्रम है । भ्रम का कारण अज्ञान है । अधिष्ठान रूप में देवी चर, अचर में व्याप्त हैं । इसका ज्ञान न होने से ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि की सत्ता का बोध होता है ।

श्लोक १९–

अधिष्ठानातिरेकेण कल्पितं तन्न भासते ।
तस्मान्मत्सत्तयैवैतत्सत्तावान्नान्यथा भवेत् ।।

अन्वय–

अधिष्ठान्नातिरेकेण कल्पितं तन्न भासते ।
तस्मान्मत्सत्तयैवैतत् सत्तावान् अन्यथा न भवेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अधिष्ठान्नातिरेकेण = अधिष्ठान की सत्ता के अतिरिक्त, कल्पितम् = कल्पित वस्तु, तत् = वह, न = नहीं, भासते = सत्ता होती है, तस्मात् = इसलिए, यत् = मुझसे, सत्तया = सत्ता के द्वारा, एव = ही, एतत् = यह, सत्तावान् = सत्ता से युक्त, अन्यथा = इसके अतिरिक्त, न = नहीं, भवेत् = होती।

भावार्थ–

अधिष्ठान की सत्ता के अतिरिक्त कल्पित वस्तु की सत्ता नहीं होती । अत: मेरी सत्ता से ही जगत् सत्तावान है । इसके अतिरक्ति दूसरी बात नहीं हो सकती ।

भाष्य–

रस्सी और सर्प का उदाहरण लेकर समझें । रस्सी अधिष्ठान है, सर्प कल्पित । यद्यपि सामने रस्सी पड़ी है । सर्प नहीं । प्रश्न है, सर्प कहाँ से आया? उत्तर है, अधिष्ठान से । कल्पित रूप में सर्प के अस्तित्व का आधार है रस्सी । रस्सी के अभाव में सर्प की कल्पना कभी नहीं हो सकती ।

हिमालय उवाच

श्लोक २०–

यथा वदसि देवेशि समष्ट्यात्मवपुस्त्विदम् ।
तथैव द्रष्टुमिच्छामि यदि देवि कृपा मयि ।।

अन्वय–

देवेशि इदं समष्ट्यात्मवपुः यथा वदसि ।
देवि यदि मयि कृपा तथैव द्रष्टुमिच्छामि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

देवेशि = हे देवेश्वरी, इदम् = यह, समष्ट्यात्मक विराट् रुप, यथा = जैसा, वदसि = वर्णन किया है, देवि = हे देवी, यदि = यदि, मयि = मुझ पर, कृपा = कृपा, तथैव = जैसा वर्णन किया है उस प्रकार, द्रष्टुम् = देखने की, इच्छामि = इच्छा करता हूँ ।

भावार्थ–

हे देवेश्वरी ! हे देवि ! यदि मुझ पर आपकी कृपा हो तो जैसा आपने अपने समष्ट्यात्मक रूप का वर्णन किया है, उस रूप को मैं वैसे ही देखना चाहता हूँ ।

भाष्य–

किसी वस्तु का वर्णन एक बात है, उसे साक्षात् करना बिलकुल दूसरी बात है । वर्णन से वस्तु

का अनुमान तो होता है, किन्तु ठीक-ठीक परिचय तो वस्तु को साक्षात् देखने से होता है । हिमालय देवी के स्वरूप - वर्णन से सन्तुष्ट नहीं हैं । वे देवी के स्वरूप को प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं । वर्णन सुनकर वस्तु को नहीं जाना जा सकता । उसे देखकर ही जाना जा सकता है । बिना जाने प्रतीति नहीं होती और प्रतीति बिना प्रीति नहीं होती । हिमालय की देवी के प्रति निष्ठा और अविचल भक्ति उन्हें देवी के अत्यन्त निकट ला रही है । अब देवी हिमालय को अपना विराट् रूप दिखायेंगी, जैसा श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिखाया था ।

व्यास उवाच–

श्लोक २१–

इति तस्य वचः श्रुत्वा सर्वे देवाः सविष्णवः ।
ननन्दुर्मुदितात्मानः पूजयन्तश्च तद्वचः ।।

अन्वय–

इति तस्य वचः श्रुत्वा सविष्णवः सर्वे देवाः ।
तद्वचः पूजयन्तश्च मुदितात्मानः ननन्दुः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

इति = इस प्रकार, तस्य = उसकी, वचः = बात, श्रुत्वा = सुनकर, सविष्णवः = विष्णु सहित, सर्वे= सभी, देवाः = देवतागण, तत् = वह, वचः = बात, पूजयन्तः = प्रशंसा करते हुए, मुदितात्मानः = भीतर ही भीतर, ननन्दुः = आनन्दित हो गये ।

भावार्थ–

हिमालय की यह बात सुनकर विष्णुसहित सभी देवता प्रसन्न हो गये । उनकी बात की प्रशंसा करते हुए वे सब आनन्दमग्न हो गये ।

भाष्य–

अभी तक देवता देवी के व्यष्टि रूप से परिचित थे । देवताओं को अब पता चला है कि देवी का वास्तविक रूप समष्ट्यात्मक है, अतः उनके मन में देवी के विराट् रूप को देखने की लालसा होती है ।

श्लोक २२–

अथ देवमतं ज्ञात्वा भक्तकामदुघा शिवा ।
अदर्शयन्निजं रूपं भक्तकामप्रपूरिणी ।।

अन्वय–

अथ देवमतं ज्ञात्वा भक्तकामदुधा भक्तकामप्रपूरिणी निजं रूपम् अदर्शयत् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

अथ = इसके बाद, देवमतम् = देवताओं की इच्छा को, ज्ञात्वा = जानकर, भक्तकामदुघा = भक्तों के लिए कामधेनु तुल्य, भक्तकामप्रपूरिणी = भक्तों की कामना पूर्ण करने वाली, निजम् = अपने, रूपम्= रूप को, अदर्शयत् = दिखाया ।

भावार्थ–

तदनन्तर देवताओं की इच्छा जानकर भक्तों की कामना पूर्ण करने वाली तथा भक्तों के लिए कामधेनु तुल्य भगवती शिवा ने अपना रूप दिखाया ।

भाष्य–

देवी सबके अन्त:स्तल में व्याप्त रहती हैं । देवी ने जान लिया कि मेरे भक्त देवता भी मेरे विराट् रूप का दर्शन करना चाहते हैं । देवी भक्तों की प्रत्येक कामना पूर्ण करने वाली हैं । देवी के विराट् रूप दर्शन से ने केवल हिमालय प्रसन्न होंगे अपितु सभी देवता प्रसन्न होंगे । अत: देवी प्रसन्न होकर अपने विराट् रूप का दर्शन कराती हैं । देवी की कृपा ही ऐसी होती है कि याचक और अयाचक, दोनों समान रूप से तृप्त हों ।

श्लोक २३–

अपश्यंस्ते महादेव्या विराड्रूपं परात्परम् ।
धौर्मस्तकं भवेद्यस्य चन्द्रसूर्यौ च चाक्षुषी ।।

अन्वय–

ते महादेव्याः परात्परं विराड्रूपम् अपश्यन् ।
यस्य मस्तकं द्यौः भवेत् चाक्षुषी च चन्द्रसूर्यौ ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ते = वे यानि देवतागण, महादेव्या: = महादेवी के, परात्परम् = परात्पर, विराड्रूपम् = विराट् रूप को, अपश्यन् = देखने लगे, यस्य = जिसका, यानि विराट् रूप का, मस्तकम् = मस्तक, द्यौ: = आकाश, भवेत् = है, चक्षुषी = नेत्र, च = और, चन्द्रसूर्यौ = चन्द्रमा और सूर्य ।

भावार्थ–

वे देवतागण महादेवी के परात्पर विराट् रूप को देखने लगे । उस विराट् रूप का मस्तक आकाश है । चन्द्रमा और सूर्य उसके नेत्र हैं ।

भाष्य–

देवी का रूप विराट् अर्थात् विशेष रूप से विराजमान है । विराट् का अर्थ है कि देवी के-से रूप की शोभा किसी की नहीं है, न पहले हुई और न आगे हो सकती है । देवी का रूप परात्पर है। तात्पर्य यह कि उससे बढ़कर रूप की कल्पना नहीं हो सकती । जिसका मस्तक आकाश हो, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र हों; उससे बढ़कर विराट् रूप और क्या हो सकता है ! यह रूप भी देवताओं की दृष्टि

की कल्पना है । देवी के परात्पर रूप के समक्ष यह कल्पना तुच्छ मालूम पड़ती है । वस्तुतः देवी का रूप कल्पनातीत है ।

श्लोक २४–

दिशः श्रोत्रे वचो वेदाः प्राणो वायुः प्रकीर्तितः ।
विश्वं हृदयमित्याहुः पृथिवी जघनं स्मृतम् ।।

अन्वय–

दिशः श्रोत्र वेदा वचो वायुः प्राणः प्रकीर्तितः ।
विश्वं हृदयमित्याहुः पृथिवी जघनं स्मृतम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

दिशः = दिशाएँ, श्रोत्रे = कान, वेदाः = चारों वेद, वचो = वाणी, वायुः = प्राण, प्रकीर्तितः = कहा गया है, विश्वम् = विश्व, हृदयम् = हृदय, इति = ऐसा, आहुः = कहा गया है, पृथिवी = पृथ्वी, जघनम् = जंघा, स्मृतम् = कहा गया है ।

भावार्थ–

दिशाएँ महादेवी के कान हैं और चारों वेद उनकी वाणी है । वायु को महादेवी का प्राण कहा गया है और विश्व को उनका हृदय तथा पृथ्वी को जंघा कहा गया है ।

भाष्य–

दिशाएँ यानि आकाश । आकाश का गुण है शब्द अर्थात् ध्वनि । ब्रह्माण्ड में पैदा होने वाली हर प्रकार की ध्वनि आकाश में परिव्याप्त है । देवी उन समस्त ध्वनियों को सुनती हैं, साथ ही वे समस्त ध्वनियों का स्वरूप भी हैं । वेद उनकी वाणी है । वेद आदि वाणी है सब प्रकार की वाणी का उद्भव वेद से हुआ है । श्रीमद्देवीभागवत के प्रथम श्लोक में निर्दिष्ट है कि परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी - वाणी के चारों रूप देवी में समाये हुए हैं । विश्व देवी का हृदय है तथा पृथ्वी जंघा ।

श्लोक २५–

नभस्तलं नाभिसरो ज्योतिष्चक्रमुरःस्थलम् ।
महर्लोकस्तु ग्रीवा स्याज्जनोलोको मुखं स्मृतम्।।

अन्वय–

नभस्तलं नाभिसरो ज्योतिष्चक्रमुरःस्थलम् ।
महर्लोकस्तु ग्रीवां स्याज्जनोलोको मुखं स्मृतम ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नभस्तलम् = पाताल, नाभिसरः = नाभि-सरोवर यानि नाभि, ज्योतिष्चक्रम् = ज्योतिष्चक्र अर्थात्

प्रकाश-मण्डल, उर:स्थलम् = वक्ष:स्थल, महर्लोक: = महर्लोक, तु = तो, ग्रीवा = गर्दन, स्यात् = है, जनोलोक: = जनलोक, मुखम् = मुख, स्मृतम् = कहा ।

भावार्थ–

पाताल देवी के विराट् रूप की नाभि है, ज्योतिष्चक्र वक्ष:स्थल और महर्लोक गर्दन है । जनलोक को उनका मुख कहा गया है ।

भाष्य–

देवी के विराट् रूप के व्याज से विराट् ब्रह्माण्ड का चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है । ब्रह्माण्ड की विराट्ता वस्तुत: देवी की विराट्ता है । इसका तात्पर्य यह न समझा जाय कि देवी का रूप मात्र इन विराट् बिम्बों में सीमित है । ये बिम्ब या रूपक तो उपलक्षण हैं । वस्तुत: देवी इनसे परे हैं ।

श्लोक २६–

तपोलोको रराटिस्तु सत्यलोकादधः स्थितः ।
इन्द्रादयो बाहवः स्युः शब्दः श्रोत्रं महेशितुः।।

अन्वय–

सत्यलोकादधः स्थितः तपोलोको महेशितुः रराटिः ।
इन्द्रादयो तु बाहवः स्युः शब्दः श्रोत्रम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सत्यलोकात् = सत्यलोक से , अध: = नीचे, स्थित: = स्थित, तपोलोक: = तपोलोक, महेशितु:= महेश्वरी का, रराटि: = ललाट, इन्द्रादय: = इन्द्र आदि देवतागण, तु = तो, बाहव: = बाहु, स्यु: = हैं, शब्द: = शब्द, श्रोत्रम् = श्रोत्र ।

भावार्थ–

सत्यलोक से नीचे स्थित तपोलोक महेश्वरी का ललाट है । इन्द्रादि देवतागण उनके बाहु हैं । शब्द उनका श्रोत्र यानि कर्णेन्द्रिय है ।

भाष्य–

चौबीसवें श्लोक में 'दिश: श्रोत्रे' कहा गया है । इस श्लोक में 'शब्द: श्रोत्रम्' कहा गया । दिश: श्रोत्रे का तात्पर्य है कि दसों दिशाएँ देवी के बाहरी कान है । शब्द: श्रोत्रम् में श्रोत्रम् शब्द एकवचन हैं । इस श्रोत्र का अर्थ है अन्त:कर्णेन्द्रिय । बाहरी कान देखने के लिए है ।वस्तुत: हम आन्तरिक कान से सुनते हैं । अन्त:कर्णेन्द्रिय एक होती है, इसीलिए 'श्रोत्रम् ' कहा । 'शब्द:' का अर्थ है ध्वनि मात्र । शब्द देवी का अन्त:कर्णेन्द्रिय है । यह साध्य और साधन दोनों है, अर्थात् देवी शब्द को सुनने का कर्ण भी शब्द से ही करती है । कहने में यह विरुद्ध लगता है, किन्तु देवी के लिए कुछ भी विरुद्ध नहीं हैं ।

श्लोक २७–

नासत्यस्त्रौ नासे स्तो गन्धो घ्राणं स्मृतो बुधैः ।
मुखमग्निः समाख्यातो दिवारात्री च पक्ष्मणी ।।

अन्वय–

नासत्यदस्त्रौ नासे स्तो बुधैः गन्धो घ्राणं स्मृतः ।
मुखमग्निः दिवारात्री च पक्ष्मणी समाख्यातः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नासत्यदस्त्रौ = नासत्यश्च, दस्त्रश्च = नासत्य और दस्त्र अर्थात् दोनों अश्विनीकुमार, नासे = नासिका, स्तो = हैं, बुधै = विद्वानों के द्वारा, गन्धः = गन्ध घ्राणम् = घ्राणेन्द्रिय, स्मृतः = माना है, मुखम् = मुख, अग्निः = आग, दिवारात्री = दिवश्च, रात्रिश्च = दिन और रात, च = और, पक्ष्मणी = बरौनी, समाख्यातः = बताया है ।

भावार्थ–

नासत्य और दस्त्र (दोनों अश्विनीकुमार) उनकी नासिका हैं । विद्वान् लोगों ने गन्ध को उनकी घ्राणेन्द्रिय कहा है । अग्नि को मुख कहा गया है । दिन और रात भगवती की बरौनियाँ हैं ।

भाष्य–

दो छिद्र होते हुए भी नासिका एक है, कान या नेत्र की तरह दो नहीं । इसी प्रकार नासत्य और दस्त्र को शरीर से दो होते हुए भी व्यक्तित्व से एक माना गया है । अश्विनीकुमार नाम एक व्यक्तिवाचक है, जो दोनों के लिए प्रयुक्त होता है । सामान्य प्राणी घ्राणेन्द्रिय से गन्ध ग्रहण करते हैं । भगवती के लिए गन्ध ही घ्राणेन्द्रिय है । सामान्य प्राणी मुख से भोज्य पदार्थ ग्रहण करता है । भगवती का मुख अग्नि है । वे अग्नि से सम्पूर्ण सृष्टि को अपने में समाहित कर लेती हैं । ऐसा महाप्रलय में होता है । अग्नि को सर्वभुक् कहा है, यानि सब कुछ भक्षण करने वाला । भगवती जब नेत्रोन्मीलन करती हैं तब सृष्टि होती है, नेत्र निमीलन के समय प्रलय हो जाता है । इसी सन्दर्भ में दिन और रात को भगवती की बरौनियाँ कहा गया है ।

श्लोक २८–

ब्रह्मस्थानं भ्रूविजृम्भोऽप्यापस्तालुः प्रकीर्तिताः ।
रसो जिह्वा समाख्याता यमो दंष्ट्राः प्रकीर्तिताः ।।

अन्वय–

ब्रह्मस्थानं भ्रूविजृम्भोऽप्यापस्तालुः प्रकीर्तिताः ।
रसो जिह्वा समाख्याता यमो दंष्ट्राः प्रकीर्तिताः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ब्रह्मस्थानम् = ब्रह्म का स्थान, भ्रूविजृम्भ: = भौंहों का विस्तार, अपि = भी, आप: = जल, तालु: = तालु, प्रकीर्तिता: = कहा गया है, रस: = रस, जिह्वा = जीभ, समाख्याता = बताया गया, यम: = यम, दंष्ट्रा = दाढ़, प्रकीर्तिता: = कहा गया है ।

भावार्थ–

ब्रह्मस्थान भगवती के भौंहों का विस्तार है । जल को भगवती का तालु कहा गया है । रस की जिह्वा बतायी गयी है और यम को उनकी दाढ़ें कहा गया है ।

भाष्य–

भगवती का विराट् रूप वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण के विराट् रूप वर्णन के समान है । किसी विस्तार का मध्य बिन्दु ब्रह्मस्थान माना जाता है । दोनों भौंहों के मध्य बिन्दु - स्थान को ब्रह्मस्थान कहा गया है । योगीजन इसी स्थान पर ब्रह्म का ध्यान करते हैं । ब्रह्माण्ड के केन्द्रबिन्दु को ब्रह्मस्थान माना जा सकता है । जल भगवती का तालु है और रस जिह्वा । रस का तात्पर्य है सम्पूर्ण आस्वाद्य वस्तुओं का सार । तात्पर्य यह कि सब प्रकार के रस और उनका आधारभूत जल भगवती का स्वरूप है । यम को भगवती की दाढें बनायी हैं । जैसे दाढों के बीच आयी कोई वस्तु चकनाचूर होकर निगल ली जाती है; वैसे ही भगवती यम के रूप में ब्रह्माण्ड का नियमन करती और समय पर उसे अपना ग्रास बना लेती है ।

श्लोक २९–

दन्ता: स्नेहकला यस्य हसो माया प्रकीर्तिता ।
सर्गस्त्वपाङ्गमोक्ष: स्याद् व्रीडोर्ध्वोष्ठो महेशितु: ।।

अन्वय–

स्नेहकला यस्य दन्ता माया ह्यास: प्रकीर्तिता: ।
सर्गस्तु महेशितु: अपाङ्गमोक्षो व्रीडोर्ध्वोष्ठ: स्यात् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

स्नेहकला: = स्नेह की कलाएँ, यस्य = जिसकी, दन्ता: = दाँत, माया = माया, हास: = हँसी, प्रकीर्तिता = कहा गया है, सर्ग: = सृष्टि, तु = तो, महेशितु: = महेश्वरी का, अपाङ्गमोक्ष: = कटाक्षपात, व्रीडोर्ध्वोष्ठ: (क्रीडा + ऊर्ध्व + ओष्ठ) क्रीडा = लज्जा, ऊर्ध्वोष्ठ: = ऊपरी ओष्ठ, स्यात्= है ।

भावार्थ–

स्नेह की विविध कलाएँ देवी के विराट् रूप के दाँत हैं और त्रिगुणात्मिका माया हँसी है । सृष्टि महेश्वरी का कटाक्षपात है तथा लज्जा ऊपरी ओष्ठ ।

भाष्य–

मनुष्य पुत्र - कलत्र के स्नेह में बँधकर नाना प्रकार के कष्ट भोगता है । सच पूछा जाय तो विविध भाँति के स्नेह - सुख विविध प्रकार के घाव हैं । देवी के रूप से अनभिज्ञ लोग संसार को अपना मान बैठे हैं । देवी स्नेह की विविध कलाओं से लोगों का दंशन करके अपने रूप का बोध कराने की चेष्टा करती हैं । संसार त्रिगुणात्मक है, देवी त्रिगुणातीत । माया देवी का हास है । सृष्टि देवी की क्रीडा है । देवी मन्द हास करके कटाक्षपात करती है । तब त्रिगुणात्मक माया प्रकट होकर सृष्टि कर देती है।

श्लोक ३०–

लोभः स्यादधरोष्ठोऽस्याद्धर्ममार्गस्तु पृष्ठभूः ।
प्रजापतिश्च मेढ्रं स्याद्यः सृष्टा जगतीतले ।।

अन्वय–

लोभो अस्या अधरोष्ठः अधर्ममार्गस्तु पृष्ठभूः स्यात् ।
यः जगतीतले स्त्रष्टा प्रजापतिः (स एव) मेढ्रं स्यात् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

लोभः = लोभ, अस्याः = इसकी (देवी भी) अधरोष्ठः = निचला ओष्ठ, अधर्ममार्गः = अधर्म का मार्ग, पृष्ठभूः = पृष्ठ भाग, यः = जो, जगतीतले = पृथ्वीलोक में, स्त्रष्टा = सृष्टि करने वाले, प्रजापति= ब्रह्मा, मेढ्रम् = जननेन्द्रिय, स्यात् = है ।

भावार्थ–

लोभ देवी के विराट् रूप का निचला ओष्ठ है और अधर्ममार्ग उसका पिछला भाग है । पृथ्वीलोक में सृष्टि करने वाला ब्रह्मा देवी के विराट् रूप की जननेन्द्रिय हैं ।

भाष्य–

संसार में समस्त प्राणी विविध प्रकार की वस्तुओं के लिए लालायित रहते हैं । सम्पूर्ण संसार देवीमय है— 'सर्वं देवीमयं जगत् ' । लोभ देवी के विराट् रूप का अधरोष्ठ है । मनुष्य सबसे छिपाकर अधर्म करता है । शरीर का अग्रभाग दृष्टिगोचर होता है किन्तु पिछला भाग आँखों से ओझल रहता है । संसार में वर्तमान अधर्ममार्ग देवी का पिछला भाग है । यद्यपि देवी निर्गुण निराकार है, किन्तु देवी के विराट् रूप में ब्रह्मा देवी के जननेन्द्रिय माने जाएँगे क्योंकि वे ही समस्त प्रपंच की सृष्टि करते हैं ।

श्लोक ३१–

कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थीनि देव्या महेशितुः ।
नद्यो नाड्यः समाख्याता वृक्षाः केशाः प्रकीर्तिताः ।।

अन्वय–

समुद्रा देव्या महेशितुः कुक्षिः गिरयोऽस्थीनि ।
नद्यो नाड्यः समाख्याता वृक्षाः केशाः प्रकीर्तिताः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

समुद्रा: = समुद्र, देव्या: = देवी के, महेशितु: = महेश्वरी के, कुक्षि: = उदर, गिरय: = पर्वत, अस्थीनि = हड्डी, नद्य: = नदियाँ, नाड्य: = नाड़ियाँ, समाख्याता = बताये गये हैं, वृक्षा: = वृक्ष, केशा: = केश, प्रकीर्तिता: = कहे गये हैं ।

भावार्थ–

समुद्र देवी महेश्वरी के उदर और पर्वत उनकी अस्थियाँ हैं । नदियाँ देवी के विराट् रूप की नाड़ियाँ हैं तथा वृक्ष उनके केश कहे गये हैं ।

भाष्य–

यह सब देवी के विराट् रूप का प्रतीकात्मक वर्णन है । जलमय समुद्र को देवी का उदर और कठोर पत्थरों वाले पर्वत को देवी की अस्थियाँ बताया गया है । नदियों को नाड़ियाँ बताना भी युक्तियुक्त है जैसे नाड़ियाँ अंग-प्रत्यंग के भीतर लिपटी रहती हैं, वैसे ही नदियाँ भी समस्त भू-मण्डल को आवेष्टित की हुई हैं । वृक्षों को देवी केश बताना भी उपमोचित है ।

श्लोक ३२–

कौमारयौवनजरा वयोऽस्य गतिरुत्तमा ।
बलाहकास्तु केशाः स्युः सन्ध्ये ते वाससी विभोः ।।

अन्वय–

कौमारयौवनजरा वयोऽस्य उत्तमा गतिः ।
बलाहकास्तु केशाः ते सन्ध्ये विभोः वाससी स्युः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

कौमारयौवनजरा = कुमार, यौवन और बुढ़ापा, वय: = अवस्था, अस्य = उसकी (देवी की), उत्तमा= उत्तम, गति = गति, अवस्था:, बलाहका: = बादल, केशा: = केश, ते = दो, सन्ध्ये = सन्ध्याएँ, विभो: = ऐश्वर्यमयी देवी के, वाससी = दो वस्त्र, स्यु: = हैं ।

भावार्थ–

कौमार, यौवन और बुढ़ापा ये अवस्थाएँ देवी के विराट् रूप की उत्तम गति (स्थिति) हैं । बादल उनके सिर के केश हैं । दोनों सन्ध्याएँ (प्रात: और सायं) उन ऐश्वरर्यमयी देवी के दो वस्त्र हैं ।

भाष्य–

काल का बोध प्रकृति और शरीर में होने वाले परिवर्तनों से होता है । प्रकृति में काल का विभाग है— प्रात: दोपहर, सन्ध्या और रात्रि । शरीर में काल परिवर्तन से कुमारावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था आती है । मृत्यु भी एक अवस्था है जो शरीर के नष्ट होने पर आती है । काल की ये गतियाँ

देवी की उत्तम गति यानि परिवर्तन है । मनुष्य के लिए काल-परिवर्तन हर्ष और शोक का विषय है, देवी के लिए नहीं । उनके लिए सब काल प्रशस्त है । वृक्ष की तरह बादल भी ऊपर स्थित हैं, अत: रंग और रूप की समता के आधार पर वे देवी के केश हैं । प्रात: और सायं ये गैरिकवसना देवी के दो वस्त्र हैं ।

श्लोक ३३–

राजञ्छ्रीजगदम्बायाश्चन्द्रमास्तु मनः स्मृतः ।
विज्ञानशक्तिस्तु हरी रुद्रोऽन्तःकरणं स्मृतम् ।।

अन्वय–

राजन् चन्द्रमास्तु श्रीजगदम्बायाश्च मनः स्मृतः ।
हरिः विज्ञानशक्तिस्तु रुद्रो अन्तःकरणं स्मृतम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

राजन् = हे राजा, चन्द्रमास्तु (चन्द्रमा + अस्तु) = चन्द्रमा है, श्रीजगदम्बायाश्च = श्रीजगदम्बा का, मन: = मन, स्मृत: = कहा गया है, हरि: = विष्णु, विज्ञानशक्तिस्तु = विज्ञानशक्ति, रुद्र: = रुद्र, अन्त:करणम् = अन्त;करण, स्मृतम् = कहा ।

भावार्थ–

हे राजा ! चन्द्रमा श्रीजगदम्बा का मन कहा गया है । विष्णु जगदम्बा की विज्ञान शक्ति हैं और रुद्र उनका अन्त:करण है ।

श्लोक ३४–

अश्वादिजातयः सर्वाः श्रोविणदेशे स्थिता विभोः ।
अतलादिमहालोकाः कट्यधोभागतां गताः ।।

अन्वय–

सर्वा अश्वादिजातयः विभोः श्रोणिदेशे स्थिताः ।
अतलादिमहालोकाः कट्यधोभागतां गताः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सर्वा: = सभी, अश्वादिजातय: = अश्व आदि जातियाँ, विभो: = ऐश्वार्यशालिनी भगवती के, श्रोणिदेशे= कटिप्रदेश में, स्थिता: = स्थित हैं, अतलादिमहालोका: = अतल आदि महान् लोक, कट्यधोभागतां गता: = कटिप्रदेश के नीचे के भाग हैं ।

भावार्थ–

अश्व आदि सभी जातियाँ ऐश्वर्यशालिनी भगवती के कटिप्रदेश में स्थित हैं । अत: अतल से लेकर

पाताल तक के सभी महान् लोक उनके कटिप्रदेश के नीचे के भाग हैं ।

श्लोक ३५–

एतादृशं महारूपं ददृशुः सुरपुङ्गवाः ।
ज्वालामालासहस्राढ्यं लेलिहानं च जिह्वया ।।

अन्वय–

सुरपुङ्गवाः ज्वालामालासहस्राढ्यं जिह्वया च लेलिहानं एतादृशं महारूपं ददृशुः ।

पदच्छेद अर्थसहित–

सुरपुङ्गवाः = श्रेष्ठ देवताओं ने, ज्वालामालासहस्राढ्यम् = हजारों प्रकार की ज्वालाओं से युक्त, जिह्वया= जिह्वा से, च= और, लेलिहानम् = बार-बार ओठ, चाटते हुए, एतादृशम् = इस प्रकार के, महारूपम् = विराट् रूप को, ददृशुः = देखा ।

भावार्थ–

श्रेष्ठ देवताओं ने हजारों प्रकार की ज्वालाओं से युक्त, जीभ से बार-बार ओठ चाटते हुए देवी के इस विराट् रूप को देखा ।

श्लोक ३६–

दंष्ट्राकटकटारावं वमन्तं वहिनमक्षिभिः ।
नानायुधधरं वीरं ब्रह्मक्षत्रोदनं च यत् ।।

अन्वय–

दंष्ट्राकटकटारावं अक्षिभिः वह्निं वमन्तम् ।
नानायुधधरं वीरं यत् ब्रह्मक्षत्रौदनं च (ददृशुः) ।

पदच्छेद अर्थसहित–

दंष्ट्राकटकटारावम् = दाँत कटकटाकर चीखने की ध्वनि करते हुए, अक्षिभिः = आँखों से, वहिनम्= आग, वमन्तम् = उगलते हुए, नानायुधधरम् = नाना प्रकार के आयुध धारण किये, वीरम् = पराक्रमी, यत् = जो, ब्रह्मक्षत्रौदनम् = जिसके लिए ब्राह्मण = क्षत्रिय ओदन रूप यानि भक्ष्य थे ।

भावार्थ–

देवताओं ने देखा कि देवी दाँत कटकटाकर चीखने की ध्वनि कर रही हैं । वह अपनी आँखों से आग उगल रही है । वह वीर वेश में हैं और नाना प्रकार के आयुध धारण किये हुए हैं । ब्राह्मण और क्षत्रिय उसके ओदन यानि भक्ष्य थे ।

श्लोक ३७–

सहस्रशीर्षनयनं सहस्रचरणं तथा ।

कोटिसूर्यप्रतीकाशं विद्युत्कोटिसमप्रभम् ।।

अन्वय–

सहस्रशीर्षनयनं तथा सहस्रचरणम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं विद्युत्कोटिसमप्रभम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सहस्रशीर्षनयनम् = हजार सिर और हजार नेत्रों वाली, तथा = और, सहस्रचरणम् = हजार चरणों वाली, कोटिसूर्यप्रतीकाशम् = करोंड़ों सूर्यों के समान तेजयुक्त, विद्युत्कोटिसमप्रभम् = करोड़ों बिजलियों के समान प्रभा से दीप्त ।

भावार्थ–

देवी का रूप हजार सिर और हजार नेत्रों वाला था । उनके हजार चरण थे । वे करोड़ों सूर्यों के समान तेज से युक्त थीं । उनकी प्रभा करोड़ों बिजलियों के समान थी ।

श्लोक ३८–

भयङ्करं महाघोरं हृदक्ष्णोस्त्रासकारकम् ।
ददशुस्ते सुराः सर्वे हाहाकारं च चक्रिरे ।।

अन्वय–

ते सर्वे सुराः भयङ्करं महाघोरं हृदक्ष्णोस्त्रासकारकं ददृशुः । हाहाकारं च चक्रिरे ।

पदच्छेद अर्थसहित–

ते = वे, सर्वे = सभी, सुराः = देवतागण, भयङ्करम् = भयंकर, महाघोरम् = महाभीषण, हृदक्ष्णोस्त्रासकारकम् (हृद + अक्ष्णोः + त्रासकारकम्) = हृद और आँखों को भय उत्पन्न करने वाले, ददृशुः = (देवी के रूप को) देखा, हाहाकारम् = हाहाकार, च = और, चक्रिरे = करने लगे ।

भावार्थ–

उन सभी देवताओं ने देवी के भयंकर, महाभीषण तथा हृदय और आँखों को भय उत्पन्न करने वाले रूप को देखा । देवता इस रूप को देखकर हाहाकार करने लगे ।

श्लोक ३९–

विकम्पमानहृदया मूर्च्छामापुर्दुरत्ययाम् ।
स्मरणं च गतं तेषां जगदम्बेयमित्यपि ।।

अन्वय–

विकम्पमानहृदया दुरत्ययां मूर्च्छामापुः ।
'इयं जगदम्बां इति तेषां स्मरणापि च गतम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

विकम्पमानहृदया = काँपते हुए हृदय वाले, दुरत्ययाम् = घोर, मूर्च्छाम् = मूर्च्छा, आपुः = आ गयी, इयम् = यह, जगदम्बा = देवी, इति = ऐसा, तेषाम् = उनकी, स्मरणम् = स्मृति, अपि = भी, गतम्= समाप्त हो गयी ।

भावार्थ -

देवताओं का हृदय काँपने लगा । उन्हें घोर मूर्च्छा आ गयी । यह देवी जगदम्बा हैं - यह स्मृति भी समाप्त हो गयी ।

श्लोक ४०–

अथ ते ये स्थिता वेदाश्चतुर्दिक्षु महाविभोः ।
बोधयामासुरत्युग्रं मूर्च्छातो मूर्च्छितान्सुरान् ।।

अन्वय–

अथ ये वेदा महाविभोः चतुर्दिक्षु स्थिता ।
ते मूर्च्छितान् सुरान् अत्युग्रं मूर्च्छातो बोधयामासुः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अथ = तब, ये = जो, वेदाः = वेद, महाविभोः = महाविभु भगवती की, चतुर्दिक्षु = चारों दिशाओं में, स्थिताः = स्थित ये, ते = वे (वेद), मूर्च्छितान् = मूर्च्छित, सुरान् = देवताओं को, अत्युग्रं (अति+ उग्रम्) = घोर, मूर्च्छातः = मूर्च्छा से, बोधयामासुः = जगाया ।

भावार्थ–

तब जो वेद महाविभु भगवती की चारों दिशाओं में स्थित थे, उन्होंने मूर्च्छित देवताओं को घोर मूर्च्छा से जगाया ।

श्लोक ४१–

अय ते धैर्यमालम्ब्य लब्ध्वा च श्रुतिमुत्तमाम् ।
प्रेमाश्रुपूर्णनयना रुद्रकण्ठास्तु निर्जराः ।।

अन्वय–

अथ ते निर्जरा धैर्यमालब्य श्रुतिमुत्तमां च लब्ध्वा ।
प्रेमाश्रुपूर्णनयना रुद्धकण्ठास्तु ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अथ = तब, ते = वे, निर्जराः = देवतागण, धैर्यमालम्ब्य (धैर्यम् + आलम्ब्य) = धैर्य धारण करके, श्रुतिमुत्तमाम् = श्रुतिम् + उत्तमाम् उत्तम श्रुति प्राप्त करके, प्रेमाश्रुपूर्णनयना (प्रेम + अश्रुपूर्णनयना) = प्रेमाश्रुओं से परिपूर्ण नेत्र वाले, रुद्धकण्ठास्तु (रुद्धकण्ठाः + तु) = रुँधे हुए कण्ठ वाले

भावार्थ–

इसके बाद धैर्य धारण करके वे देवतागण श्रेष्ठ श्रुति यानि ज्ञान प्राप्त करके प्रेमाश्रुओं से परिपूर्ण नेत्रों तथा रुँधे हुए कण्ठ से—

श्लोक ४२–

देवा ऊचु:

बाष्पगद्गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रिरे ।
अपराधं क्षमस्वाम्ब पाहि दीनांस्त्वदुद्भवान् ।।

अन्वय–

(देवाः) बाष्पगदगदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रिरे ।
अम्ब ! अपराधं क्षमस्व त्वदुद्भवान् दीनां पाहि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

बाष्पगद्गदया = प्रेमाश्रुओं से गद्गद, वाचा = वाणी से, स्तोतुम् = स्तुति करने के लिए, समुपचक्रिरे= उपक्रम किया, अम्ब = हे माता, अपराधम् = अपराध को, क्षमस्व = क्षमा करें, त्वदुद्भवान् (त्वत्+उद्भवान्) = अपने से उत्पन्न अर्थात् देवताओं को, पाहि = रक्षा करें ।

भावार्थ–

देवताओं ने प्रेमाश्रुओं से गद्गद वाणी से देवी की स्तुति प्रारम्भ की - हे माता ! हमारे अपराध को क्षमा करें । हम सब देवता आप से ही उत्पन्न हैं, अत: हम दीनों की रक्षा करें ।

श्लोक ४३–

कोपं संहर देवेशि सभया रूपदर्शनात् ।
का ते स्तुतिः प्रकर्त्तव्या पामरैर्निर्जरैरिह ।।

अन्वय–

देवेशि ! कोपं संहर, रूपदर्शनात् (वयं) सभयाः ।
पामरैः निर्जरैः इह ते का स्तुतिः प्रकर्त्तव्या ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

देवेशि = हे देवेश्वरी, कोपम् = क्रोध को, संहर = शान्त करें, रूपदर्शनात् = आपका रूप देखने से, सभया: = (हम) भयभीत हैं, पामरै: = नीच , निर्जरै: = देवताओं द्वारा, इह = यहाँ, ते = तुम्हारी, का = क्या, स्तुति: = स्तुति, प्रकर्त्तव्या = की जा सकती है ।

भावार्थ–

हे देवेश्वरी ! आप क्रोध को शान्त करें । आपका रूप-दर्शन करके हम भयभीत हैं । हम नीच देवता

यहाँ भला आपकी क्या स्तुति कर सकते हैं ।

श्लोक ४४–

स्वस्याप्यज्ञेय एवासौ यावान्यश्च स्वविक्रमः ।
तदर्वाग्जायमानानां कथं स विषयो भवेत् ।।

अन्वय–

यः यावान् च स्वविक्रमः असौ स्वरूप अपि अज्ञेय एव ।
तत् अर्वाक् जायमानानां सः कथं विषयो भवेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यः = जो, यावान् = जितना, स्वविक्रमः = अपना पराक्रम, असौ = वह, स्वस्य = आपके लिए , अपि = भी, अज्ञेय = अज्ञेय, एव = ही, तत् = वह, अर्वाक् = बाद में, जायमानानाम् = उत्पन्न होने वालों के लिए, सः = वह, कथम् = कैसे, विषयः, भवेत् = होगा ।

श्लोक ४५–

नमस्ते भुवनेशानि नमस्ते प्रणवात्मिके ।
सर्ववेदान्तसंसिद्धे नमो ह्रींकारमूर्तये ।।

अन्वय–

भुवनेशानि नमस्ते प्रणवात्मिके नमस्ते ।
सर्ववेदान्तसंसिद्धे ह्रींकारमूर्त्तये नमः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

भुवनेशानि = हे भुवनेश्वरी, नमस्ते = आपको नमस्कार, प्रणवात्मिके = हे प्रणवस्वरूपा देवि, नमस्ते= आपको नमस्कार, सर्ववेदान्तसंसिद्धे = समस्त वेदान्तों से प्रमाणित, ह्रींकारमूर्तये = ह्रींकार रूप धारण करने वाली देवि, नमः = नमस्कार ।

भावार्थ–

हे भुवनेश्वरी ! आपको नमस्कार है । हे प्रणवस्वरूपा देवि ! आपको नमस्कार है । समस्त वेदान्तों से प्रमाणित तथा ह्रींकार रूप धारण करने वाली हे भगवति ! आपको नमस्कार है ।

श्लोक ४६–

यस्मादग्निः समुत्पन्नो यस्मात्सूर्यश्च चन्द्रमाः ।
यस्मादोषधयः सर्वास्तस्मै सर्वात्मने नमः ।।

अन्वय–

यस्मात् अग्निः समुत्पन्नः यस्मात् सूर्यः चन्द्रमाः च (समुत्पन्नः) यस्मात् सर्वा ओषधयः (समुत्पन्नाः) तस्मै सर्वात्मने नमः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यस्मात् = जिस (देवी) से, अग्निः = अग्नि, समुत्पन्नः = उत्पन्न हुआ, सर्वाः = सभी, ओषधयः = औषधियाँ, तस्मै = उस, सर्वात्मने = सर्वात्मा को, नमः = नमस्कार ।

भावार्थ–

जिनसे अग्नि उत्पन्न हुआ है, जिनसे सूर्य तथा चन्द्र आविर्भूत हुए हैं और जिनसे समस्त औषधियाँ उत्पन्न हुई हैं, उन सर्वात्मा को नमस्कार है ।

श्लोक ४७–

यस्माच्च देवाः सम्भूताः साध्याः पक्षिण एव च।
पशवश्च मनुष्याश्च तस्मै सर्वात्मने नमः ।।

अन्वय–

यस्मात् देवाः साध्याः च पक्षिण एव च पशवः च मनुष्याः च सम्भूताः तस्मै सर्वात्मने नमः ।

पदच्छेद अर्थसहित–

यस्मात् (जिस) देवी से, साध्याः = साध्यगण, पक्षिणः= पक्षी गण, पशवः = पशुवृन्द, मनुष्याः = मनुष्य, सम्भूताः = उत्पन्न हुए हैं, तस्मै = उस, सर्वात्मने = सर्वात्मा को, नमः = नमस्कार है ।

भावार्थ–

जिस देवी से साध्यगण, पक्षी, पशु और मनुष्य उत्पन्न हुए हैं, उस सर्वात्मा को नमस्कार है ।

श्लोक ४८–

प्राणापानौ ब्रीहियवौ तपः श्रद्धा ऋतं तथा ।
ब्रह्मचर्यं विधिश्चैव यस्मात्तस्मै नमो नमः ।।

अन्वय–

यस्मात् प्राणापानौ ब्रीहियवौ तपः श्रद्धा ऋतं तथा ।
ब्रह्मचर्यं विधिः च एव (सम्भूताः) तस्मै नमो नमः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यस्मात् = जिससे, प्राणापानौ = प्राण और अपान, ब्रीहियवौ = धान और जौ, तपः = तप, श्रद्धा= श्रद्धा, ऋतं = सत्य, नमो नमः = बार-बार नमस्कार ।

भावार्थ–

जिस देवी से प्राण और अपान,ध्यान और जौ, तप, श्रद्धा तथा सत्य उत्पन्न हुए हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है ।

श्लोक ४९–

सप्तप्राणार्चिषों यस्मात्समिधः सप्त एव च ।

होमाः सप्त तथा लोकास्तस्मै सर्वात्मने नमः ।।

अन्वय–

यस्मात् सप्तप्राणार्चिषः सप्त सामिध एव च ।
सप्त होमाः तथा (सप्त) लोकाः (सम्भूताः) तस्मै सर्वात्मने नमः।

पदच्छेद अर्थसहित–

यस्मात् = जिस (देवी) से, सप्तप्राणार्चिषः = (सप्त + प्राण + अर्चिषः) = सात प्राण और सात अग्नियाँ, समिध = समिधाएँ, होमाः = होम, लोकाः तस्मै= उस, सर्वात्मने = सर्वात्मा को, नमः = नमस्कार ।

भावार्थ–

जिस देवी से सात प्राण, सात अग्नियाँ, सात समिधाएँ, सात होम तथा सात लोक उत्पन्न हुए हैं; उन सर्वात्मा को नमस्कार है ।

श्लोक ५०–

यस्मात्समुद्रा गिरयः सिन्धवः प्रचरन्ति च ।
यस्मादोषधयः सर्वा रसास्तस्मै नमो नमः ।।

अन्वय–

यस्मात् समुद्रा गिरयः सिन्धवः च प्रचरन्ति ।
यस्मात् सर्वा ओषधयः रसाश्च प्रचरन्ति तस्मै (सर्वात्मने) नमः ।

पदच्छेद अर्थसहित–

यस्मात् = जिस (देवी) से, समुद्राः = समुद्र, गिरयः = पर्वत, सिन्धवः = नदियाँ, प्रचरन्ति = निकलती हैं, सर्वाः = सभी, ओषधयः = औषधियाँ, रसाः = रस ।

भावार्थ–

जिस से सभी समुद्र, पर्वत और नदियाँ निकलती हैं तथा जिससे सभी औषधियाँ और रस निकलते हैं, उस सर्वात्मा देवी को नमस्कार है ।

श्लोक ५१–

यस्माद्यज्ञः समुद्भूतो दीक्षा यूपश्च दक्षिणाः ।
ऋचो यजूंषि सामानि तस्मै सर्वात्मने नमः ।।

अन्वय–

यस्मात् यज्ञः समुद्भूतः दीक्षा, यूपः, दक्षिणाः, ऋचः, यजुंषि ।
सामानि च (समुद्भूतानि) तस्मै सर्वात्मने नमः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यस्मात् = जिस (देवी) से, यज्ञः = यज्ञ, समुद्भूतः = उत्पन्न हुआ, दीक्षा = दीक्षा, यूपः = यूप, दक्षिणाः = दक्षिणाएँ, ऋचः = ऋग्वेद, यजूंषि = चतुर्वेद, सामानि = सामवेद ।

भावार्थ–

जिस देवी से यज्ञ, दीक्षा, यूप, दक्षिणाएँ, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद उत्पन्न हुए, उस सर्वात्मा देवी को नमस्कार है ।

श्लोक ५२–

नमः पुरस्तात्पृष्ठे च नमस्ते पार्श्वयोर्द्वयोः ।
अध ऊर्ध्वं चतुर्दिक्षु मातर्भूयो नमो नमः ।।

अन्वय–

मातः पुरस्तात् पृष्ठे च नमः द्वयोः पार्श्वयोः नमस्ते ।
अध ऊर्ध्वं चतुर्दिक्षु भूयो नमो नमः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मातः = हे माता, पुरस्तात् = आगे, पृष्ठे = पीछे, नमः = नमस्कार, द्वयोः = दोनों, पार्श्वयोः = पार्श्वभाग, नमस्ते = आपको नमस्कार, अध = नीचे, ऊर्ध्वं = ऊपर, चतुर्दिक्षु = चारों दिशाओं में, भूयः = फिर, नमो नमः = बार-बार नमस्कार ।

भावार्थ–

हे माता ! आपको आगे, पीछे, दोनों पार्श्वभाग, ऊपर, नीचे तथा चारों दिशाओं से बार-बार नमस्कार है ।

श्लोक ५३–

उपसंहर देवेशि रूपमेतदलौकिकम् ।
तदेव दर्शयास्माकं रूपं सुन्दरसुन्दरम् ।।

अन्वय–

देवेशि एतद् अलौकिकं रूपं उपसंहर ।
तत् सुन्दरसुन्दरं रूपमेव अस्माकं दर्शय ।

पदच्छेद अर्थसहित–

देवेशि = हे देवेश्वरी ! एतत् = यह, अलौकिकम् = अलौकिक, रूपम् = रूप को, उपसंहार= छिपा लीजिए, तत् = उस, सुन्दरसुन्दरम् = परम सुन्दर, रूपम् = रूप को, एव = ही, अस्माकम् = हमें, दर्शय = दिखलाइये ।

भावार्थ–

हे देवेश्वरि ! अब इस अलौकिक रूप को छिपा लीलिए और हमें उसी परम सुन्दर रूप का

दर्शन कराइये ।

श्लोक ५४–

इति भीतान्सुरान्दृष्ट्वा जगदम्बा कृपार्णवा ।
संहृत्य रूपं घोरं तद्दर्शयामास सुन्दरम् ।।

अन्वय–

इति भीतान्सुरान्दृष्ट्वा कृपार्णवा जगदम्बा ।
घोरं रूपं संहृत्य तत् सुन्दरं (रूपम्) दर्शयामास ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

इति = इस प्रकार, भीतान् = भयभीत, सुरान् = देवताओं को, दृष्टवा = देखकर, कृपार्णवा = कृपासिन्धु, जगदम्बा = देवी, घोरम् = भयंकर, रूपम् = रूप को, संहृत्य = छिपाकर, तत् = उस, सुन्दरम् = सुन्दर रूप को, दर्शयामास = दिखलाया ।

भावार्थ–

देवताओं को भयभीत देखकर कृपासिन्धु जगदम्बा ने उस भयंकर रूप को छिपाकर अपना सुन्दर रूप दिखलाया ।

श्लोक ५५–

पाशाङ्कुशवराभीतिधरं सर्वाङ्गकोमलम् ।
करुणापूर्णनयनं मन्दस्मितमुखाम्बुजम् ।।

अन्वय–

पाशाङ्कुशवराभीतिधरं सर्वाङ्गकोमलम् ।
करुणापूर्णनयनं मन्दस्मितमुखाम्बुजम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पाशाङ्कुशवराभीतिधरम् = (पाश + अङ्कुश + वर + अभीति + धरम्) = पाश, अंकुश, वर और अभयमुद्रा धारण करने वाले, सर्वाङ्गकोमलम् = समस्त कोमल अंगों वाले, करुणापूर्णनयनम् = करुणा से परिपूर्ण नेत्रों वाले, मन्दस्मितमुखाम्बुजम् = मन्द-मन्द मुस्कान मुख वाले (रूप को) ।

भावार्थ–

देवताओं ने पाश, अंकुश, वर तथा अभयमुद्रा से युक्त, समस्त कोमल अंगों वाले, करुणा से परिपूर्ण नेत्रों वाले एवं मन्द-मन्द मुस्कान युक्त मुखकमल वाले देवी के मनोहर रूप का दर्शन किया ।

श्लोक ५६–

दृष्ट्वा तत्सुन्दरं रूपं तदा भीतिविवर्जिताः ।

शान्तचित्तः प्रणेमुस्ते हर्षगद्गदनिःस्वनाः ।।

अन्वय–

तदा तत् सुन्दरं रूपं दृष्ट्वा ते भीतिविवर्जिताः ।
शान्तचित्ताः हर्षगद्गदनिःस्वनाः (ते) प्रणेमुः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तदा = तब, तत् = उस, सुन्दरं रूपम् = सुन्दर रुप को, दृष्ट्वा = देखकर, ते = वे (देवगण), भीतिविवर्जिताः = भयरहित, शान्तचित्ताः= शान्तिचित्त, हर्षगद्गदनिःस्वनाः = हर्षयुक्त गद्गद वाणी से युक्त, प्रणेमुः = प्रणाम किया ।

भावार्थ–

तब भगवती का वह सुन्दर रूप देखकर वे देवता भयरहित हो गये और शान्तचित्त होकर हर्षयुक्त गद्गद वाणी से देवी को प्रणाम करने लगे ।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः (चौंतीसवाँ अध्याय)

देव्युवाच

श्लोक १–

क्व यूयं मन्दभाग्या वै क्वेदं रूपं महाद्भुतम् ।
तथापि भक्तवात्सल्यादीदृशं दर्शितं मया ।।

अन्वय–

क्व मन्दभाग्या यूयं वे क्वेदं महाद्भुतं रूपम् ।
तथापि भक्तवात्सल्यादीदृशं मया दर्शितम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

क्व = कहाँ, मन्दभाग्याः = मन्दभाग्य, यूयम् = आप लोग, क्वेदम् (क्व + इदम्) = कहाँ यह, महाद्भुतम् = अत्यन्त अद्भुत, रूपम् = रूप, तथापि = फिर भी, भक्तवात्सल्यादीदृशम् (भक्तवात्सल्याद्+ ईदृशम्) = भक्तवत्सलता के कारण इस रूप को, मया = मैंने, दर्शितम् = दिखलाया ।

भावार्थ–

देवी बोलीं - कहाँ तुम सब मन्दभाग्य देवता और कहाँ मेरा यह अद्भुत रूप, तथापि भक्तवत्सलता के कारण मैंने आप लोगों को ऐसे रूप का दर्शन कराया ।

श्लोक २–

न वेदाध्ययनैर्योगैर्न दानैस्तपसेज्यया ।

द्रष्टुं रूपमिदं शक्यं केवलं मत्कृपां बिना ।।

अन्वय–

केवलं मत्कृपां बिना वेदाध्ययनैर्योगैर्न ।
दानैस्तपसेज्यया इदं रूपं द्रष्टुं शक्यम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

केवलम् = मात्र, मत् + कृपाम् = मेरी कृपा के, बिना = बिना, वेदाध्ययनैर्योगैर्न (वेद + अध्ययनैः+ योगैः + न) = न वेदाध्ययन और न योग से, दानैस्तपसेज्यया (दानैः + तपसा + इज्यया) = दान, तप और यज्ञ से, न = नहीं, इदम् = इस (रुप) को, रूपम् = रूप को, द्रष्टुं शक्यम् = देखा जा सकता है ।

भावार्थ–

केवल मेरी कृपा को छोड़कर वेदाध्ययन, योग, दान, तपस्या, और यज्ञ आदि किन्ही भी साधन से मेरे उस रूप का दर्शन नहीं किया जा सकता ।

श्लोक ३–

प्रकृतं श्रुणु राजेन्द्र परमात्मात्र जीवताम् ।
उपाधियोगात्सम्प्राप्तः कर्तृत्वादिकमप्युत ।।

अन्वय–

राजेन्द्र प्रकृतं श्रृणु परमात्मा उपाधियोगात् ।
जीवतां सम्प्राप्तः उत कर्तृत्वादिकम् अपि (सम्प्राप्तः)

पदच्छेद अर्थसहित–

राजेन्द्र = हे राजेन्द्र, प्रकृतम् = ब्रह्मविद्याविषयक पूर्व प्रसंग, श्रृणु = सुनिये, अत्र = यहाँ, परमात्मा= परम आत्मा अर्थात् ब्रह्म, उपाधियोगात् = उपाधि के योग से, जीवताम् = जीव संज्ञा को, सम्प्राप्तः= प्राप्त करता है, उत = साथ ही, कर्तृत्वादिकम् = कर्तृत्व आदि, अपि = भी ।

भावार्थ–

हे राजेन्द्र ! अब ब्रह्मविद्याविषयक पूर्व प्रसंग सुनिये । परमात्मा ही उपाधि भेद से जीव संज्ञा प्राप्त करता है और उसमें कर्तृत्व आदि आ जाता है ।

श्लोक ४–

क्रियाः करोति विविधा धर्माधर्मैकहेतवः ।
नाना योनीस्ततः प्राप्य सुखदुःखैश्च युज्यते ।।

अन्वय–

(जीवः) धर्माधर्मैकहेतवः विविधाः क्रियाः करोति ।
ततः नाना योनीः प्राप्य सुखदुःखैश्च युज्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

धर्माधर्मैकहेतवः = धर्म और अधर्म का हेतुभूत, विविधाः = अनेक प्रकार के, क्रियाः = कर्म, करोति= करता है, ततः = इसलिए, नाना = अनेक, योनिः = योनियाँ, प्राप्य = प्राप्त करके, सुखदुःखैश्च = सुख और दुःख से, युज्यते = युक्त होता है ।

भावार्थ–

जीव धर्म-अधर्म हेतुभूत विविध प्रकार के कर्म करने लगता है । फिर कर्मों के अनुसार अनेक योनियों में जन्म प्राप्त करके सुख-दुःख का भोग करता है ।

श्लोक ५–

पुनस्तत्संस्कृतिवशान्नानाकर्मरतः सदा ।
नानादेहान्समाप्नोति सुखदुःखैश्च युज्यते ।।

अन्वय–

पुनः तत्संस्कृतिवशात् सदा नानाकर्मरतः ।
नानादेहान् समाप्नोति सुखदुःखैश्च युज्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पुनः = फिर, तत्संस्कृतिवशात् = उन संस्कारों के प्रभाव से, सदा = सदैव, नानाकर्मरतः = अनेक कर्म करने वाला, नानादेहान् = नान प्रकार के शरीरों को, समाप्नोति = प्राप्त करता है, सुखदुःखैश्च= सुख और दुःख से, युज्यते = युक्त होता है ।

भावार्थ–

फिर कर्मों के अनुसार अनेक योनियों में जन्म प्राप्त करके जीव सुख-दुःख का भोग करता है ।

श्लोक ६–

घटीयन्त्रवदेतस्य न विरामः कदापि हि ।
अज्ञानमेव मूलं स्यात्ततः कामः क्रियास्ततः ।।

अन्वय–

एतस्य घटीयन्त्रवत् कदापि हि विरामो न ।
अज्ञानमेव मूलं स्यात्ततः कामः क्रियास्ततः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

एतस्य = इस (जीव) का, घटीयन्त्रवत् = घटीयन्त्र की भाँति, कदापि = कभी भी, विरामः = विश्राम, न = नहीं, अज्ञानमेव (अज्ञानम् + एव) = अज्ञान ही, मूलम् = कारण, स्यात् = है, ततः = उस

(अज्ञान) से, कामः = कामना, ततः = उससे, क्रियाः = क्रियायें ।

भावार्थ–

घटीयन्त्र की भाँति इस जीव को कभी भी विश्राम नहीं मिलता । अज्ञान ही उसका कारण है; उसी अज्ञान से कामना और पुनः क्रियाओं का प्रादुर्भाव होता है ।

श्लोक ७–

तस्मादज्ञाननाशाय यतेत नियतं नरः ।
एतद्धि जन्मसाफल्यं यदज्ञानस्य नाशनम् ।।

अन्वय–

तस्मादज्ञाननाशाय नरः नियतं यतेत ।
हि यदज्ञानस्य नाशनम् एतत् जन्मसाफल्यम् ।।

पदच्छेद अर्थसहितम्–

तस्मादज्ञाननाशाय (तस्मात् + अज्ञाननाशाय) = इसलिए अज्ञान के नाश के लिए, नरः = मनुष्य, नियतम् = निश्चित रूप से, यतेत = प्रयत्न करे, हि = क्योंकि, यदज्ञानस्य (यत् + अज्ञानस्य) = जो अज्ञान का, नाशनम् = विनाश, एतत् = यह, जन्मसाफल्यम् = जन्म की सफलता ।

भावार्थ–

अतः अज्ञान के नाश के लिए मनुष्य को निश्चित रूप से प्रयत्न करना चाहिए । क्योंकि अज्ञान का नष्ट हो जाना ही जीवन की सफलता है ।

श्लोक ८–

पुरुषार्थसमाप्तिश्च जीवन्मुक्तदशापि च ।
अज्ञाननाशने शक्ता विद्यैव तु पटीयसी ।।

अन्वय–

पुरुषार्थसमाप्तिश्च जीवन्मुक्तदशापि च ।
अज्ञाननाशने विद्यैव तु पटीयसी शक्ता ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पुरुषार्थसमाप्तिश्च = पुरुषार्थ की समाप्ति, जीवन्मुक्तदशापि = जीवन्मुक्त की दशा भी, अज्ञाननाशने = अज्ञान के विनाश में, विद्यैव = विद्या ही, पटीयसी = पूर्ण, शक्ता = समर्थ ।

भावार्थ–

अज्ञान के नष्ट होने पर पुरुषार्थ की समाप्ति (सम्पूर्ण पुरुषार्थों की प्राप्ति) तथा जीवन्मुक्त दशा की उपलब्धि हो जाती है । विद्या ही अज्ञान का नाश करने में पूर्ण समर्थ है ।

श्लोक ९—

न कर्म तज्जं नोपास्तिर्विरोधाभावतो गिरे ।
प्रत्युताशाज्ञाननाशे कर्मणा नैव भाव्यताम् ।।

अन्वय–

गिरे विरोधाभावतः कर्म न तज्जं उपास्तिः न ।
प्रत्युताशाज्ञाननाशो कर्मणा नैव भाव्यताम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

गिरे = हे पर्वतराज हिमालय, विरोधाभावतः = विरोध ने होने से, कर्म = कर्म, तज्जम् (तत् + जम्)= उससे उत्पन्न, उपास्तिः = उपासना, प्रत्युताज्ञाननाशे (प्रत्युत + अज्ञान नाशे) = प्रत्युत अज्ञान का नाश होने पर, कर्मणा = कर्म, नैव (न + एव) = नहीं, भाव्यताम् = होंगे ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज हिमालय ! अज्ञान से ही कर्म होता है, इसलिए कर्म का अज्ञान से विरोध नहीं है। अज्ञान के नाश हो जाने से कर्म और उपासना आदि का अभाव हो जाएगा । तात्पर्य यह कि आशा रूपी अज्ञान के नष्ट हो जाने पर कर्म का अभाव हो जाएगा ।।

श्लोक १०–

अनर्थदानि कर्माणि पुनः पुनरुशन्ति हि ।
ततो रागस्ततो द्वेषस्ततोऽनर्थो महान्भवेत् ।।

अन्वय–

हि अनर्थदानि कर्माणि पुनः पुनरुशन्ति ।
ततो रागस्ततो द्वेषस्ततो महाननर्थो भवेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अनर्थदानि = अनर्थकारी, कर्माणि = कर्म , पुनः पुनः = बार-बार, उशन्ति = होते रहते हैं, ततः = उससे, रागः = राग, द्वेषः = द्वेष, महान् = बड़ा, अनर्थः = अनर्थ, भवेत् = होता है ।

भावार्थ–

अनर्थकारी कर्म बार-बार होते रहते हैं । उसी से राग, उसी से द्वेष और फिर उसी से बड़े अनर्थ की उत्पत्ति होती है ।

श्लोक ११–

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञानं सम्पादयेन्नरः ।
कुर्वन्नवेह कर्माणीत्यतः कर्माप्यवश्यकम् ।।

अन्वय–

तस्मात् नरः सर्वप्रयत्नेन ज्ञानं सम्पादयेत् ।

कुर्वन्नेवेह कर्माणीत्यतः कर्माप्यवश्यकम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तस्मात् = अतः, नरः = मनुष्य, सर्वप्रयत्नेन = पूर्ण प्रयत्न के साथ, ज्ञानम् = ज्ञान को, सम्पादयेत्= अर्जन करना चाहिए, कुर्वन्नेवेह (कुर्वन + एव +इह) = इस संसार में करते हुए ही, कर्माणीत्यतः (कर्माणि + इति + अतः) = कर्मों को अतः, कर्माप्यवश्यकम् (कर्म + अपि + अवश्यकम्) कर्म भी आवश्यक है ।

भावार्थ–

अतः मनुष्य को पूर्ण प्रयत्न के साथ ज्ञान का अर्जन करना चाहिए । 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' इस श्रुति वचन के अनुसार कर्म भी आवश्यक है ।

श्लोक १२–

ज्ञानादेव हि कैवल्यमतः स्यात्तत्समुच्चयः ।
सहायतां व्रजेत्कर्म ज्ञानस्य हितकारि च ।।

अन्वय–

ज्ञानादेव हि कैवल्यमतः तत्समुच्चयः स्यात् ।
हितकारि कर्म च ज्ञानस्य सहायतां व्रजेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ज्ञानादेव (ज्ञानात् + एव) = ज्ञान से ही, हि = क्योंकि, कैवल्यम् = मोक्ष, अतः = इसलिए, तत् = उसका, समुच्चयः = समुच्चयः, स्यात् = चाहिए, हितकारि = हितकारक या परोपकारक, कर्म = कर्म, च = और, ज्ञानस्य = ज्ञान का, सहायतां व्रजेत् = सहायता करता है ।

भावार्थ–

साथ ही, ज्ञान से ही कैवल्य पद की प्राप्ति सम्भव है, अतः मोक्ष के लिए कर्म और ज्ञान - दोनों का समुच्चय आवश्यक है । साथ ही, हितकारक कर्म ज्ञान की सहायता करता है ।

श्लोक १३–

इति केचिद्वदन्त्यत्र तद्विरोधान्न सम्भवेत् ।
ज्ञानाद्धृद् ग्रन्थिभेदः स्याद्धृद्ग्रन्थौ कर्मसम्भवः ।।

अन्वय–

इति केचिद्वदन्त्यत्र तद्विरोधान्न सम्भवेत् ।
ज्ञानाद् धृद्ग्रन्थिभेदः स्याद् धृद् ग्रन्थौ कर्मसम्भवः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

इति = ऐसा, केचिद्वदन्त्यत्र (केचित् + वदन्ति + अत्र) = कुछ लोग कहते हैं, यहां; तद्विरोधान्न (तत्+

विरोधात् +) उनके परस्पर विरोधी होने से, नहीं; सम्भवेत् = सम्भव नहीं है, ज्ञानात् = ज्ञान से, हृदयग्रन्थिभेद: = हृदय-ग्रन्थि का भेदन, हृद्ग्रन्थौ = हृदय-ग्रन्थिम, कर्मसम्भव: = कर्म उत्पन्न होता है ।

भावार्थ–

कुछ मनीषी कहते हैं कि कर्म ज्ञान का सहायक है । किन्तु उन दोनों में परस्पर विरोध होने से यह सम्भव नहीं है । क्योंकि ज्ञान से हृदय - ग्रन्थि का भेदन होता है और हृदय-ग्रन्थि में कर्म उत्पन्न होता है ।

श्लोक १४–

यौगपद्यं न सम्भाव्यं विरोधात्तु ततस्तयोः ।
तमःप्रकाशयोर्यद्वद्यौगपद्यं न सम्भवति ।।

अन्वय–

तत त्तयोः विरोधात् तु यौगपद्यं न सम्भाव्यम् ।
तमःप्रकाशयोर्यद्वद्यौगपद्यं सम्भवति न ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत: = इसलिए, तयो: = उन दोनों में, विरोधात् = विरोध होने से, यौगपद्यम् = एक साथ रहना, न= नहीं, सम्भाव्यम् = सम्भव हे । तम:प्रकाशयो: = अन्धकार और प्रकाश में, यद्वत् = के समान, यौगपद्यं = एक साथ रहना, सम्भवति = सम्भव, न= नहीं ।

भावार्थ–

ज्ञान और कर्म में विरोध होने से दोनों का एक साथ रहना सम्भव नहीं है । ठीक वैसे ही, जैसे अन्धकार और प्रकाश दोनों साथ-साथ नहीं रहते ।

श्लोक १५–

तस्मात्सर्वाणि कर्माणि वैदिकानि महामते ।
चित्तशुद्धयन्तमेव स्युस्तानि कुर्यात्प्रयत्नतः ।।

अन्वय–

महामते तस्मात् सर्वाणि वैदिकानि कर्माणि ।
चित्तशुद्धयन्तमेव स्युः तानि प्रयत्नतः कुर्यात् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

महामते = हे महामते ! तस्मात् = इसलिए, सर्वाणि = समस्त, वैदिकानि = वैदिक, कर्माणि = कर्म, चित्तशुद्धयन्तम् = चित्त शुद्ध करने वाले, स्यु: = हैं, तानि = उन्हें, प्रयत्नत: = प्रयत्नपूर्वक, कुर्यात्= करना चाहिए ।

भावार्थ–

हे महामते ! समस्त वैदिक कर्म (शास्त्रोचित कर्म) चित्त शुद्ध करने वाले हैं । इसलिए उन्हें प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए ।

श्लोक १६–

शमो दमस्तितिक्षा च वैराग्यं सत्त्वसम्भवः ।
तावत्पर्यन्तमेव स्युः कर्माणि न ततः परम् ।।

अन्वय–

शमो दमस्तितिक्षा वैराग्यं सत्त्वसम्भवश्च ।
तावत्पर्यन्तमेव कर्माणि स्युः ततः परं न ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

शमः = शम, दमः = दम, तितिक्षा = तितिक्षा, वैराग्यम् = वैराग्य, सत्त्वसम्भवः = सत्त्व का प्रादुर्भाव, च= और , तावत्पर्यन्तमेव = इनकी प्राप्ति तक ही, कर्माणि = कर्म, स्युः = हैं, ततः = इससे, परम् = बाद, न = नहीं ।

भावार्थ–

शम, दम, तितिक्षा, वैराग्य और सत्त्व का प्रादुर्भाव - इनकी प्राप्ति तक ही कर्म आवश्यक हैं, इसके बाद नहीं ।

श्लोक १७–

तदन्ते चैव सन्यस्य संश्रयेद् गुरुमात्मवान् ।
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं च भक्त्या निव्यजिया पुनः ।।

अन्वय–

तदन्ते चैव संन्यस्य आत्मवान् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं गुरुं निर्व्याजया भक्त्या च पुनः संश्रयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तदन्ते = तदनन्तर, संन्यस्य = संन्यास लेकर, आत्मवान् = आत्मज्ञानी, श्रोत्रियम् = वेद में निष्णात, ब्रह्मनिष्ठम् = ब्रह्म में निष्ठित, गुरुम् = गुरु को, निर्व्याजया भक्त्या = निष्कपट भक्ति से, संश्रयेत् = आश्रय ले ।

भावार्थ–

तदनन्तर ज्ञानी मनुष्य को चाहिए कि वह संन्यास लेकर आत्मवेत्ता, वेद में निष्णात, ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में निष्कपट भक्ति के साथ जाय ।

श्लोक १८–

वेदान्तश्रवणं कुर्यान्नित्यमेवमतन्द्रितः ।

तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य नित्यमर्थं विचारयेत् ।।

अन्वय–

अतन्द्रितः नित्यमेव वेदान्तश्रवणं कुर्यात् ।
तत्त्वमस्यादि वाक्यस्य अर्थं नित्यं विचारयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अतन्द्रितः = सावधान होकर, नित्यमेव (नित्यम् + एव) = नित्य ही, वेदान्तश्रवणम् = वेदान्त का श्रवण, कुर्यात् = करे, तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य 'तत्त्वमसि + आदिवाक्यस्य) = तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों का, अर्थम् = अर्थ को, नित्यम् = नित्य, विचारयेत् = विचार करे ।

भावार्थ–

ज्ञानी मनुष्य सावधान होकर नित्य वेदान्त का श्रवण करे और 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के अर्थ का नित्य चिन्तन करे ।

श्लोक १९–

तत्त्वमस्यादिवाक्यं तु जीवब्रह्मैक्यबोधकम् ।
ऐक्ये ज्ञाते निर्भयस्तु मद्रूपो हि प्रजायते ।।

अन्वय–

तत्त्वमस्यादिवाक्यं तु जीवब्रह्मैक्यबोधकम् ।
ऐक्ये ज्ञाते निर्भयस्तु मद्रूपो हि प्रजायते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत्त्वमसि = वह ब्रह्म तुम हो, आदिवाक्यम् = इस प्रकार के महावाक्य, जीवब्रह्मैक्यबोधकम् = जीव और ब्रह्म की एकता के बोधक हैं, ऐक्ये ज्ञाते = एकता का ज्ञान होने पर, निर्भयः = निर्भय मनुष्य, मद्रूपः = मेरा रूप, प्रजायते = हो जाता है ।

भावार्थ–

वह ब्रह्म तुम हो - इस प्रकार के महावाक्य जीव और ब्रह्म की एकता के बोधक हैं । जीव और ब्रह्म की एकता का ज्ञान होने पर मनुष्य निर्भय होकर मेरा रूप बन जाता है ।

श्लोक २०–

पदार्थावगतिः पूर्वं वाक्यार्थावगतिस्ततः ।
तत्पदस्य च वाक्यार्थो गिरेऽहं परिकीर्तितः ।।

अन्वय–

गिरे पूर्वं पदार्थावगतिः ततः वाक्यार्थावगतिः ।

तत्पदस्य च वाक्यार्थोऽहं परिकीर्तितः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

गिरे = हे पर्वतराज ! पूर्वम् = सबसे पहले, पदार्थावगतिः (पदार्थ + अवगतिः)= पदार्थ का ज्ञान, ततः = उसके बाद, वाक्यार्थावगतिः (वाक्य + अर्थ + अवगतिः) = वाक्यार्थ का ज्ञान, तत्पदस्य= तत् पद का, वाक्यार्थोऽहं (वाक्य अर्थ + अहम्) वाक्यार्थ मैं, परिकीर्तितः = कही गयी हूँ ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! सबसे पहले पद का अर्थ - ज्ञान होता है, तत्पश्चात् वाक्य का अर्थ - ज्ञान होता है । हे पर्वतराज ! तत् पद के वाक्यार्थ के रूप में मैं ही कही गयी हूँ ।

भाष्य–

गुरु अपने शिष्य को महावाक्य का उपदेश करता है - 'तत्त्वमसि ' अर्थात् वह (ब्रह्मस्वरूपा परमेश्वरी भगवती) तुम हो ! यहाँ 'तत्' शब्द भगवती के लिए आया है । अवतार रूप में देवी नारी रूप हैं अन्यथा वे लिंगातीत हैं । 'तत्' नपुंसक लिंग है जिसका संकेत है कि देवी तीनों लिंगों से परे हैं ।

श्लोक २१–

त्वंपदस्य च वाच्यार्थो जीव एव न संशयः ।
उभयोरैक्यमसिना पदेन प्रोच्यते बुधैः ।।

अन्वय–

त्वंपदस्य च वाच्यार्थो जीव एव न संशयः ।
बुधैरुभयौरैक्यमसिना पेदन प्रोच्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

त्वंपदस्य = त्वम् पद का, च = और, वाच्यार्थः = वाच्यार्थ, जीव = जीव, एव = ही, न = नहीं, संशयः = संशय, बुधैः = विद्वान् पुरुषों द्वारा, उभयोरैक्यम् (उभयोः + ऐक्यम्) = दोनों पदों की एकता, असिना पदेन = असि' पद के द्वारा, प्रोच्यते = बतलाते हैं ।

भावार्थ–

त्वम् पद का वाच्यार्थ जीव ही है, इसमें कोई संशय नहीं है । विद्वान् पुरुष 'असि' पद से 'तत् ' और 'त्वम्' - इन दोनों पदों की एकता बतलाते हैं ।

श्लोक २२–

वाच्यार्थयोर्विरुद्धत्वादैक्यं नैव घटेत ह ।
लक्षणातः प्रकर्त्तव्या तत्त्वमोः श्रुतिसंस्थयोः ।।

अन्वय–

वाच्यार्थयोर्विरुद्धत्वादैक्यं नैव घटेत ह ।

श्रुतिसंस्थयोः तत्त्वमोः (ऐक्यं) लक्षणातः प्रकत्तव्या ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

वाच्यार्थयोर्विरुद्धत्वादैक्यम् (वाच्यार्थयोः + विरुद्धत्वात् + ऐक्यम्) = दोनों पदों के वाच्यार्थ परस्पर विरोधी होने से इन पदार्थों की एकता, नैव (न+एव) = कदापि नहीं, घटेत = सम्भव है, श्रुतिसंस्थयोः= श्रुतिप्रतिपादित, तत्त्वमोः = तत् और त्वम् - इन दोनों पदों की (एकता) त्वक्षणातः= लक्षणा वृत्ति से, प्रकर्त्तव्य = करनी चाहिए ।

भावार्थ–

तत् और त्वम् - इन दोनों पदों के वाच्यार्थ परस्पर विरोधी होने से इन पदार्थों की एकता कदापि सम्भव नहीं है । अतएव श्रुतिप्रतिपादित इन दोनों पदों की एकता लक्षणा वृत्ति से करनी चाहिए ।

'तत्' (देवी) और त्वम् (जीव) दोनों का वाच्यार्थ अलग - अलग है । साधारणतः दोनों में एकता नहीं हो सकती । किन्तु तात्विक रूप से देवी के अतिरिक्त कुछ नहीं है । इसलिए दोनों का भेद कल्पित है, वास्तविक नहीं ।

श्लोक २३–

चिन्मात्रं तु तयोर्लक्ष्यं तयोरैक्यस्य सम्भवः ।
तयोरैक्यं तथा ज्ञात्वा स्वाभेदेनाद्वयो भवेत् ।।

अन्वय–

तयोर्लक्ष्यं तु चिन्मात्रं तयोरैक्यस्य सम्भवः ।
तयोरैक्यं तथा ज्ञात्वा स्वाभेदेनाद्वयो भवेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तयोर्लक्ष्यम् (तयोः + लक्ष्यम्) = तत् और त्वम् - इन दोनो ंपदों का लक्ष्य, चिन्मात्रम् = चैतन्यमात्र, तयोरैक्यस्य (तयोः + ऐक्यस्य) = दोनों की एकता, सम्भवः = सम्भव, तयोरैक्यम् (तयोः + ऐक्यम्) दोनों की एकता को, तथा = उस प्रकार, ज्ञात्वा = जानकर, स्वाभेदेनाद्वयः (स्व + अभेदेन+ अद्वयः) = स्वगत भेद समाप्त होकर अद्वय, भवेत् = हो जाता है ।

भावार्थ–

तत् और त्वम् - इन दोनों पदों का लक्ष्य चैतन्य मात्र है । तत् में सर्वज्ञत्व है और त्वम् में अल्पज्ञत्व। दोनों में चैतन्य या ज्ञान है । इस प्रकार दोनों की एकता है । उनके ऐक्य का इस प्रकार बोध हो जाने पर स्वगत भेद समाप्त होकर अद्वैत बुद्धि का उदय हो जाता है ।

भाष्य–

सजातीय, विजातीय और स्वगत - तीन प्रकार के भेद होते हैं । स्त्री - पुरुष का भेद सजातीय है, मनुष्य और पशु का भेद विजातीय है । अपने शरीर में हाथ और पैर का भेद स्वगत भेद है । चैतन्यता की

दृष्टि से देवी और भक्त में कोई भेद नहीं क्योंकि चैतन्य दोनों में हैं । किन्तु यह चैतन्य भिन्नात्मक नहीं है, समानरूपात्मक है ।

श्लोक २४–

देवदत्तः स एवायमितिवल्लक्षणा स्मृता ।
स्थूलादिदेहरहितो ब्रह्म सम्पद्यते नरः ।।

अन्वय–

अयं स देवदत्त एवमितिवल्लक्षणा स्मृता ।
स्थूलादिदेहरहितो नरः ब्रह्म सम्पद्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अयम् = यह, सः = वह (ही), देवदत्तः = देवदत्त (नाम), एवमितिवल्लक्षणा = एवम् + इतिवत्+ लक्षणा) = ही है - इस प्रकार लक्षणा, स्मृता = आवश्यक, स्वीकृत, स्थूलादिदेहरहितः = स्थूल सूक्ष्म आदि देह से रहित, नरः = मनुष्य, ब्रह्म, सम्पद्यते = हो जाता है ।

भावार्थ–

यह वही देवदत्त है - इस वाक्य में देवदत्त और तत् पद के अभेद बोध के लिए जैसे लक्षणा आवश्यक है वैसी ही लक्षणा तत् और त्वम् इन दोनों के अभेद - बोध के लिए समझनी चाहिए । स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि देह में जीव का जो स्वरूपाध्यास है, उसकी निवृत्ति हो जाने पर जीव ब्रह्म ही हो जाता है ।

श्लोक २५–

पञ्चीकृतमहाभूतसम्भूतः स्थूलदेहकः ।
भोगालयो जराव्याधिसंयुतः सर्वकर्मणाम् ।।

अन्वय–

पञ्चीकृतमहाभूतसम्भूतः स्थूलदेहकः ।
सर्वकर्मणां भोगालयो जराव्याधिसंयुतः ।।

पदच्छेद अर्थसहित -

पञ्चीकृतमहाभूतसम्भूतः = पञ्चीकरण से युक्त पाँच महाभूतों से रचित, स्थूलदेहकः = स्थूल देह, सर्वकर्मणाम् = सभी कर्मों का, भोगालयः = भोगालय, भोग का आश्रय, जराव्याधिसंयुतः = वृद्धावस्था और रोग से संयुक्त ।

भावार्थ–

पञ्चीकरण से युक्त पाँच महाभूतों से रचित यह स्थूल शरीर सभी कर्मों के भोगों का आश्रय है । यह देह वृद्धावस्था एवं रोग से संयुक्त है ।

भाष्य–

पञ्चमहाभूतों द्वारा पञ्चीकरण प्रक्रिया से स्थूल देह बनी है । इसे शरीर भी कहते हैं, क्योंकि यह प्रतिक्षण शीर्ण होता रहता है - शीर्यते इति शरीरः । अस्ति, जायते, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, म्रियते - ये शरीर की पाँच अवस्थाएँ हैं । सभी कर्म इसी शरीर से सम्पन्न होते हैं, साथ ही कर्मों का भोग भी शरीर से होता है । बचपन और जवानी शरीर की प्रिय अवस्था है तथा रोग और वृद्धत्व शरीर की अप्रिय अवस्था है । ये दोनों अवस्थाएँ शरीर के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी हैं ।

श्लोक २६–

मिथ्याभूतोऽयमाभाति स्फुटं मायामयत्वतः ।
सोऽयं स्थूल उपाधिः स्यादात्मनो मे नगेश्वर ।।

अन्वय–

नगेश्वर मिथ्याभूतोऽयं मायामयत्वतः स्फुटमाभाति ।
सोऽयं स्थूल उपाधिः मे आत्मनः स्यात् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नगेश्वर = हे पर्वतराज ! मिथ्याभूतोऽयम् = मिथ्याभूतः + अयम्) = मिथ्याभूतः यह (देह), मायामयत्वतः = मायामय होने के कारण, स्फुटमाभाति (स्फुटम् + आभाति) = सत्य प्रतीत होता है, सोऽयम् = स + अयम्) = वह यह, स्थूल उपाधिः = स्थूल उपाधि, में = मेरी, आत्मनः = आत्मा की, स्यात् = है ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! मायामय होने के कारण ही यह मिथ्याभूत देह सत्य प्रतीत होती है । यह स्थूल शरीर भी मेरी आत्मा की ही उपाधि है ।

भाष्य–

देवी का एक स्वरूप संवित् स्वरूप है जो उपाधिरहित और भेदरहित है । फिर देह सत्य कैसे प्रतीत होता है? इसका उत्तर है कि देवी ही उपाधि रूप से स्थूल शरीर बनी है । शरीर मिथ्याभूत है किन्तु देवी की सत्ता से वह सत्तावान, चैतन्यवान और प्रियरूप है । इसीलिए देवी कहती हैं - यह स्थूल शरीर भी मेरी आत्मा की ही उपाधि है ।

श्लोक २७–

ज्ञानकर्मेन्द्रिययुतं प्राणपञ्चकसंयुतम् ।
मनोबुद्धियुतं चैतन्सूक्ष्मं तत्कवयो विदुः ।।

अन्वय–

एतत् ज्ञानकर्मेन्द्रिययुतं प्राणपञ्चक्रसंयुतम् ।

मनोबुद्धियुतं च तत्कवयो सूक्ष्मं विदुः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

एतत् = यह, ज्ञानकर्मेन्द्रिययुतम् = पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों से युक्त, प्राणपञ्चकसंयुतम्= पाँच प्राणों से युक्त, मनोबुद्धियुतम् = मन और बुद्धि से युक्त, तत् = उसे, कवयः = विद्वानों ने, सूक्ष्मम् = सूक्ष्म शरीर, विदुः = कहा है ।

भावार्थ–

यह जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन तथा बुद्धि से युक्त है तथा अपंचीकृत भूतों से उत्पन्न है, उसे विद्वानों ने सूक्ष्म शरीर कहा है ।

भाष्य–

त्वचा, कान, नाक, आँख और जिह्वा - ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ कहलाती हैं । क्योंकि इनसे विभिन्न पदार्थों का ज्ञान होता है । जैसे - त्वचा से स्पर्श, कान से ध्वनि, नाक से गन्ध, आँख से रंग और जिह्वा से स्वाद का ज्ञान होता है । हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ और मुख ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ है । प्रत्येक कर्मेन्द्रिय के अलग - अलग कर्म हैं । हाथ से कार्य-सम्पादन, पैर से चलना, गुदा से उत्सर्जन, उपस्थ से प्रजनन और उत्सर्जन तथा मुख से भोजन सम्पन्न होता है । प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान - ये पाँच प्राण हैं । इनके भी विविध कार्य हैं । मन से संकल्प - विकल्प होता है और बुद्धि से किसी वस्तु का निश्चय होता है । इस प्रकार पंचप्राण, पंचज्ञानेन्द्रिय और पंचप्राण तथा मन और बुद्धि से युक्त जीव की विशेष अवस्था उसका सूक्ष्म शरीर कहलाता है ।

श्लोक २८–

अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः ।
द्वितीयाऽयमुपाधिः स्यात्सुखादेरवबोधकः ।।

अन्वय–

अपञ्चीकृतभूतोत्थमयम् आत्मनः सूक्ष्मदेहः ।
द्वितीय उपाधिरयं सुखादेरवबोधकः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अपञ्चीकृतभूतोत्थमयम् = अपञ्चीकृतभूतोत्थम् + अयम् = अपंचीकृत भूत से उत्पन्न यह, आत्मनः = आत्मा का, सूक्ष्मदेहः = सूक्ष्मदेह, द्वितीयः = द्वितीय उपाधिरयम् (उपाधिः + अयम्) उपाधि यह, सुखादेरवबोधकः (सुखादेः + अवबोधकः) = सुख आदि का बोध कराने वाला ।

भावार्थ–

अपंचीकृत भूत से उत्पन्न यह सूक्ष्म देह आत्मा की दूसरी उपाधि है । सुख-दुःख का बोध इसी सूक्ष्म शरीर से होता है ।

भाष्य–

यह सूक्ष्म शरीर भी देवी की उपाधि है । पंचभूतात्मक शरीर जड़ है । जड़ वस्तु को सुख-दुःख का भाव नहीं होता । सुख-दुःख का भाव सूक्ष्म शरीर से होता है ।

श्लोक २९–

अनाद्यनिर्वाच्यमिदमज्ञानं तु तृतीयकः ।
देहोऽयमात्मनो भाति कारणात्मा नगेश्वर ।।

अन्वय–

नगेश्वर इदमनाद्यनिर्वाच्यमज्ञानं तु कारणात्मा ।
अयमात्मनः तृतीयको देहो भाति ।।

पछच्छेद अर्थसहित–

नगेश्वर = हे पर्वतराज, इदमनाद्यनिर्वाच्यमज्ञानम् (इदम् + अनादि + अनिर्वाच्यम् + अज्ञानम्) = यह अनादि, निर्वचनीय और अज्ञानमूलक, कारणात्मा = कारण शरीर, अयम् = यह (कारण शरीर), आत्मनः = आत्मा का, तृतीयकः = तीसरा, देहः = देह, भाति = प्रतीत होता है ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! अनादि, अनिर्वचनीय और अज्ञानमूलक जो यह कारण शरीर है, वही आत्मा के तीसरे शरीर के रूप में प्रतीत होता है ।

भाष्य–

स्थूल, सूक्ष्म और कारण - ये तीन शरीर हैं । कारण शरीर अज्ञानमूलक है और सूक्ष्म और स्थूल शरीर का आधार भी यही है । ज्ञान हो जाने पर कारण शरीर नष्ट हो जाता हे । तब सूक्ष्म और स्थूल की सत्ता स्वयमेव समाप्त हो जाती है और जीव मुक्त हो जाता है ।

श्लोक ३०–

उपाधिविलये जाते केवलात्मावशिष्यते ।
देहत्रये पञ्चकोशा अन्तःस्थाः सन्ति सर्वदा ।।

अन्वय–

उपाधिविलये जाते केवलात्मावशिष्यते ।
देहत्रये पञ्चकोशाः सर्वदा अन्तःस्थाः सन्ति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

उपाधिविलये = उपाधि का विलय, जाते = होने पर, केवलात्मावशिष्यते (केवल + आत्मा + अवशिष्यते) = केवल आत्मा (परमात्मा) शेष रह जाता हे, देहत्रये = तीनों देहों के भीतर,

पञ्चकोशा:= पाँच कोश (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय), सर्वदा = सदैव, अन्त:स्था: = भीतर, सन्ति = हैं ।

भावार्थ–

तीनों उपाधियों (स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर) का विलय हो जाने पर केवल परमात्मा ही शेष रह जाता है । इन तीनों देहों के भीतर पंचकोश सदा स्थित रहते हैं ।

भाष्य–

पंचकोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय) की स्थिति स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों के अन्तर्गत रहती है । स्थूल शरीर अन्नमय और प्राणमय कोश है । सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत मनोमय और विज्ञानमय कोश हैं । आनन्दमय कोश कारण शरीर के अन्तर्गत रहता है । निद्रावस्था में कारण शरीर रहता है । निद्रा आनन्द की अवस्था है, किन्तु इस आनन्द का स्रोत परमात्मा है इसका ज्ञान नहीं होता । साथ ही, निद्रा का आनन्द स्थायी नहीं है । निद्रा से जगने पर पुन: सुख-दु:खात्मक संसार का चक्र चलने लगता है ।

श्लोक ३१–

पञ्चकोशपरित्यागे ब्रह्मपुच्छं हि लभ्यते ।
नेतिनेतीत्यादिवाक्यैर्मम रूपं यदुच्यते ।।

अन्वय–

हि पञ्चकोशपरित्यागे ब्रह्मपुच्छं लभ्यते ।
यद् नेतिनेतीत्यादिवाक्यै उच्यते (तद्) मम रूपम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

हि = क्योंकि, पञ्चकोशपरित्यागे = पंचकोश का परित्याग कर देवे पर, ब्रह्मपुच्छम् = ब्रह्म में प्रतिष्ठा लभ्यते = प्राप्त होती है, यत् = जो, नेतिनेतीत्यादिवाक्यै: (नेति-नेति + इत्यादिवाक्यै:) = नेति-नेति आदि श्रुतिवाक्यों से, उच्यते = कहा जाता है, मम = मेरा, रूपम् = रूप ।

भावार्थ–

पंचकोश का परित्याग कर देने पर ब्रह्म में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, जो 'नेति-नेति' आदि श्रुतिवाक्यों के द्वारा सम्बोधित किया जाता है और जिसे मेरा ही रूप कहा जाता है ।

श्लोक ३२–

न जायते म्रियते तत्कदाचिन्नायं भूत्वा न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।

अन्वय–

तत्कदाचिन्न जायते (न) म्रियते अयम् कश्चिन्न भूत्वा न बभूव ।

अयम् अजो नित्यः शाश्वतः पुराणः शरीरे हन्यमाने अयम् न हन्यते।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत् = वह आत्मा, कदाचित् = कभी, न= नहीं, जायते = उत्पन्न होता है, म्रियते = मरता है, अयम्= यह आत्मा, कश्चित् = कोई, न = नहीं, भूत्वा = होकर, बभूव = हुआ, अज; = अजन्मा, नित्यः= नित्य, शाश्वतः = शाश्वत, पुराणः = पुरातन, हन्यमाने = मारे जाने पर, शरीरे = शरीर, हन्यते = मारा जाता है ।

भावार्थ–

यह आत्मा न कभी उत्पन्न होता हे ओर न कभी मरता है । यह कभी हुआ ही नहीं । यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन है । शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता है ।

श्लोक ३३–

हतं चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।।

अन्वय–

हतं चेत् हन्तुं मन्यते हतः चेत् हतं मन्यते ।
तौ उभौ न विजानीतो अयं न हन्ति न हन्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

हतम् = मारने वाले आत्मा को, चेत् = यदि, हन्तुम् = मारने में समर्थ, मन्यते = मानता है, हतः= मारा जाने वाला व्यक्ति, हतम् = मरा हुआ, तौ उभौ = वे दोनों, न= नहीं, विजानीतः = जानते, अयम्= यह आत्मा, न= नहीं, हन्ति = मारता हे, हन्यते = मारा जाता है ।

भावार्थ–

यदि कोई मारने वाला आत्मा को मारने में समर्थ मानता है और यदि कोई मारा जाने वाला व्यक्ति अपने को मरा हुआ मानता है तो वे दोनों ही आत्मस्वरूप को नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा न तो मारता है और न ही मारा जाता है ।

श्लोक ३४–

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमस्य ।।

अन्वय–

आत्मा अणोरणीयान्महतो महीयान् अस्य जन्तोर्गुहायां निहितः ।
अक्रतुः वीतशोको तं महिमानं धातुः प्रसादात् पश्यति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

आत्मा = आत्मा, अणोरणीयान् = अणु से भी सूक्ष्म, महतो महीयान् = महान् से भी महान् , अस्य= इसके, जन्तोः = जीवात्मा के, गुहायाम् = हृदय रूपी गुफा में, निहितः = रहने वाला, अक्रतुः = संकल्प = विकल्प से रहित, वीतशोकः = चिन्तामुक्त, तम् = उसको, महिमानम् = महिमा को, धातुः= परमेश्वर की, प्रसादात् = कृपा से, पश्यति = देख पाता है ।

भावार्थ–

यह आत्मा अणु से भी सूक्ष्म है और महान् से भी महान् है । यह आत्मा (परमात्मा) इस जीवात्मा के हृदय रूपी गुफा (बुद्धि) में रहने वाला है । संकल्प-विकल्प रहित और चिन्तामुक्त साधक ही परमात्मा की उस महिमा को परब्रह्म परमेश्वर की कृपा से देख पाता है ।

श्लोक ३५–

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथि विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।।

अन्वय–

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं तु रथमेव ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनश्च प्रग्रहमेव ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

आत्मानम् = आत्मा को, रथिनम् = रथी, विद्धि = समझिये, शरीरम् = शरीर को, रथमेव (रथम् + एव) = रथ, बुद्धिम् = बुद्धि को, सारथिम् = सारथी, मनः = मन को, प्रग्रहम् = लगाम, एव = ही ।

भावार्थ–

जीवात्मा को रथ का स्वामी और शरीर को रथ समझिये । बुद्धि को सारथी और मन को ही लगाम समझिये ।

श्लोक ३६–

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।।

अन्वय–

मनीषिणः इन्द्रियाणि हयान् (आहुः) विषयान् तेषु गोचरान् (आहुः) ।
(मनीषिणः) इन्द्रियमनोयुक्तं आत्मा भोक्ता इत्याहुः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मनीषिणः = विद्वान् लोग, इन्द्रियाणि = इन्द्रियों को, हयान् = घोड़े, विषयान् = विषयों को, तेषु=

उनके, गोचरान् = विचरने के मार्ग, इन्द्रियमनोयुक्तम् = इन्द्रिय और मन से युक्त, आत्मा = जीवात्मा, भोक्ता = भोग करने वाला, इत्याहुः (इति + आहुः) = ऐसा कहते हैं ।

भावार्थ–

विद्वान् लोग इन्द्रियों को घोड़े, विषयों को उन घोड़ों के विचरने का मार्ग बतलाते हैं और शरीर, इन्द्रिय तथा मन - इनके साथ रहने वाले जीवात्मा को भोक्ता कहते हैं ।

श्लोक ३७–

यस्त्वविद्वान्भवति चामनस्कश्च सदाशुचिः ।
न तत्पदमवाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ।।

अन्वय–

यस्त्वविद्वान्भवति चामनस्कश्च सदाशुचिः ।
(स) तत्पदं न अवाप्नोति संसारं चाधिगच्छति।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यः = जो, तु = तो, अविद्वान् = अज्ञानी, भवति = होता है, च = और, अमनस्कः = असंयत चित्त वाला, सदाशुचिः (सदा + अशुचिः) = सदैव, अपवित्र, तत्पदम् = उस परम पद को, न= नहीं, अवाप्नोति = प्राप्त करता है, संसारम् = संसार को, च = और, अधिगच्छति = प्राप्त होता है ।

भावार्थ–

जो मनुष्य सदा अज्ञानी, असंयतचित्त और अपवित्र रहता है; वह उस परम पद को नहीं प्राप्त कर पाता और बार-बार संसार में जन्म लेता रहता है ।

श्लोक ३८–

यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ।।

अन्वय–

यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यः = जो, तु = तो, विज्ञानवान् = ज्ञानसम्पन्न, भवति = होता है, समनस्कः = संयतचित्त, सदा = सदैव, शुचिः = पवित्र, सः = वह, तत्पदम् = उस परम पद को, आप्नोति = प्राप्त करता है, यस्मात् = जिससे, भूयः = फिर, न =नहीं, जायते = उत्पन्न होता है ।

भावार्थ–

किन्तु जो सदा ज्ञानशील, संयतचित्त और पवित्र रहता है; वह उस परम पद को प्राप्त कर लेता

है, जहाँ से लौटकर पुनः जन्म धारण नहीं करना पड़ता ।

श्लोक ३९–

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति मदीयं यत्परं पदम् ।।

अन्वय–

यः नरः विज्ञानसारथिः मनःप्रग्रहवान् ।
सोऽध्वनः पारमाप्नेति यत् मदीयं परं पदम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यः = जो, नरः = मनुष्य, विज्ञानसारथिः = विवेकयुक्त बुद्धिरूप, सारथी से सम्पन्न, मनःप्रग्रहवान् = मन रूपी लगाम को वश में रखने वाला, सः = वह, अध्वनः = संसार रूपी मार्ग को, पारम् = पार, अवाप्नोति = कर लेता है, या लेता है; यत् = जो, मदीयम् = मेरा, परम् = परम, पदम् = पद ।

भावार्थ–

जो मनुष्य विवेकयुक्त बुद्धिरूपी सारथि से सम्पन्न और मन रूपी लगाम को वश में रखने वाला है, वह संसार मार्ग से परे जो मेरा परम पद है, उसे प्राप्त कर लेता है ।

श्लोक ४०–

इत्थं श्रुत्या च मत्या च निश्चित्यात्मानमात्मना ।
भावयेन्मामात्मरूपां निदिध्यासनतोऽपि च ।।

अन्वय–

इत्थं श्रुत्या च मत्या च आत्मना आत्मानं निश्चित्य ।
निदिध्यासनतोऽपि च आत्मरूपां मां भावयेत् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

इत्थम् = इस प्रकार, श्रुत्या= श्रवण द्वारा, मत्या = मनन द्वारा, आत्मना = अपने द्वारा, आत्मानम= आत्मा को, निश्चित्य = निश्चय करके, निदिध्यासनतः = निदिध्यासन द्वारा, अपि = भी, आत्मरूपाम्= परमात्मस्वरूपिणी को, माम् = मुझको, भावयेत् = भावना करनी चाहिए ।

भावार्थ–

इस प्रकार (वेदान्त) श्रवण तथा मनन के द्वारा अपने यथार्थ स्वरूप का निश्चय करके बार-बार गंभीर चिन्तन- मनन के द्वारा मुझ परमात्मस्वरूपिणी भगवती की भावना करनी चाहिए ।

श्लोक ४१–

भोगवृत्ते पुरा स्वस्मिन्भावयेदक्षरत्रयम् ।

देवीप्रणवसंज्ञस्य ध्यानार्थं मन्त्रवाच्ययोः ।।

अन्वय–

मन्त्रवाच्ययोः ध्यानार्थं पुरा योगवृत्तेः ।
देवीप्रणवसंज्ञस्य अक्षरत्रयं स्वस्मिन् भावयेत् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

मन्त्रवाच्ययोः = मन्त्र और मन्त्र के अर्थ के, ध्यानार्थम् = सम्यक् ध्यान के लिए, पुरा = सर्वप्रथम, योगवृत्तेः = योग वृत्ति से, देवीप्रणवसंज्ञस्य = देवी प्रणव की संज्ञा वाले, अक्षरत्रयम् = तीनों अक्षरों को, स्वस्मिन् = अपने भीतर, भावयेत् = भावना करनी चाहिए ।

भावार्थ–

मन्त्र उसके अर्थ के स्वरूप के सम्यक् ध्यान के लिए सर्वप्रथम योगाभ्यास में प्रतिष्ठित होकर देवीप्रणव नामक मंत्र (ह्रीं) के तीनों अक्षरों की अपने भीतर भावना करनी चाहिए ।

श्लोक ४२–

हकार स्थूलदेहः स्यादकारः सूक्ष्मदेहकः।
ईकारः कारणात्मासौ ह्रींकारऽहं तुरीयकम् ।।

अन्वय–

हकारः स्थूलदेहः रकारः सूक्ष्मदेहकः स्यात् ।
असौ ईकारः कारणात्मा ह्रींकारोऽहं तुरीयकम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

हकारः = 'ह' वर्ण स्थूलदेहः = स्थूल देह, रकारः = 'र' वर्ण, सूक्ष्मदेहकः = सूक्ष्म देह, स्यात् = है, असौ = वह, ईकारः = 'ई' वर्ण, कारणात्मा = कारण देह, ह्रींकारः = 'ह्रीं' यह देवी प्रणव है, अहम् = मैं, तुरीयकम् = चतुर्थ ।

भावार्थ–

'हकार' स्थूल देह, 'रकार' सूक्ष्म देह और 'ईकार' कारण देह है । 'ह्रीं' यह चतुर्थ रूप में स्वयं हूँ ।

श्लोक ४३–

एवं समष्टिदेहेऽपि ज्ञात्वा बीजत्रयं क्रमात् ।
समष्टिव्यष्टयोरेकत्वं भावयेन्मतिमान्नरः ।।

अन्वय–

एवं मतिमान्नरः समष्टिदेहेऽपि क्रमात् बीजत्रयं ज्ञात्वा समष्टिव्यष्टेकत्वं भावयेत् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

एवम् = इस प्रकार, मतिमान्नर = मतिमान् + नरः) = बुद्धिमान् मनुष्य समष्टिदेहेऽपि (समष्टि +देहे+

अपि) = समष्टिदेह में भी, क्रमात् = क्रमशः, बीजत्रयम् = तीनों बीजों को, ज्ञात्वा = जानकर, समष्टिव्यष्ट्योरेकत्वम् (समष्टि + व्यष्ट्योः + एकत्वम्) = समष्टि और व्यष्टि इन दोनों की एकता को, भावयेत् = चिन्तन करे ।

भावार्थ–

इस प्रकार बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि समष्टि शरीर में भी क्रमशः तीनों बीजों को समझकर समष्टि और व्यष्टि इन दोनों रूपों की एकता का चिन्तन करे ।

श्लोक ४४–

समाधिकालात्पूर्वं तु भावयित्वैवमादृतः ।
ततो ध्यायेन्निलीनाक्षो देवीं मां जगदीश्वरीम् ।।

अन्वय–

समाधिकालात्पूर्वं तु आदृतः एवं भावयित्वा ।
ततो निलीनाक्षो मां जगदीश्वरीं देवीं ध्यायेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

समाधिकालात्पूर्वम् (समाधिकालात् + पूर्वम्) = समाधिकाल के पूर्व, आदृतः = आदरपूर्वक, एवं = इस प्रकार, भावयित्वा = भावना करके, ततः = उसके बाद, निलीनाक्षः = आँखें बन्द करके, माम्= मुझको, जगदीश्वरीम् = जगदीश्वरी को, ध्योयत् = ध्यान करना चाहिए ।

भावार्थ–

समाधिकाल के पूर्व ही आदरपूर्वक इस प्रकारकी भावना करके पुनः उसके बाद दोनों नेत्र बन्दकर मुझ भगवती जगदीश्वरी का ध्यान करना चाहिए ।

श्लोक ४५–

प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ।
निवृत्तविषयाकाङ्क्षो वीतदोषो विमत्सरः ।।

अन्वय–

निवृत्तविषयाकाङ्क्षो वीतदोषो विमत्सरः ।
नासाभ्यन्तरचारिणो प्राणापानौ समौ कृत्वा -

पदच्छेद अर्थसहित–

निवृत्तविषयाकाङक्षः (निवृत्तविषय + आकाङक्षः) = विषय भोगों की कामना से रहित, वीतदोषः = दोषयुक्त, विमत्सरः = ईर्ष्याशून्य, नासाभ्यन्तरचारिणौ = नासिका के भीतर विचरणशील, प्राणापानौ= प्राण और अपान को, समौ = समान स्थिति में, कृत्वा = करके ।

भावार्थ–

साधक को चाहिए कि वह किसी एकान्त स्थान में आसीन होकर, विषय-भोगों की कामना से रहित, दोषमुक्त तथा ईर्ष्याशून्य रहते हुए और नासिका के भीतर विचरणशील प्राण तथा अपान वायु को समान स्थिति में करके ।

श्लोक ४६–

भक्त्या निर्व्याजया युक्तो गुहायां निःस्वने स्थले।
हकारं विश्वमात्मानं रकारे प्रविलापयेत् ।।

अन्वय–

गुहायां निःस्वने स्थले निर्व्याजया भक्त्या युक्तः ।
विश्वात्मानं हकारं रकारे प्राविलापयेत् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

गुहायाम् = गुफा के भीतर, निःस्वने स्थले = शब्दरहित स्थान में, निर्व्याजया भक्त्या = निष्कपट भक्ति से, युक्तः = युक्त, विश्वात्मानम् = विश्वात्मा रूप को, हकारम् = हकार को, रकारे = रकार में, प्रविलापयेत् = समाविष्ट करे ।

भावार्थ–

गुफा के भीतर शब्दरहित स्थान में बैठकर देवी की निष्कपट भक्ति से सम्पन्न होकर विश्वात्मा रूप हकार को रकार में समाविष्ट करे अर्थात् हकारवाच्य स्थूल देह को रकारवाच्य सूक्ष्म देह में लीन करे ।

श्लोक ४६–

रकारं तैजसं देवमीकारे प्रविलापयेत् ।
ईकारं प्राज्ञमात्मानं ह्रींकारे प्रविलापयेत् ।।

अन्वय–

तैजसं देवं रकारं ईकारे प्रविलायेत् ।
आत्मानं प्राज्ञं ईकारं ह्रींकारे प्रविलापयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तैजसम् =तैजस को, देवम् = देवस्वरूप को, ईकारे = ईकार में, प्रविलापयेत् = समाविष्ट करे, आत्मानम् = आत्मस्वरूप को, प्राज्ञम् = प्राज्ञ स्वरूप को, ईकारम = ईकार को, ह्रींकारे = ह्रींकार में ।

भावार्थ–

तैजस देवस्वरूप रकार को ईकार में समाविष्ट करे अर्थात् रकारवाच्य तैजस - सूक्ष्म देह को ईकारवाच्य में लीन करे और प्राज्ञ-स्वरूप ईकार को ह्रींकार में समाविष्ट करे अर्थात् ईकारवाच्य

कारणदेह के ह्रींकारवाच्य ब्रह्म में लीन करे ।

श्लोक ४८–

वाच्यवाचकताहीनं द्वैतभावविवर्जितम् ।
अखण्डं सच्चिदानन्दं भावयेत्तच्छिखान्नरे ।।

अन्वय–

तत् वाच्यवाचकताहीनं द्वैतभावविवर्जितं ।
अखण्ड सच्चिदानन्दं शिखान्तरे भावयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत् = उस को, वाच्यवाचकताहीनम् = वाच्य - वाचक से रहित, द्वैतभाव- विवर्जितम् = समस्त द्वैत भाव से परे, अखण्डम् = अखण्ड को, सच्चिदानन्दम् = सच्चिदानन्द को, शिखान्तरे = शिखा-स्थान यानि सहस्त्रार में ।

भावार्थ–

उस वाच्य-वाचक से रहित, समस्त द्वैतभाव से परे अखण्ड सच्चिदानन्द की भावना अपने शिखा-स्थान (सहस्त्रार) में करे ।

श्लोक ४९–

इति ध्यानेन मां राजन् साक्षात्कृत्य नरोत्तमः ।
मद्रूप एव भवति द्वयोरप्येकता यतः ।।

अन्वय–

राजन् इति ध्यानेन नरोत्तमः मां साक्षात्कृत्य ।
मद्रूप एव भवति यतः द्वयोरप्येकता ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

राजन् = हे राजन् इति = इस प्रकार, ध्यानेन = ध्यान से, नरोत्तमः = श्रेष्ठ पुरुष, माम् = मुझे, साक्षात्कृत्य = साक्षात्कार करके, मद्रूप (मत् + रूप) = मेरा ही रूप, एव = ही, भवति = हो जाता है, यतः = क्योंकि, द्वयोरप्येकता (द्वयोः अपि + एकता) = दोनों की एकता ।

भावार्थ–

हे राजन ! इस प्रकार के ध्यान से श्रेष्ठ पुरुष मेरा साक्षात्कार करके मेरे ही रूपवाला हो जाता है; क्योंकि दोनों में सदा एकता सिद्ध है ।

श्लोक ५०–

योगयुक्त्यानया दृष्ट्वा मामात्मानं परात्परम् ।

अज्ञानस्य सकार्यस्य तत्क्षणे नाशको भवेत् ।।

अन्वय–

अनया योगयुक्त्या परात्परं मामात्मानं दृष्ट्वा ।
(योगी) तत्क्षणे सकार्यस्य अज्ञानस्य नाशको भवेत् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

अनया = इससे, योगयुक्त्या = योगरीति से, परात्परम् = पर से भी पर, मामात्मानम् (माम् + आत्मानम्) = मुझे अपने स्वरूप के रूप में, दृष्टवा =देखकर, तत्क्षणे = उसी क्षण, सकार्यस्य = कर्मसहित, अज्ञानस्य = अज्ञान का, नाशक: = नाश करने वाला, भवेत् = हो जाता है ।

भावार्थ–

योग की इस रीति से पर से पर मुझको अपने ही रूप में देखकर साधक उसी क्षण कर्मसहित अपने अज्ञान का नाश करने वाला हो जाता है ।

पञ्चत्रिंशोऽध्याय: (पैंतीसवाँ अध्याय)

हिमालय उवाच

श्लोक १–

योगं वद महेशानि साङ्गं संवित्प्रदायकम् ।
कृतेन येन योग्योऽहं भवेयं तत्त्वदर्शने ।।

अन्वय–

महेशानि संवित्प्रदायकं योगं साङ्गं वद ।
येन कृतेन तत्त्वदर्शने अहं योग्यो भवेयम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

महेशानि = हे महेश्वरि, संवित्प्रदायकम् = ज्ञान प्रदान करने वाला, योगम् = योग को, साङ्गम् = सगोपांग, वद् =वर्णन कीजिए, येन कृतेन = जिसकी साधना से, तत्त्वदर्शने = तत्त्वदर्शन में, अहम्= मैं, योग्य: = योग्य, भवेयम् = हो जाऊँ ।

भावार्थ–

हे महेश्वरि ! अब आप ज्ञान प्रदान करने वाले योग का सांगोपांग वर्णन कीजिए, जिसकी साधना से मैं तत्त्वदर्शन की प्राप्ति के योग्य हो जाऊँ ।

देव्युवाच

श्लोक २–

न योगो नभस: पृष्ठे न भूमौ न रसातले ।

ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः ।।

अन्वय–

योगो न नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले ।
योगविशारदाः जीवात्मनोः ऐक्यं योगं आहुः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

योगः = योग, न = नहीं, नभसः पृष्ठे = आकाशमण्डल में, भूमौ = पृथ्वी पर, रसातले = रसातल में, योगविशारदाः = योग विद्या के विद्वान् जीवात्मनोः = जीव और आत्मा की, ऐक्यम् = एकता को, आहुः = कहा है ।

भावार्थ–

देवी बोलीं - यह योग न आकाश मण्डल में है, न पृथ्वीतल पर है और न तो रसातल में ही है । योगविद्या के विद्वानों ने जीव और आत्मा की एकता को ही योग कहा है ।

श्लोक ३–

तत्प्रत्यूहाः षडाख्याता योगविघ्नकरानघ ।
कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमात्सर्यसंज्ञकौ ।।

अन्वय–

अनघ योगविघ्नकरा कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमात्सर्यसंज्ञकौ षट् तत्प्रत्यूहा आख्याताः ।

पदच्छेद अर्थसहित–

अनघ = हे निष्पाप ! योगविघ्नकरा = योग में विघ्न उत्पन्न करने वाले, कामक्रोधौ = काम और क्रोध, लोभमोहौ = लोभ और मोह, मदमात्सर्य संज्ञकौ = मद और मात्सर्य संज्ञा वाले, षट् = छः, तत् = उसके, प्रत्यूहाः = दोष, आख्याताः ।

भावार्थ–

हे निष्पाप पर्वतराज ! उस योग में विघ्न उत्पन्न करने वाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य नामक-ये छः प्रकार के दोष बताये गये हैं ।

श्लोक ४–

योगाङ्गैरेव भित्त्वा तान्योगिनो योगमाप्नुयुः ।
यमं नियमसनप्राणायामौ ततः परम् ।।

अन्वय–

योगाङ्गैरेव तानि भित्त्वा योगिनो योगमाप्नुयुः ।
यमं नियमासनप्राणायामौ ततः परम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

योगाङ्गैरेव (योग + अङ्गैः + एव) = योग के अंगों के द्वारा, तानि = उन (विघ्नों)को, भित्त्वा = उच्छेद करके, योगिनः = योगी गण, योगमाप्नुयुः (योगम् + आप्नुयुः) = योग की प्राप्ति करनी चाहिए ।

भावार्थ–

अतः योग के अंगों के द्वारा उन विघ्नों का उच्छेद करके योगियों को योग की प्राप्ति करनी चाहिए । योगियों के लिए योगसिद्धि हेतु यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि - ये आठ अंग बताये गये हैं ।

श्लोक ५–

प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं सार्धं समाधिना ।
अष्टाङ्गान्याहुरेतानि योगिनां योगसाधने ।।

अन्वय–

योगिनां योगसाधने समाधिना सार्धं प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं एतानि अष्टाङ्गानि आहुः ।

पदच्छेद अर्थसहित–

योगिनाम् = योगियों के लिए, योगसाधने = योग की साधना में, समाधिना, सार्धम् = समाधि के सहित, प्रत्याहारम् = प्रत्याहार, धारणाख्यम् = धारणा, ध्यानम् = ध्यान, एतानि = ये, अष्टाङ्गानि= आठ अंग, आहुः = बताये गये हैं ।

भावार्थ–

योगियों के लिए योग सिद्धि हेतु यम, नियम, आसन, प्राणायाम,प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि- ये आठ अंग बताये गये हैं ।

श्लोक ६–

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् ।
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश ।।

अन्वय–

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् ।
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति दश यमाः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अहिंसा = जीव की हत्या न करना, सत्यमस्तेयम् (सत्यम् + अस्तेयम्) सत्य और अस्तेय, यानि चोरी न करना, ब्रह्मचर्यम् = ब्रह्मचर्य, दयार्जवम् (दया + आर्जवम्) = दया और सरलता, क्षमा = क्षमा, सहनशीलता, धृतिर्मिताहारः (धृतिः + मिताहारः) = धैर्य और परिमित आहार, शौचम् = पवित्रता, चेति (च + इति) = और इस प्रकार, दशः = दस, यमाः = यम ।

भावार्थ–

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धैर्य, परिमित आहार और शौच - ये दस यम हैं ।

श्लोक ७-८–

तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम् ।
सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् ।।
दशैते नियमाः प्रोक्ता मया पर्वतनायक ।।

अन्वय–

पर्वतनायक तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनं
सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् एते दश नियमा मया प्रोक्ताः।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पर्वतनायक = हे पर्वतराज हिमालय, तपः = तप, सन्तोषः = सन्तोष, आस्तिक्यम् = आस्तिकता, दानम् = दान, देवस्य = देवता का, पूजनम् = पूजा, सिद्धान्तश्रवणम् = शास्त्र के सिद्धान्तों का श्रवण, चैव (च + एव) और भी, ह्रीर्मतिश्च (ह्रीः + मतिः + च) = लज्जा और सद्बुद्धि, जपः = जप, हुतम् = हवन, एते = ये, दश = दस, मया = मेरे द्वारा, प्रोक्ताः = कहे गये हैं ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, देवता का पूजन, शास्त्र के सिद्धान्तों का श्रवण, लज्जा, सद्बुद्धि, जप और हवन - ये दस नियम मेरे द्वारा कहे गये हैं ।

श्लोक ८-१०–

पद्मासनं स्वस्तिकं च भद्रं वज्रासनं तथा ।

श्लोक ९–

वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपञ्चकम् ।
ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक्यादतले शुभे ।

श्लोक १०–

अङ्गुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः ।
पद्मासनमिति प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम् ।।

अन्वय–

पद्मासनं स्वस्तिकं च भद्रं वज्रासनं तथा ।
वीरासनमिति क्रमादासनपञ्चकं प्रोक्तम् ।।

शुभे पादतले ऊर्वोरुपरि सम्यक् विन्यस्य
ततः हस्ताभ्यां व्युत्क्रमात् अङ्गुष्ठौ च निबध्नीयात् इति योगिनां हृदयङ्गमं पद्मासनं प्रोक्तम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पद्मसनम् = पद्मासन, स्वस्तिकम् = स्वस्तिकासन, भद्रम् = भद्रासन, वज्रासनम् = वज्रासन, वीरासनमिति (वीरासनम् + इति) = वीरासन, क्रमादासनपञ्चकम् (क्रमात् + आसनपञ्चकम्) = क्रमशः ये पाँच आसन, प्रोक्तम् = कहे गये हैं । ऊर्वोरुपरि (ऊर्वोः + उपरि) = जंघो पर, विन्यस्य = रखकर, सम्यक् = सम्यक् रूप से, शुभे पादतले = दोनों शुभ तलवों को, अङ्गुष्ठौ = दोनों अँगूठों को, च = और, निबध्नीयाद्धस्ताभ्याम् = (निबध्नीयात् + हस्ताभ्याम्)= दोनों हाथों से पकड़े ।

भावार्थ–

पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन और वीरासन - क्रमशः ये पाँच आसन बलताये गये हैं । दोनों पैरों के दोनों शुभ तलवों को सम्यक् रूप से जंघों पर रखकर पीठ की ओर से हाथों को ले जाकर दाहिने हाथ से दाहिने पैर के अँगूठे को और बायें हाथ से बायें पैर के अँगूठे को पकड़े; योगियों के हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला यह पद्मासन कहा गया है ।

श्लोक ११–

जानूर्वोरन्तरे सम्यक्कृत्वा पादतले शुभे ।
ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ।।

अन्वय–

जानूर्वोरन्तरे शुभे पादतले सम्यक्कृत्वा
योगी ऋजुकायो विशेत् तत् स्वस्तिकं प्रचक्षते।।

पदच्छेद अर्थसहित–

जानूर्वोरन्तरे (जानु + ऊर्वोः + अन्तरे) = जाँघ और घुटने के बीच में, सम्यक्कृत्वा (सम्यक् + कृत्वा) = सम्यक् रूप से करके, शुभे पादतले = दोनों सुन्दर तलवों को, ऋजुकायः= शरीर सीधा करके, योगी = योगी, विशेत् = बैठना चाहिए, तत् = यह, स्वस्तिकम् = स्वस्तिक आसन, प्रचक्षते= कहा जाता है ।

भावार्थ–

जाँघ और घुटने के बीच में पैर के दोनों सुन्दर तलवो के अच्छी तरह करके योगी को शरीर सीधा करके बैठना चाहिए । उसे स्वस्तिकासन कहा जाता है ।

श्लोक १२-१३–

सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्य गुल्फयुग्मं सुनिश्चितम् ।

वृषणाधः पादपार्ष्णी पार्ष्णिभ्यां परिबन्धयेत् ।।
भद्रासनमिति प्रोक्तं योगिभिः परिपूजितम् ।।

अन्वय–

सीवन्याः पार्श्वयोः गुल्फयुग्मं वृषणाधः सुनिश्चितं।
न्यस्य पादपार्ष्णी पार्ष्णिभ्यां परिबन्धयेत् ।
इति योगिभिः परिपूजितं भद्रासनं प्रोक्तम् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

सीवन्याः = सीवनी के, पार्श्वयोः = दोनों ओर, न्यस्य = रखकर, गुल्फयुग्मं = दोनों एड़ियों को, सुनिश्चितम् = अच्छी तरह, वृषणाधः = अण्डकोष के नीचे, पादपार्ष्णी = दोनों पैरों को, पार्ष्णिभ्याम्= हाथों से, परिबन्धयेत् = पकड़कर बैठना चाहिए, इति = इस प्रकार, योगिभिः = योगियों के द्वारा, परिपूजितम् = सम्यक् रूप से प्रशंसित, प्रोक्तम् = कहा गया है ।

भावार्थ–

सीवनी के दोनों ओर दोनों एड़ियों को अण्डकोष के नीचे अच्छी तरह रखकर दोनों पैरों को हाथों से पकड़कर बैठना चाहिए । योगियों द्वारा प्रशंसित यह आसन भद्रासन कहा गया है ।

श्लोक १३ - १४–

ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जान्वोः प्रत्यङ्मुखाङ्गुली।
करौ विदध्यादाख्यातं वज्रासनमुत्तमम् ।।

अन्वय–

पादौ क्रमाद् ऊर्वोः न्यस्य जान्वोः प्रत्यङमुखाङ्गुली ।
करौ विदध्याद् (इदम्) उत्तम् वज्रासनम् आख्यातम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पादौ = दोनों पैरों को, क्रमात् = क्रमशः, ऊर्वोः = दोनों जाँघों पर, न्यस्य = रखकर, जान्वोः = घुटनों के, प्रत्यङ्मुखाङ्गुली = निचले भाग में सीधी अँगुली वाले, करौ = दोनों हाथ, विदध्यात् = स्थापित करे, उत्तमम् = अत्युत्तम, वज्रासनम् = वज्रासन, आख्यातम् = कहा गया ।

भावार्थ–

दोनों पैरों को क्रमशः दोनों जाँघों पर रखकर दोनों घुटनों के निचले भाग में सीधी अँगुली वाले दोनों हाथ स्थापित करके बैठने को अत्युत्तम वज्रासन कहा गया है ।

श्लोक १४ - १५–

एकं पादमधः कृत्वा विन्यस्योरुं तयोत्तरे ।

ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासनमितीरितम् ।।

अन्वय–

योगी एकं पादम् अधः कृत्वा तथा उत्तरे ऊरुं विन्यस्य ।
ऋजुकायो विशेद् (इदम्) वीरासनम् इति ईरितम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

एकम् = एक, पादम् = पैर को, अघः = नीचे, कृत्वा = करके, उत्तरे = दूसरे पैर पर, ऊरुम् = जंघा को, विन्यस्य = रखकर, ऋजुकायः = सीधा शरीर, विशेत् = बैठे, वीरासनम् = वीरासन, इति= ऐसा, ईरितम् = कहा गया ।

भावार्थ–

एक पैर को नीचे करके उसके ऊपर दूसरे पैर का जंघा रखकर योगी को शरीर सीधा करके बैठना चाहिए; यह वीरासन कहा गया है ।

श्लोक १५-१६-१७–

इडयाकर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया ।
धारयेत्पूरितं योगी चतुःषष्ट्या तु मात्रया ।
सुषुम्णामध्यगं सम्यग्द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ।
नाड्या पिङ्गलया चैव रेचयेद्योगवित्तमः ।
प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः ।

अन्वय–

योगी षोडशमात्रया इडया बाह्यं वायुम् आकर्षयेत् ।
चतुःषष्टया मात्रया पूरितं सम्यक् सुषुम्णामध्यगां धारयेत् ।
योगवित्तमः द्वात्रिंशन्मात्रया पिङ्गलया नाड्या चैव शनैः रेचयेत् ।
योगशास्त्रविशारदा इमं प्राणायामं प्राहुः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

इडया = इडा अर्थात् बायीं नासिका से, आकर्षयेत् = खींचे, वायुम् = वायु को, षोडशमात्रया = सोलह बार प्रणव का उच्चारण करने में लगने वाले समय तक, धारयेत् = धारण करे, पूरितम् = पूरित वायु को, चतुःषष्ट्या = चौंसठ बार (प्रणव) मात्रया = उच्चारण समय तक, सुषुम्णामध्यगम् = सुषुम्णा के मध्य, सम्यक् = ठीक - ठीक, द्वात्रिंशत् = बत्तीस, मात्रया = उच्चारण समय तक, शनैः= धीरे-धीरे, नाड्या = नाड़ी से, पिङ्गलया = पिङ्गला से, चैव (च + एव) = और, रेचयेत् = छोड़े, योगवित्तमः = श्रेष्ठ योगी, प्राणायामम् = प्राणायाम, इमम् = इसको, प्राहुः = कहते हैं, योगशास्त्रविशारदाः = योगशास्त्र के विद्वान् ।

भावार्थ–

योगी सोलह बार प्रणव का उच्चारण करने में लगने वाले समय तक इडा अर्थात् बायीं नासिका से बाहर की वायु को खींचे (पूरक) पुनः इस पूरित वायु को चौंसठ बार प्रणव के उच्चारण समय तक सुषुम्णा के मध्य रोके रहे (कुम्भक) और इसके बाद योगविद् को चाहिए कि बत्तीस बार प्रणव के उच्चारण में जितना समय लगे - उतने समय में धीरे - धीरे पिंगला नाडी अर्थात् दायीं नासिका के द्वारा उस वायु को बाहर करे (रेचक)। योगशास्त्र के विद्वान् इस प्रक्रिया को 'प्राणायाम' कहते हैं।

श्लोक १८–

भूयो भूयः क्रमात्तस्य बाह्यमेवं समाचरेत् ।
मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग्द्वादश षोडश ।।

अन्वय–

एवं भूयो भूयो बाह्यं तस्य क्रमात् समाचरेत् ।
मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग्द्वादश षोडश ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

एवम् = इस प्रकार, भूयो भूयः = पुनः पुनः, बाह्यम् = बाहरी वायु को, तस्य = प्राणायाम, यानि पूरक, कुम्भक और रेचक का, क्रमात् = क्रम से, समाचरेत् = करना चाहिए, मात्रावृद्धिक्रमेण = प्रणव के उच्चारण के समय की वृद्धि के अनुसार, एव = ही, सम्यक् = यथोचित , द्वादश = बारह, षोडश =सोलह।

भावार्थ–

इस प्रकार पुनः पुनः बाहर की वायु को लेकर क्रम से पूरक, कुम्भक, तथा रेचक करके प्राणायाम का अभ्यास मात्रा (प्रणव के उच्चारण के समय) की वृद्धि के अनुसार करना चाहिए। इस प्रकार प्राणायाम पहले बारह बार, तदनन्तर सोलह बार बाद क्रमशः उत्तरोत्तर वृद्धि करनी चाहिए।

श्लोक १९–

जपध्यानादिभिः सार्धं सगर्भं तं विदुर्बुधाः ।
तदपेतं विगर्भं च प्राणायामं परे विदुः ।।

अन्वय–

जपध्यानादिभिः सार्धं तम् (प्राणायामम्) बुधाः सगर्भं विदुः। तदपेतं च प्राणायामं परे विगर्भं विदुः।

पदच्छेद अर्थसहित–

जपध्यानादिभिः = जप-ध्यान आदि के द्वारा, सार्धम् = साथ, तम् = उसको (प्राणायाम को) बुधाः = विद्वज्जन, सगर्भम् = सगर्भ, गर्भसहित, विदुः = कहते हैं, तदपेतम् (तत् + अपेतम्) = तत् = वह,

अपेतम् = रहित, परे = विद्वज्जन, विगर्भम् = विगर्भ, गर्भरहित ।

भावार्थ–

जो प्राणायाम तप ध्यान आदि से युक्त होता हे, उसे विद्वज्जनों ने सगर्भ प्राणायाम और जप ध्यान से रहित प्राणायाम केा विगर्भ प्राणायाम कहा है ।

श्लोक २०–

क्रमादभ्यस्यतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः ।
मध्यमः कम्पसंयुक्तो भूमित्यागः परो गतः ।

अन्वय–

क्रमादभ्यस्यतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः ।
कम्पसंयुक्तः मध्यमः भूमित्यागः परो मतः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

क्रमात् = क्रमशः, अभ्यस्यतः = अभ्यास करने वाले का, पुंसः = पुरुष का, देहे = देह में, स्वेद = पसीना, उद्गमः = निकलना, अधमः = निम्नकोटि, कम्पसंयुक्तः = कम्पनयुक्त, मध्यमः = मध्यम, भूमित्यागः = जमीन से ऊपर उठना, परः = श्रेष्ठ, मतः = माना गया है ।

भावार्थ–

इस प्रकार क्रम से अभ्यास करते हुए मनुष्य के शरीर में पसीना आ जाय तो उसे अधम, कम्पन उत्पन्न होने पर मध्यम और जमीन छोड़कर ऊपर उठने पर उत्तम प्राणायाम कहा गया है ।

श्लोक २१-२२–

उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते ।
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निरर्गलम् ।
बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारोऽभिधीयते ।।

अन्वय–

उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते ।
विषयेषु निरर्गलं विचरतां इन्द्रियाणां
तेभ्यो बलादाहरणं प्रत्याहारोऽभिधीयते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

उत्तमस्य = उत्तम प्राणायाम की, गुणावाप्तिः = स्थिति की प्राप्ति, यावत् = तक, शीलनम् = अभ्यास, इष्यते = वांछनीय, विषयेषु = विषयों में, निरर्गलम् = स्वच्छन्द रूप से, विचरतां = विचरण करने वाली को, इन्द्रियाणाम् = इन्द्रियों को, तेभ्यः = उनसे अर्थात् विषयों से, बलात् = बलपूर्वक, आहरणम् = हटाना, प्रत्याहारः = प्रत्याहार, अभिधीयते = कहा जाता है ।

भावार्थ–

जब तक उत्तम प्राणायाम तक न पहुँचा जाये, तब तक अभ्यास करते रहना चाहिए। अपने-अपने विषयों में स्वच्छन्द रूप से विचरण करती हुई इन्द्रियों को उन विषयों से बलपूर्वक हटाने को प्रत्याहार कहा जाता है।

श्लोक २२-२३–

अङ्गुष्ठगुल्फजानूरुमूलाधोलिङ्गनाभिषु ।
हृद्ग्रीवाकण्ठदेशेषु त्वम्बिकायां ततो नसि ।
भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशान्ते यथाविधि ।
धारणं प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते ।।

अन्वय–

अङ्गुष्ठगुल्फजानूरुमूलाधोलिङ्गनाभिषु हृद्ग्रीवाकण्ठदेशेषु ।
मस्तके मूर्ध्नि द्वादशान्ते ततो नसि त्वम्बिकायां भ्रूमध्ये ।।
यथाविधि प्राणमरुतो धारणं धारणेति निगद्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अङ्गुष्ठ = अँगूठा, गुल्फ = एड़ी, जानु = घुटना, ऊरु = जाँघ, मूलाधः = गुदा, लिङ्ग = उपस्थ, नाभिषु = नाभि में, हृदग्रीवाकण्ठदेशेषु = हृदय, ग्रीवा और कण्ठ स्थानों में, मस्तके = मस्तक में मूर्ध्नि = मूर्धा में, द्वादशान्ते = इन बारह स्थानों के अन्त में, ततः इसके अनन्तर, नसि = नाक में, त्वम्बिकायाम् = नाक की ऊपरी रेखा में, भ्रूमध्ये = भौंहों के बीच में, यथाविधि = विधिपूर्वक, प्राणमरुतः = प्राणवायु का, धारणम् = धारणा, इति = ऐसा, निगद्यते = कहा जाता है।

भावार्थ–

अँगूठा,घुटना, जाँघ, गुदा, लिंग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, मस्तक, मूर्धा - इन बारह स्थानों के अनन्तर नाक में, नाक की ऊपरी रेखा में और भौंहों के मध्य प्राणवायु को विधिपूर्वक धारण किये रखने को धारणा कहा जाता है।

श्लोक २४-२५–

समाहितेन मनसा चैतन्यान्तरवर्तिना ।
आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते ।।

अन्वय–

चैतन्यान्तरवर्तिना समाहितेन मनसा आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते ।

पदच्छेद अर्थसहित–

चैतन्यान्तरवर्तिना (चैतन्य + अन्तर्वर्तिना) चैतन्य = चेतन, अन्तर्वर्तिना = भीतर रहने वाले से, समाहितेन, मनसा = एकाग्र चित्त से, आत्मनि = आत्मा में, अभीष्टदेवानाम् = अभीष्ट देवताओं का, ध्यानम् = ध्यान, इह = यहाँ उच्यते = कहा जाता है ।

भावार्थ–

चेतन आत्मा में मन को स्थित करके एकाग्रचित्त होकर अपने भीतर अभीष्ट देवता का सतत चिन्तन करने को ध्यान कहा जाता है ।

श्लोक २५-२६–

समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः ।
समाधिर्माहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम् ।।
इदानीं कथये तेऽहं मन्त्रयोगमनुत्तमम् ।।

अन्वय–

मुनयः जीवात्मपरमात्मनोः नित्यं समत्वभावना समाधिर्माहुः ।
अष्टाङ्गलक्षणं प्रोक्तं, इदानीं अहं ते अनुत्तमं मन्त्रयोगं कथये ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मुनयः = मुनियों ने, जीवात्मपरमात्मनोः = जीवात्मा और परमात्मा का, नित्यम् = नित्य, समत्वभावना= समता की भावना, समाधिः = समाधि, आहुः = कहा है, अष्टाङ्गलक्षणम् = आठ अंगों वालो योग, प्रोक्तम् = बताया, इदानीम् = अब, अहम् = मैं, ते = तुमसे, अनुत्तमम् = अत्युत्तम, मन्त्रयोगम् = मंत्रयोग, कथये = कहती हूँ ।

भावार्थ–

मुनियों ने जीवात्मा और परमात्मा में नित्य समत्व भावना रखने को समाधि कहा है । यह मैंने आपको अष्टांगयोग का लक्षण बता दिया । अब मैं आपको उत्कृष्ट मन्त्रयोग का वर्णन कर रही हूँ ।

श्लोक २७–

विश्वं शरीरमित्युक्तं पञ्चभूतात्मकं नग ।
चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ।।

अन्वय–

नग पञ्चभूतात्मकं शरीरं विश्वमित्युक्तम् ।
चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नग = हे पर्वतराज, पञ्चभूतात्मकम् = पाँच भूतों - पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश से युक्त, शरीरम् = शरीर, विश्वम् = विश्व, इति = ऐसा, उक्तम् = कहा जाता है, चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिः = चन्द्र,

सूर्य और अग्नि के तेज से युक्त होने पर, जीवब्रह्मैक्यरूपकम् = जीव और ब्रह्म की एकता ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! इस पञ्चभूतात्मक शरीर को विश्व कहा जाता है । चन्द्र, सूर्य ओर अग्नि के तेज से युक्त होने पर (इडा-पिंगला-सुषुम्ना में योगसाधन से) जीव-ब्रह्म की एकता होती है ।

श्लोक २८–

तिस्रः कोट्यस्तदर्धेन शरीरे नाडयो मताः ।
तासु मुख्या दश प्रोक्तास्ताभ्यस्तिस्रो व्यवस्थिताः ।।

अन्वय–

शरीरे तिस्रः कोट्यस्तदर्धेन नाडयो मताः ।
तासु मुख्या दश प्रोक्तास्ताभ्यस्तिस्रो व्यवस्थिताः ।

पदच्छेद अर्थसहित–

शरीरे = शरीर में, तिस्रः = तीन, कोट्यः = करोड़, तदर्धेन = आधा, नाडयो = नाड़ियाँ, मताः = मानी गयी हैं, तासु = उन नाड़ियों में, मुख्या = मुख्य, दश = दस, प्रोक्ताः = कही गयी हैं, ताभ्य;= उनमें से, तिस्रः = तीन, व्यवस्थितः = विशेष ।

भावार्थ–

शरीर में साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ बतायी गयी हैं । उनमें दस नाडियाँ मुख्य कही गयी हैं । उनमें भी तीन नाड़ियों को प्रधान कहा गया है ।

श्लोक २९–

प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ।
इडा वामे स्थिता नाडी शुभ्रा तु चन्द्ररूपिणी ।।

अन्वय–

अत्र मेरुदण्डे चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी प्रधाना ।
चन्द्ररूपिणी तु शुभ्रा नाडी इडा वामे स्थिता ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अत्र = यहाँ अर्थात् मानव शरीर में, मेरुदण्डे = मेरुदण्ड में, चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी = चन्द्र, सूर्य और अग्नि रूप वाली, प्रधाना = प्रधान, चन्द्ररूपिणी = चन्द्ररूपी, शुभ्रा = श्वेत, वामे = बायीं ओर, स्थिता = स्थित

भावार्थ–

मानव शरीर में मेरुदण्ड में चन्द्र, सूर्य और अग्नि रूप वाली नाड़ियाँ रहती हैं । चन्द्ररूपिणी श्वेत 'इडा'

नाड़ी उसकी बायीं ओर स्थित है ।

श्लोक ३०–

शक्तिरूपा तु सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा ।
दक्षिणे या पिङ्गलाख्या पुंरूपा सूर्यविग्रहा ।।

अन्वय–

सा तु नाडी शक्तिरूपा साक्षादमृतविग्रहा ।
दक्षिणे या पिङ्गलाख्या पुंरूपा सूर्यविग्रहा ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सा = वह, शक्तिरूपा = शक्ति रूप वाली, साक्षात् = साक्षात् , अमृतविग्रहा = अमृतस्वरूपिणी, दक्षिणे = दायीं ओर, या = जो, पिङ्गलाख्या = पिंगला नामक, पुंरूपा = पुरुषरूपिणी, सूर्यविग्रहा= सूर्य जैसी मूर्ति वाली ।

भावार्थ–

'इडा' नाडी शक्तिस्वरूपा है और साक्षात् अमृतरूप है । मेरुदण्ड की दायीं ओर 'पिंगला' नामक नाड़ी है । यह पुरुषरूपा और सूर्य जैसी मूर्ति वाली है ।

श्लोक ३१–

सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्णा वह्निरूपिणी ।
तस्या मध्ये विचित्राख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मकम् ।।

अन्वय–

सा तु सर्वतेजोमयी सुषुम्णावह्निरूपिणी ।
तस्या मध्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मकं विचित्राख्ये ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सा = वह नाड़ी जो 'इडा' और पिंगला' के बीच में स्थित है, सर्वतेजोमयी = सबसे अधिक तेज से युक्त, वह्निरूपिणी = अग्नि के रूप वाली, तस्या = उसके, मध्ये = मध्य में, इच्छाज्ञानक्रियात्मकम= इच्छा, ज्ञान और क्रिया से युक्त, विचित्राख्ये = विचित्रा नाम वाली ।

भावार्थ–

'इडा' और 'पिंगला' नाडियों के बीच में जो सर्वाधिक तेज से युक्त और अग्नि रूप वाली नाड़ी है, उसे 'सुषुम्णं' कहते हैं । 'सुषुम्णं' के भीतर 'विचित्रा' नामक नाड़ी स्थित है, जो इच्छा- ज्ञान-क्रिया से सम्पन्न है ।

श्लोक ३२–

मध्ये स्वयम्भूलिङ्गं तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ।

तदूर्ध्वं मायाबीजं तु हरात्माबिन्दुनादकम् ।।

अन्वय–

मध्ये तु कोटिसूर्यसमप्रभं स्वयम्भूलिङ्गम् ।
तदूर्ध्वं तु हरात्माबिन्दुनादकं मायाबीजम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मध्ये = 'सुषुम्ण' के भीतर, कोटिसूर्यसमप्रभम् = करोड़ों सूर्यों के समान प्रभा वाला, स्वयम्भूलिङ्गम्= स्वयम्भूलिंग, तत् = वह, ऊर्ध्वम् = ऊपर, हरात्माबिन्दुनादकम् = बिन्दुनाद (ँ) - सहित हरात्मा (हकार, रेफ तथा ईकार) - स्वरूप, मायाबीजम् = मायाबीज (ह्रीं) ।

भावार्थ–

'सुषुम्ण' के भीतर करोड़ो सूर्यों के तेज के समान स्वयम्भूलिंग है । उसके ऊपर बिन्दुनाद (ँ) - सहित हरात्मा (हकार, रेफ तथा ईकार) - स्वरूप मायाबीज (ह्रीं) विराजमान है ।

श्लोक ३३–

तदूर्ध्वं तु शिखाकारा कुण्डली रक्तविग्रहा ।
देव्यात्मिका तु सा प्रोक्ता मदभिन्ना नगाधिप ।।

अन्वय–

तदूर्ध्वं तु शिखाकारा रक्तविग्रहा कुण्डली ।
नगाधिप सा तु देव्यात्मिका मदभिन्ना ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत् = वह, ऊर्ध्वं = ऊपर, शिखाकारा = शिखा के आकार वाली, रक्तविग्रहा = रक्त विग्रह वाली, कुण्डली = कुण्डलिनी, नगाधिप = हे पर्वतराज, सा = वह, देव्यात्मिका = देवी से युक्त, मत् = मुझसे, अभिन्ना = अभिन्न ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! उसके ऊपर रक्तविग्रह वाली शिखा के आकार की कुण्डलिनी है । वह देव्यात्मिका कही गयी है और मुझसे अभिन्न है ।

श्लोक ३४–

तद्बाह्ये हेमरूपाभं वादिसान्तचतुर्दलम् ।
द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र विचिन्तयेत् ।।

अन्वय–

तद्बाह्ये हेमरूपाभं द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं ।

तत्र वादिसान्तचतुर्दलं विचिन्तयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत् = वह, बाह्ये = बाह्य भाग में, हेमरूपाभम् = स्वर्ण की आभा वाला, द्रुतहेमसमप्रख्यम् = पिघले हुए स्वर्ण से निर्मित, पद्मम् = कमल को, तत्र = वहाँ, यानि उस कमल में, वादिसान्तचतुर्दलम् = चार पंखुड़ियों वाले कमल को, जिस पर व, श, ष,स - ये चार बीजाक्षर स्थित हैं ।विचिन्तयेत् = चिन्तन करना चाहिए ।

भावार्थ–

कुण्डलिनी के बाह्य भाग में स्वर्णिम आभा से युक्त चार पंखुड़ियों वाला कमल (मूलाधार) है, जिसकी एक-एक पंखुड़ी पर व, श, ष, स - ये बीजाक्षर स्थित हैं । इनका ध्यान करना चाहिए ।

श्लोक ३५–

तदूर्ध्वं त्वनलप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम् ।
बादिलान्तषड्वर्णेन स्वाधिष्ठानमनुत्तमम् ।।

अन्वय–

तद्ऊर्ध्वं त्वनलप्रख्यं हीरकप्रभं षड्दलं स्वाधिष्ठानम् ।
बादिलान्तषड्वर्णेन अनुत्तमम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत् = वह, ऊर्ध्वम् = ऊपर, अनलप्रख्यम् = अग्नि के समान तेजोमय, हीरकप्रभम् = हीरे की चमक वाला, षड्दलम् = छः पंखुड़ियों वाला, स्वाधिष्ठानम् = स्वाधिष्ठान, बादिलान्तषड्वर्णेन = ब, भ, म, य, र, ल - इन छः बीजाक्षरों से युक्त, अनुत्तमम् = अत्युत्तम ।

भावार्थ–

मूलाधार के ऊपर छः पंखुड़ियों वाला उत्तम स्वाधिष्ठान चक्र स्थित है, जो अग्नि के समान तेजोमय, हीरे की चमक वाला और ब, भ, म, य, र, ल - इन छः बीजाक्षरों से युक्त है ।

श्लोक ३६–

मूलमाधारषट्कोणं मूलाधारं ततो विदुः ।
स्वशब्देन परं लिङ्गं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ।।

अन्वय–

मूलमाधारषट्कोणं मूलाधारं ततो विदुः ।
स्वशब्देन परं लिङ्गं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मूलम् = मूल, आधारषट्कोणम् = षट्कोण है जिसका आधार, मूलाधारम् = मूलाधार, ततः =

इसलिए, विदुः = कहते हैं, स्वशब्देन = 'स्व' शब्द से, परम् = परम ।

भावार्थ–

आधार षट्कोण पर स्थित होने के कारण मूलाधार कहा जाता है । इसी प्रकार 'स्व' शब्द से परम लिंग को इंगित करने के कारण स्वाधिष्ठान संज्ञा है ।

श्लोक ३८–

मणिवद्भिन्नं तत्पदम् मणिपद्मं तथोच्यते ।
दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफान्ताक्षरान्वितम् ।।

अन्वय–

तत्पदम् मणिवद्भिन्नं तथा मणिपद्मं उच्यते ।
डादि फान्ताक्षरान्वितं दशभिश्च दलैर्युक्तम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ततः = वह, पद्मम् = कमल, मणिवद्भिन्नम् = मणि के समान प्रभा वाला, मणिपद्मम् = मणिपद्म, उच्यते = कहा जाता है, डादि फान्ताक्षरान्वितम् = ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ - इन अक्षरों से समन्वित, दशभिश्च = और दस, दलैः = पंखुड़ियों से, युक्तम् = युक्त ।

भावार्थ–

मणि के समान प्रभा वाला होने के कारण यह 'मणिपद्म' भी कहा जाता है । यह दस पंखुड़ियों से युक्त है और ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ - इन अक्षरों से समन्वित है ।

श्लोक ३९–

विष्णुनाधिष्ठितं पद्मं विष्ण्वालोकनकारणम् ।
तदूर्ध्वेऽनाहतं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् ।।

अन्वय–

विष्णुनाधिष्ठितं पद्मं विष्ण्वालोकनकारणम् ।
तदूर्ध्वे उद्यदादित्यसन्निभम् अनाहतं पद्मम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

विष्णुना = विष्णु के द्वारा, अधिष्ठितम् = अधिष्ठित, पद्मम् = कमल, विष्ण्वालोकनकारणम् = विष्णु के दर्शन का साधन, तत् = वह, ऊर्ध्वे = ऊपर, उद्यदादित्यसन्निभम् = उगते हुए सूर्य के समान प्रभा से सम्पन्न, अनाहतम् = अनाहत, पद्मम् = कमल ।

भावार्थ–

भगवान् विष्णु के द्वारा अधिष्ठित होने के कारण यह कमल उनके दर्शन का महान् साधन है । उसके

ऊपर उगते हुए सूर्य के समान प्रभा से सम्पन्न अनाहत पद्म है ।

श्लोक ४०–

कादिठान्तदलैरर्कपत्रैश्च समधिष्ठितम् ।
तन्मध्ये बाणलिङ्गं तु सूर्यायुतसमप्रभम् ।।

अन्वय–

कादिठान्तदलैरर्कपत्रैश्च समधिष्ठितम् ।
तन्मध्ये बाणलिङ्गं तु सूर्यायुतसमप्रभम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

कादिठान्तदलै: = क से लेकर ठ तक - इन अक्षरों से युक्त बारह पत्रों वाला, अर्कपत्रै: = सूर्य के समान तेजोमय पत्रों वाला, समधिष्ठितम् = प्रतिष्ठित, तत् = वह, मध्ये = मध्ये में, बाणलिङ्गम् = बाणलिङ्ग, सूर्यायुतसमप्रभम् = दस हजार सूर्यों की प्रभा से युक्त ।

भावार्थ–

अनाहत कमल (चक्र) क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ - इन अक्षरों से युक्त बारह पंखुड़ियों से प्रतिष्ठित है । उसके मध्य में दस हजार सूर्यों के समान प्रभा वाला बाणलिंग स्थित है ।

श्लोक ४१-४२–

शब्दब्रह्ममयं शब्दानाहतं तत्र दृश्यते ।
अनाहताढ्यं तत्पद्मं मुनिभिः परिकीर्तितम् ।।
आनन्दसदनं तत्तु पुरुषाधिष्ठितं परम् ।।

अन्वय–

तत्र शब्दब्रह्ममयं शब्दानाहतं दृश्यते ।
तत्पद्मम् मुनिभिः अनाहताढ्यं परिकीर्तितम् ।।
परं पुरुषाधिष्ठितं तत्तु आनन्दसदनम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत्र = वहाँ (अनाहत चक्र में), शब्दब्रह्ममयम् = ब्रह्म जो शब्द रूप (ऊँकार) है, शब्द = शब्द, अनाहतम् = बिना किसी आघात के, दृश्यते - परिलक्षित होता है, तत् = वह, पद्मम् = कमल (चक्र) को मुनिभि: = मुनियों के द्वारा, अनाहताख्यम् = अनाहत संज्ञा वाला, परिकीर्तितम् = कहा गया है। परम् = परम, पुरुषाधिष्ठितम् = पुरुष द्वारा अधिष्ठित, तत् = वह, आनन्दसदनम् = आनन्द का सदन।

भावार्थ–

अनाहत कमल (चक्र) में बिना किसी आघात के शब्द होता रहता है अत: मुनियों के द्वारा उस

शब्दब्रह्ममय कमल को 'अनाहत' कहा गया है । परम पुरुष द्वारा अधिष्ठित वह चक्र आनन्द का सदन है ।

श्लोक ४२-४३–

तदूर्ध्वं तु विशुद्धाख्यं दलं षोडशपङ्कजम् ।
स्वरैः षोडशभिर्युक्तं धूम्रवर्णं महाप्रभम् ।
विशुद्धं तनुते यस्माज्जीवस्य हंसलोकनात् ।।

अन्वय–

तदूर्ध्वं षोडशपङ्कजं दलं विशुद्धाख्यम् ।
षोडशभिः स्वरैः युक्तं धूम्रवर्णं महाप्रभम् ।
यस्मात् हंसलोकनात् जीवस्य विशुद्धं तनुते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत् = वह, ऊर्ध्वम् = ऊपर, षोडशपङ्कजम् = सोलह पंखुड़ियों वाला, दलम् = कमल, विशुद्धाख्यम् = विशुद्ध नामक, षोडशभिः = सोलह, स्वरैः = स्वरों से, युक्तम् = युक्त, धूम्रवर्णम् = धूम्र वर्ण वाला, महाप्रभम् = महती प्रभा से युक्त, यस्मात् = जिससे, हंसलोकनात् = हंसस्वरूप परमात्मा के दर्शन से, जीवस्य = जीव का, विशुद्धम् = विशुद्ध आत्मस्वरूप को, तनुते = प्राप्त करता है ।

भावार्थ–

उसके ऊपर सोलह पंखुड़ियों से युक्त 'विशुद्ध ' नामक कमल है । महतीं प्रभा से युक्त तथा धूम्र वर्ण वाला यह कमल म, आ, इ, ई, उ, ऊ, त्र, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः - इन सोलह स्वरों से सम्पन्न है । इसमें हंसस्वरूप परमात्मा के दर्शन से जीव विशुद्ध आत्म स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, इसीलिए इसे विशुद्ध पद्म (विशुद्ध चक्र) कहा गया है ।

श्लोक ४४–

विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महाद्भुतम् ।
आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वं तु आत्मनाधिष्ठितं परम् ।।

अन्वय–

महाद्भुतं विशुद्धं चक्रं आकाशाख्यं आख्यातम् ।
तदूर्ध्वं तु आत्मनाधिष्ठितं परं आज्ञाचक्रम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

महान् = बहुत, अद्भुतम् = विचित्र, विशुद्धम् = विशुद्ध, चक्रम् = चक्र, आकाशाख्यम् = आकाश नाम से, आख्यातम् = कहा गया है, तत् = वह, ऊर्ध्वम् = ऊपर, आत्मनाधिष्ठितम् = परमात्मा द्वारा

अधिष्ठित, परम् = पर, आज्ञाचक्रम् = आज्ञा चक्र ।

भावार्थ–

इस महान् अद्भुत कमल को 'आकाश चक्र' भी कहा गया है । उसके ऊपर परमात्मा द्वारा अधिष्ठित श्रेष्ठ 'आज्ञाचक्र' है ।

श्लोक ४५–

आज्ञासंक्रमणं तत्र तेनाज्ञेति प्रकीर्तितम् ।
द्विदलं हक्षसंयुक्तं पद्मं तत्सुमनोहरम् ।।

अन्वय–

तत्र आज्ञासंक्रमणं तेनाज्ञेति प्रकीर्तितम् ।
द्विदलं हक्षसंयुक्तं तत्पद्मं सुमनोहरम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत्र = वहाँ, यानि आज्ञाचक्र में, आज्ञासंक्रमणम् = परमात्मा की आज्ञा का संक्रमण, तेन = इस कारण, आज्ञेति (आज्ञा + इति) = आज्ञा इस प्रकार, प्रकीर्तितम् = कहा गया है, द्विदलम् = दो पंखुड़ियों वाला, हक्षसंयुक्तम् = 'ह' और 'क्ष' - इन दो अक्षरों से युक्त, तत् = वह, पद्मम् = कमल, सुमनोहरम् = अत्यन्त मनोहर ।

भावार्थ–

आज्ञाचक्र में परमात्मा की आज्ञा का संक्रमण होता है, इसी से उसे 'आज्ञाचक्र' ऐसा कहा गया है । वह कमल दो दलों वाला, ह तथा क्ष - इन दो अक्षरों से युक्त और अत्यन्त मनोहर है ।

श्लोक ४६–

कैलासाख्यं तदूर्ध्वं तु रोधिनी तु तदूर्ध्वतः ।
एवं त्वाधारचक्राणि प्रोक्तानि तव सुव्रत ।।

अन्वय–

तदूर्ध्वं तु कैलासाख्यं तदूर्ध्वतः तु रोधिनी ।
सुव्रत एवं तव त्वाधारचक्राणि प्रोक्तानि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत् = वह, ऊर्ध्वम् = ऊपर, कैलासाख्यम् = कैलास 'नामक, तत् = वह, ऊर्ध्वतः = ऊपर, रोधिनी= रोधिनी, सुव्रत = सुव्रत, एवम् = इस प्रकार, तव = तुमसे, आधारचक्राणि= आधारचक्र, प्रोक्तानि = कहा ।

भावार्थ–

उसके ऊपर कैलास नामक चक्र और उसके भी ऊपर 'रोधिनी' नामक चक्र स्थित है । हे सुव्रत !

इसप्रकार मैंने आपको आधारचक्रों के विषय में बता दिया ।

श्लोक ४७–

सहस्रारयुतं बिन्दुस्थानं तदूर्ध्वमीरितम् ।
इत्येतत्कथितं सर्वं योगमार्गमनुत्तमम् ।।

अन्वय–

तदूर्ध्वं बिन्दुस्थानं सहस्रारं ईरितम् ।
इत्येतत् सर्वं अनुत्तमं योगमार्गं कथितम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत् = वह, ऊर्ध्वं = ऊपर, बिन्दुस्थानम् = बिन्दुस्थान रूप, सहस्रारम् = सहस्रार, ईरितम् = बताया गया, इति = इस प्राकार, एतत् = यह, सर्वम् = सब, अनुत्तमम् = अत्युत्तम् = योगमार्गम् = योग का मार्ग, कथितम् = बताया ।

भावार्थ–

इसके और भी ऊपर सहस्र दलों से सम्पन्न बिन्दुस्थान रूप 'सहस्रारचक्र' बताया गया है । यह मैंने आपसे सम्पूर्ण श्रेष्ठ योगमार्ग का वर्णन कर दिया ।

श्लोक ४८–

आदौ पूरकयोगेनाप्याधारे योजयेन्मनः ।
गुदमेढ्रान्तरे शक्तिस्तामाकुञ्च्य प्रबोधयेत् ।।

अन्वय–

आदौ पूरकयोगेन आधारे मनः योजयेत् ।
गुदमेढ्रान्तरे शक्तिस्तामाकुञ्च्य प्रबोधयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

आदौ = सर्वप्रथम, पूरकयोगेन = पूरक प्राणायाम के द्वारा, आधारे = मूलाधार में, मनः = मन को, योजयेत् = लगाना चाहिए , गुदमेढ्रान्तरे = गुदा और मेढ्र के बीच में, शक्तिः = कुण्डलिनी शक्ति, आकुञ्च्य = समेटकर, प्रबोधयेत् = जागृत करना चाहिए ।

भावार्थ–

सर्वप्रथम पूरक प्राणायाम के द्वारा मूलाधार में मन लगाना चाहिए । तत्पश्चात् गुदा और मेढ्र के बीच में वायु के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को समेटकर उसे जागृत करना चाहिए ।

श्लोक ४९–

लिङ्गभेदक्रमेणैव बिन्दुचक्रं च प्रापयेत् ।

शम्भुना तां परां शक्तिमेकीभूतां विचिन्तयेत् ।।

अन्वय–

लिङ्गभेदक्रमेणैव बिन्दुचक्रं च प्रापयेत् ।
तां परां शक्तिं शम्भुना एकीभूतां विचिन्तयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

लिङ्गभेदक्रमेण = लिंग - भेदन के क्रम से, एव = ही, बिन्दुचक्रम् = बिन्दुचक्र यानि सहस्त्रार को, प्रापयेत = प्राप्त कराना चाहिए, ताम् = उस को, पराम् = परा, शक्तिम् = शक्ति को, शम्भुना = परमेश्वर शम्भु के साथ, एकीभूताम् = एकीभूत, विचिन्तयेत् = ध्यान करना चाहिए ।

भावार्थ–

पुन: लिंग भेदन के क्रम से स्वयम्भूलिंग से आरम्भ करके उस कुण्डलिनी शक्ति को बिन्दुचक्र (सहस्त्रार) तक ले जाना चाहिए । इसके बाद उस परा शक्ति का सहस्त्रार में स्थित परमेश्वर शम्भु के साथ ऐक्य भाव से ध्यान करना चाहिए ।

श्लोक ५०–

तत्रोत्थितामृतं यत्तु द्रुतलाक्षारसोपमम् ।
पाययित्वा तु तां शक्तिं मायाख्यां योगसिद्धिदाम् ।।

अन्वय–

तत्रोत्थितामृतं यत्तुं द्रुतलाक्षारसोपमम् ।
तां योगसिद्धिदां मायाख्यां शक्तिं पाययित्वा ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत्र = वहाँ, उत्थितामृतम् = उत्पन्न हुए अमृत को, यत् = जो, द्रुतलाक्षारसोपमम् = द्रवीभूत लाक्षारस के समान, ताम् = उसको, योगसिद्धिदाम् = योगसिद्धि प्रदान करने वाली को, मायाख्याम् = माया नामक, शक्तिम् = शक्ति, पाययित्वा = पिलाकर ।

भावार्थ–

वहाँ द्रवीभूत लाक्षारस के समान उत्पन्न अमृत को योगसिद्धि प्रदान करने वाली माया नामक शक्ति को पिलाकर ।

श्लोक ५१–

षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया ।
आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं ततः सुधी ।।

अन्वय–

तत्र षट्चक्रदेवताः अमृतधारया सन्तर्प्य
ततः सुधीः (शक्तिम्) तेन मार्गेण मूलाधारं आनयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत्र = वहाँ, षट्चक्रदेवताः = षट्चक्र में स्थित देवताओं को, अमृतधारया = अमृतधारा से, सन्तर्प्य= संतृप्त करके, ततः = इसके बाद, सुधीः = बुद्धिमान साधक, तेन = उसी, मार्गेण = मार्ग से, मूलाधारम् = मूलाधार तक, आनयेत् = लाये ।

भावार्थ–

तत्पश्चात् छहों चक्रों में स्थित देवताओं को अमृतधारा से संतृप्त करे । फिर बुद्धिमान साधक उसी मार्ग से कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार तक वापस लौटा लाये ।

श्लोक ५२–

एवमभ्यस्यमानस्याप्यहन्यहनि निश्चितम् ।
पूर्वोक्तदूषिता मन्त्राः सर्वे सिद्धयन्ति नान्यथा ।

अन्वय–

एवं अहन्यहनि अभ्यस्यमानस्य सर्वे पूर्वोक्तदूषिता मन्त्राः।
निश्चितं सिद्धयन्ति न अन्यथा ।

पदच्छेद अर्थसहित–

एवम् = इस प्रकार, अहन्यहनि = प्रतिदिन, अभ्यस्यमानस्य = अभ्यास करने वाले के, सर्वे = सभी, पूर्वोक्तदूषिताः = पहले कहे गये दूषित, मन्त्राः = मन्त्र, निश्चितम् = निश्चित रूप से, सिद्धयन्ति = सिद्ध हो जाते हैं , न= नहीं, अन्यथा = दूसरे उपाय से ।

भावार्थ–

इस प्रकार प्रतिदिन अभ्यास करने पर साधक के पूर्वोक्त सभी दूषित मन्त्र भी निश्चित रूप से सिद्ध हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है । इसके अतिरिक्त किसी उपाय से दूषित मन्त्र सिद्ध नहीं होते ।

श्लोक ५३–

जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात् ।
ये गुणाः सन्ति देव्या मे जगन्मातुर्यथा तथा ।।

अन्वय–

जरामरणदुःखाद्यैः भवबन्धनात् मुच्यते ।
ये गुणा यथा मे जगन्मातुः देव्या सन्ति तथा ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

जरामरणदु:खाद्यै: = जरा-मरण आदि दु:खों से, भवबन्धनात् = भावबन्धन से, मुच्यते = मुक्त हो जाता है, ये = जो, गुणा: = गुण, यथा = जैसे, मे = मेरे, जगन्मातु: = जगज्जननी के, देव्या: = देवी के, सन्ति = है, तथा = वैसे ही ।

भावार्थ–

इसके द्वारा साधक जरा-मरण आदि दु:खों तथा भवबन्धन से मुक्त हो जाता है । जो गुण जगज्जनी में जिसप्रकार विद्यमान हैं, वे सभी गुण उसी प्रकार ।

श्लोक ५४–

ते गुणाः साधकवरे भवन्त्येव न चान्यथा ।
इत्येवं कथितं तात वायुधारणमुत्तमम् ।।

अन्वय–

ते गुणाः साधकवरे भवन्ति एव अन्यथा न ।
तान इत्येवं वायुधारणमुत्तमं कथितम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ते = वे, गुणा: = गुण, साधकवरे = श्रेष्ठ साधक में, भवन्ति = होते हैं, अन्यथा = दूसरे साधन से, न = नहीं, तात = पुत्र, इति = इस प्रकार, एवम् = ऐसा, वायुधारणम् = वायु को धारण करना अर्थात् प्राणायाम, उत्तमम् = उत्तम, कथितम् = कहा ।

भावार्थ–

श्रेष्ठ साधक में उत्पन्न हो जाते हैं । वे गुण अन्य किसी साधन से सम्भव नहीं हैं । हे तात् ! मैंने आपसे इस श्रेष्ठ प्राणायाम का वर्णन किया है ।

श्लोक ५५–

इदानीं धारणाख्यं तु शृणुष्वावहितो मम ।
दिक्कालाद्यनवच्छिन्नदेव्यां चेतो विधाय च ।

अन्वय–

पदच्छेद अर्थसहित–

इदानीम् = अब, आवहित: = सावधान होकर, मम = मेरी, धारणाख्यम् = धारणा को, शृणु = सुनिये, दिक् = दिशा, कालादि = काल आदि से, अवच्छिन्न = अपरिच्छिन्न, देव्याम् = देवी में, चेत: = चित्त को, विधाय = स्थिर करके ।

भावार्थ–

अब आप सावधान होकर मुझसे धारणा नामक योग का श्रवण कीजिये दिशा, काल आदि से अपरिच्छिन्न मुझ भगवती में चित्त स्थिर करके ।

श्लोक ५६–

तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवब्रह्मैक्ययोजनात् ।
अथवा समलं चेतो यदि क्षिप्रं न सिद्धयति ।।

अन्वय–

जीवब्रह्मैक्ययोजनात् क्षिप्रं तन्मयो भवति ।
अथवा समलं चेतो यदि क्षिप्रं न सिद्धयति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

जीवब्रह्मैक्ययोजनात् = जीव और ब्रह्म का ऐक्य हो जाने से, क्षिप्रम् = शीघ्र, तन्मयः = तन्मय, भवति= हो जाता है, अथवा = या, समलम् = मल युक्त, चेतः = चित्त, न= नहीं, सिद्धयति = सिद्धि प्राप्त होती है ।

भावार्थ–

जीव और ब्रह्म का ऐक्य हो जाने से शीघ्र ही साधक तन्मय हो जाता है और यदि चित्त के मलयुक्त रहने के कारण शीघ्रतापूर्वक सिद्धि प्राप्त न हो तो ।

श्लोक ५७–

तदावयवयोगेन योगी योगान्समभ्यसेत् ।
मदीयहस्तपादादावङ्गे तु मधुरे नग ।।

अन्वय–

तदा योगी अवयवयोगेन योगान्समभ्यसेत् ।
नग मदीयहस्तपादादौ मधुरे अङ्गे ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तदा = तब, अवयवयोगेन = मेरे विग्रह के अंगों में मन स्थिर करके, योगान् = योग को, समभ्यसेत= अभ्यास करता रहे, नग = हे पर्वत, मदीयहस्तपादादौ = मेरे हाथ, पैर आदि में, मधुरे अङ्गे = मधुर अंगों में ।

भावार्थ–

तब योगी को चाहिए कि मेरे विग्रह के अंगों में (अपना मन स्थित करके) निरन्तर योग का अभ्यास करता रहे । हे पर्वत ! साधक को मेरे कर-चरण आदि मधुर अंगों में ।

श्लोक ५८–

चित्तं संस्थापयेन्मन्त्री स्थानं स्थानजयात्पुनः ।
विशुद्धचित्तः सर्वस्मिन्रूपे संस्थापयेन्मनः ।

अन्वय–

मन्त्री स्थानजयात्पुनः स्थानं चित्तं संस्थापयेत् ।
विशुद्धचित्तः सर्वस्मिन्रूपे मनः संस्थापयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मन्त्री = मन्त्रजापक, स्थानजयात् = देवी के एक अंग पर ध्यान सिद्ध हो जाने के बाद, पुनः = फिर, स्थानम् = देवी के अन्य अंग को, चित्तम् = चित्त, संस्थापयेत् = स्थिर करना चाहिए, विशुद्धचित्तः= विशुद्ध चित्त वाला, सर्वस्मिन् = सब में, रूपे = रूप में, मनः = मन को, संस्थापयेत् = स्थिर करना चाहिए ।।

भावार्थ–

मन्त्रजापक मेरे एक अंग पर ध्यान सिद्ध हो जाने के बाद अन्य अंग पर चित्त स्थिर करे । इस प्रकार विशुद्ध चित्त होकर मेरे समस्त रूप में मन को स्थिर करना चाहिए ।

श्लोक ५९–

यावन्मनो लयं याति देव्यां संविदि पर्वत ।
तावदिष्टमनुं मन्त्री जपहोमैः समभ्यसेत् ।।

अन्वय–

पर्वत यावत् संविदि देव्यां मनो लयं याति ।
तावत् मन्त्री जपहोमैः इष्टमनुं समभ्यसेत् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

यावत् = जब तक, संविदि = ज्ञानस्वरूपिणी में, देव्याम् = देवी में, मनः = मन, लयम् = लय, याति = जाता है, तावत् = तब तक, मन्त्री = मन्त्रजापक, जपहोमैः = जप-होम के द्वारा, इष्टमनुम्= इष्ट मन्त्र को, समभ्यसेत् = अभ्यास करे ।

भावार्थ–

हे पर्वत ! जब तक ज्ञानरूपिणी मुझ भगवती में मन का लय न हो जाय तब तक मन्त्रजापक को जप-होम के द्वारा अपने इष्ट मन्त्र का अभ्यास करते रहना चाहिए ।

श्लोक ६०–

मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञेयज्ञानाय कल्पते ।
न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हि सः ।।

अन्वय–

मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञेयज्ञानाय कल्पते ।
न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हि सः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मन्त्र + अभ्यासेन = मन्त्राभ्यास के द्वारा, योगेन = योग के द्वारा, ज्ञेयज्ञानाय= ज्ञेय वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, कल्पते = प्राप्त होता है, न = नहीं, विना = बिना, मन्त्रः = मन्त्र, मन्त्रेण = मन्त्र के द्वारा, सः = वह, यानि योग ।

भावार्थ–

मन्त्राभ्यास - योग के द्वारा ज्ञेय तत्त्व का ज्ञान प्राप्त हो जाता है । योग के बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होता और मन्त्र के बिना योग नहीं होता ।

श्लोक ६१–

द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम् ।
तमः परिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते ।।
एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः ।।

अन्वय–

द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम् ।
तमः परिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते ।
एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः ।।

पदच्छद अर्थसहित–

द्वयोः= दोनों का, अभ्यासयोगः = निरन्तर अभ्यास करना, ब्रह्मसंसिद्धिकारणम् = ब्रह्म सिद्धि का साधन, तमः = अन्धकार, परिवृते = घिरा होने पर, गेहे = घर में, घटः = घड़ा, दीपेन = दीपक के द्वारा, दृश्यते = दिखलाई पड़ता है । एवम् = इस प्रकार, मायावृतः = माया से ढँका, हि + आत्मा= आत्मा, मनुना = मन्त्र के द्वारा, गोचरीकृतः ।।

भावार्थ–

अतः योग और मन्त्र - उन दोनों का अभ्यास-योग ही ब्रह्मसिद्धि का साधन है । अन्धकार से अच्छादित घर में स्थित घड़ा दीपक के प्रकाश में दिखायी देने लगता है, इसीप्रकार माया से आवृत आत्मा मन्त्र के द्वारा दृष्टिगोचर होने लगता है ।

श्लोक ६२–

इति योगविधिः कृत्स्नः साङ्गः प्रोक्तो मयाधुना ।
गुरूपदेशतो ज्ञेयो नान्यथा शास्त्रकोटिभिः ।।

अन्वय–

इति मया साङ्गो कृत्स्नो योगविधिः प्रोक्तः ।

गुरूपदेशतो ज्ञेयो अन्यथा शास्त्रकोटिभिः न ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

इति = इस प्रकार, मया = मेरे द्वारा, साङ्गः = अंगो सहित, कृत्स्नः = सम्पूर्ण, योगविधिः = योग की विधि, प्रोक्तः = बतायी, गुरूपदेशतः = गुरु के उपदेश द्वारा, ज्ञेयः = जाना जा सकता है, अन्यथा= दूसरे किसी साधन से, शास्त्रकोटिभिः = करोड़ों शास्त्रों के द्वारा, न = नहीं ।

भावार्थ–

इस प्रकार मैंने अंगों सहित सम्पूर्ण योगविधि इस समय आपको बतलाया है । गुरु के उपदेश से ही यह योग जाना जा सकता है, इसके विपरीत करोड़ों शास्त्रों के द्वारा भी यह प्राप्त नहीं किया जा सकता।

षट्त्रिंशोऽध्यायः (छत्तीसवाँ अध्याय)

भगवती के द्वारा हिमालय को ज्ञानोपदेश - ब्रह्मस्वरूप का वर्णन

देव्युवाच

श्लोक १–

इत्यादियोगयुक्तात्मा ध्यायेन्मां ब्रह्मरूपिणीम् ।
भक्त्या निर्व्याजया राजन्नासने समुपस्थितः ।।

अन्वय–

राजन् इत्यादियोगयुक्तात्मा आसने समुपस्थितः निर्व्याजया भक्त्या मां ब्रह्मरूपिणीं ध्यायेत् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

राजन् = हे राजा, इत्यादियोगयुक्तात्मा = इस प्रकार योग से युक्त चित्त वाला साधक, आसने = आसन पर, समुपस्थितः = असान पर विराजमान होकर, निर्व्याजया = निष्कपट भाव से, भक्त्या = भक्ति से, माम् = मुझे, ब्रह्मरूपिणीम् = ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती को, ध्यायेत् = ध्यान करना चाहिए ।

भावार्थ–

हे राजन् ! इस प्रकार आसन करने वाले तथा विराजमान होकर योग से युक्त चित्त वाले साधक को निष्कपट भक्ति के साथ मुझ ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती का ध्यान करना चाहिए ।

श्लोक २–

आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत्पदम् ।
अत्रैतत्सर्वमर्पितमेजत्प्राणनिमिषच्च यत् ।।

अन्वय–

आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत्पदम् ।
अत्र यत् एतत् एजत्प्राणनिमिषच्च सर्वमर्पितम् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

आविः = प्रकाशस्वरूप, सन्निहितम् = सबके अत्यन्त समीप स्थित, गुहाचरम् = हृदय रूपी गुफा में विचरण करने वाला, नाम = नाम वाला, महत्पदम् = परम तत्त्व, अत्र = उसमें, यत् = जो कुछ, एतत् = यह, एजत्प्राणनिमिमिषत् = चेष्टा करने वाले, श्वास लेने वाले तथा नेत्र खोलने मूँदने वाले प्राणी, सर्वम् = वे सब, अर्पितम् = कल्पित हैं ।

भावार्थ–

जो प्रकाशस्वरूप, सबके अत्यन्त समीप स्थित, हृदय रूपी गुफा में स्थित होने के कारण गुहाचर नाम से प्रसिद्ध परम तत्त्व है; उसी में जिसे भी चेष्टायुक्त, श्वास लेने वाले तथा नेत्र खोलने मूँदने वाले प्राणी हैं— वे सब उस ब्रह्म में ही कल्पित हैं ।

श्लोक ३–

एतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ।
यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु न यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च।।

अन्वय–

यत् सदसद्वरेण्यं परं प्रजानां विज्ञानात् वरिष्ठम् यत् अर्चिमत् यत ।
अणुभ्योऽणु च यस्मिँलोका लोकिनश्च निहिता एतत् जानथ ।

पदच्छेद अर्थसहित–

यत् = जो (ब्रह्म), सत् = सत् कारणरूप माया, असत्कार्यरूप जगत् , वरेण्यम् = श्रेष्ठ, परम् = परे, प्रजानाम् = प्राणियों के, विज्ञानात् = ज्ञान से, वरिष्ठम् = सर्वोत्कृष्ट, अर्चिमत् = प्रकाशमान् , अणुभ्योऽणु = अणु से भी अणु, यानि सूक्ष्म, यस्मिन् = जिसमें, लोकाः = सभी लोक, लोकिनः = लोक में रहने वाले प्राणी, निहिताः = स्थित, एतत् = उसे, जानथ = जानिये ।

भावार्थ–

जो सत्कारणरूप माया तथा असत्कार्यरूप जगत् - इन दोनों की अपेक्षा श्रेष्ठ प्राणियों के ज्ञान से परे अर्थात् उनके ज्ञान का अविषय, सर्वोत्कृष्ट तथा सबको प्रकाशित करने वाला, सूक्ष्मतम है और जिसमें सभी लोक तथा उसमें रहने वाले प्राणी स्थित हैं - उस ब्रह्म को आप लोग जानिये ।

श्लोक ४–

तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः ।
तदेतत्सत्यममृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि ।।

अन्वय–

तदक्षरं ब्रह्म स प्राणः तत् वाङ्मनः ।

तत्सत्यममृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य एतद् विद्धि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ततः= वह, अक्षरम् = अक्षर, स = वह, प्राणः = प्राण, वाङ्मनः = वाणी और मन, सत्यम् = सत्य, अमृतम् = अमृत, वेद्धव्यम् = भेदने योग्य, सौम्य = हे सौम्य पर्वतराज, एतत् = इसे, विद्धि= भेदन करो ।

भावार्थ–

जो अक्षरब्रह्म है - वही सबका प्राण है, वही वाणी है, वही सबका मन है, वह परम सत्य तथा अमृतस्वरूप है । हे सौम्य (पर्वतराज) ! उस भेदन करने योग्य ब्रह्मस्वरूप लक्ष्य का भेदन करो ।

श्लोक ५–

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्धयीत ।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि ।।

अन्वय–

सौम्य औपनिषदं महास्त्रं धनुर्गृहीत्वा हि उपासानिशितं शरं सन्धयीत ।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा तदेव अक्षरं लक्ष्यं विद्धि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सौम्य = हे सौम्य, औपनिषदम् = उपनिषद रूपी, महास्त्रम् = महान् अस्त्र को, धनुः = धनुष को, गृहीत्वा = लेकर, उपासानिशितम् = उपासना द्वारा तीक्ष्ण किये गये, शरम् = बाण को, सन्धयीत = स्थापित करो, आयम्य = विषयों से विरक्त होकर, तद्भावगतेन = भगवद्भावभावित होकर, चेतसा = चित्त से, तदेव = उसी, अक्षरम् = अक्षर को, लक्ष्यम् = लक्ष्य को, विद्धि = भेदन करो ।

भावार्थ–

हे सौम्य ! उपनिषदरूपी महान् धनुष लेकर उस पर उपासना द्वारा तीक्ष्ण किये गये बाण को स्थापित करो और इसके बाद विषयों से विरक्त और भगवद्भावभावित चित्त के द्वारा उस बाण को खींचकर उस अक्षररूप ब्रह्म को लक्ष्य करके भेदन करो ।

श्लोक ६–

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।।

अन्वय–

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।

पदच्छद अर्थसहित–

प्रणवः = प्रणव, यानि ऊँकार, धनुः = धनुष, शरः = बाण, आत्मा = आत्मा, तत् = वह, लक्ष्यम्= लक्ष्य, उच्यते = कहा जाता है, अप्रमत्तेन = प्रमादरहित व्यक्ति के द्वारा, वेद्धव्यम् = भेदन करना चाहित, शरवत् = बाण के समान, तन्मयः = तन्मय, भवेत् = होना चाहिए ।

भावार्थ–

प्रणव धनुष, जीवात्मा बाण और ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है । प्रमादरहित होकर उसका भेदन करना चाहिए और बाण की भाँति उसमें तन्मय हो जाना चाहिए ।

श्लोक ७–

यस्मिन्द्यौश्च पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ।
तमेवैकं जानथात्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः ।।

अन्वय–

यस्मिन् द्यौः च पृथिवी च अन्तरिक्षं सर्वैः प्राणैः सह मनः श्रोतम् ।
तम् एव एकम् आत्मानं जानथ अन्या वाचो विमुञ्चथ एष अमृतस्य सेतुः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यस्मिन् = जिसमें, द्यौः = स्वर्ग, अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष, सर्वैः = सभी, प्राणैः = प्राण, सह = सहित, मनः = मन, ओतम् = ओत-प्रोत, तम् = उसे, एव = ही, एकम् = एक ही, आत्मानम् = आत्मा को, जानथ = जानो, अन्या = अन्य, वाचः = बातों को, विमुञ्चथ = छोड़ दो, एषः = यह, अमृतस्य = अमृत का, सेतुः = सेतु ।

भावार्थ–

जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सम्पूर्ण प्राणों के सहित मन ओतप्रोत है, उसी एकमात्र परब्रह्म को जानो और अन्य बातों का परित्याग कर दो; भवसागर से पार होने के लिए यही अमृत का सेतु है ।

श्लोक ८–

अरा इन रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः ।
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ।।

अन्वय–

रथनाभौ अरा इव यत्र नाड्यः ।
स एष बहुधा जायमान अन्तश्चरते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

रथनाभौ = रथ के चक्के में, अराः = अरे, इव = समान, यत्र = जहाँ, नाड्यः = नाडियाँ, स एष= वह ब्रह्म, बहुधा = त्रिविध रूपों में, जायमानः = प्रकट होने वाला, अन्तश्चरते = हृदय रूपी गुफा में विचरण करता है ।

भावार्थ–

रथ के चक्के में लगे अरों की भाँति जिस हृदय में शरीर की नाडियाँ एकत्र स्थित हैं । उसी हृदय में विविध रूपों में प्रकट होने वाला परब्रह्म निरन्तर संचरण करता है ।

श्लोक ९–

ओमित्येवं ध्यायथात्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ।
दिव्ये ब्रह्मपुरे व्योम्नि आत्मा सम्प्रतिष्ठितः ।

अन्वय–

पाराय ओमित्येवं आत्मानं ध्यायथ वः स्वस्ति ।
आत्मा तमसः परस्तात् दिव्ये ब्रह्मपुरे व्योम्नि सम्प्रतिष्ठितः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पाराय = भवसागर से पार होने के लिए, ओम् = ऊँ, इति = ऐसा, एवं = इस प्रकार, आत्मानं = आत्मा को, ध्यायथ = ध्यान करो, वः = आपका, स्वस्ति = कल्याण, तमसः = अन्धकार से, परस्तात् = परे, दिव्ये = दिव्य, ब्रह्मपुरे = ब्रह्मपुर में, व्योम्नि = हृदयाकाश में, सम्प्रतिष्ठितः = प्रतिष्ठित है ।

भावार्थ–

संसार समुद्र से पार होने के लिए 'ओम् ' इस प्रणवमन्त्र के जप से परमात्मा का ध्यान करो। आपका कल्याण हो । वह परमात्मा अन्धकार से परे ब्रह्मलोक रूप दिव्य आकाश (हृदय) में प्रतिष्ठित है ।

श्लोक १०–

मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय ।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ।।

अन्वय–

मनोमयः प्राणशरीरनेता हृदयं सन्निधाय अन्ने प्रतिष्ठितः ।
यद् आनन्दरूपममृतं विभाति तद् धीरा विज्ञानेन पश्यन्ति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मनोमयः = मनोमय, प्राणशरीरनेता = प्राण तथा शरीर का नियामक, हृदयम् = हृदय, सन्निधाय =

स्थित होकर, अन्ने = अन्नमय कोश यानि स्थूल शरीर में, प्रतिष्ठितः = प्रतिष्ठित, यत् = जो, आनन्दरूपम् = आनन्दस्वरूप, अमृतम् = अमृतमय, विभाति = प्रकाशित हो रहा है, तत् = उसे, धीराः = मनीषी जन, विज्ञानेन = विज्ञान (अपरोक्षानुभूति) के द्वारा, पश्यन्ति = देख लेते हैं ।

भावार्थ–

वह परब्रह्म मनोमय है और सबके प्राण तथा शरीर का नियमन करता है । वह समस्त प्राणियों के हृदय में निहित रहकर अन्नमय स्थूल शरीर में प्रतिष्ठित है । जो आनन्दमय तथा अमृतमय परमात्मा सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है, उसे विज्ञान (अपरोक्षानुभूति) के द्वारा बुद्धिमान् पुरुष भलीभाँति दृष्टिगत कर लेते हैं ।

श्लोक ११–

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।

अन्वय–

तस्मिन् परावरे दृष्टे हृदयग्रन्थिः भिद्यते ।
सर्वसंशयाः छिद्यन्ते कर्माणि च क्षीयन्ते ।

पदच्छेद अर्थसहित–

तस्मिन् = उस में, परावरे = कार्यकारण रूप परमात्मा में, दृष्टे = देख लेने पर, हृदयग्रन्थिः = हृदय की ग्रन्थि, भिद्यते = भेदन हो जाता है, सर्वसंशयाः = सभी संशय, छिद्यन्ते = निवृत्त हो जाते हैं, कर्माणि= कर्म, क्षीयन्ते = नष्ट हो जाते हैं ।

भावार्थ–

उस कारण कार्य रूप परमात्मा को देख लेने पर इस जीव के हृदय की ग्रन्थि का भेदन हो जाता है अर्थात् अनात्म पदार्थों में स्वरूपाध्यास समाप्त हो जाता है; सभी सन्देह दूर हो जाते हैं और सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं ।

श्लोक १२–

हिरण्मये परे कोशे विराजं ब्रह्म निष्कलम् ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ।।

अन्वय–

तत् निष्कलं ब्रह्म हिरण्मये परे कोशे विराजम् ।
यत् शुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः तद् आत्मविदो विदुः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत् = वह, निष्कल = व्यापक, हिरण्मये = स्वर्णमय, परे = अन्तिम, कोशे = कोश में, विराजम्= विराजमान, यत् = जो, शुभ्रम् = शुभ्र, ज्योतिषां ज्योतिः = प्रकाशित वस्तु का प्रकाशन, तत् = उसे, आत्मविदः = आत्मज्ञानी, विदुः = जानते हैं ।

भावार्थ–

वह निष्कल (व्यापक) ब्रह्म स्वर्णमय अन्तिम यानि आनन्दमय कोश में विराजमान है । वह शुभ्र तथा परम प्रकाशित वस्तुओं का भी प्रकाशक है । उसे आत्माज्ञानी पुरुष ही जान पाते हैं ।

श्लोक १३–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।

अन्वय–

तत्र सूर्यो न भाति चन्द्रतारकं न भाति इमा विद्युतो न भान्ति अयम् अग्निः कुतः ।
तं भान्तमेव सर्वं अनुभाति इदं सर्वं तस्य भासा विभाति ।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत्र = वहाँ, सूर्यः = सूर्य, न = नहीं, भाति = प्रकाशित होता है, चन्द्रतारकम् = चन्द्रमा, और तारे, इमा = ये, विद्युतः = बिजलियाँ, भान्ति = प्रकाशित होती हैं, अयम् = यह, अग्निः = आग, कुतः= कैसे, तम् = उसको, भान्तम् = प्रकाशित (ब्रह्म) को, एव = ही, सर्वम् = सब कुछ, अनुभाति = प्रकाशित होता है, इदम् = यह, तस्य = उसके, भासा = प्रकाश से, विभाति = आलोकित होता है।

भावार्थ–

वहाँ न तो सूर्य प्रकाश फैला सकता हैं, न चन्द्रमा और ताराओं का समुदाय । न ये बिजलियाँ ही वहाँ प्रकाशित हो सकती हैं; फिर यह लौकिक अग्नि कैसे प्रकाशित हो सकती है ? उसी के प्रकाशित होने पर सब प्रकाशित होते हैं । यह सम्पूर्ण जगत् उसी के प्रकाश से आलोकित होता है ।

श्लोक १४–

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वं वरिष्ठम् ।।

अन्वय–

इदं अमृतं ब्रह्म एव पुरस्तात् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतः च उत्तरेण अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं इदं विश्वं वरिष्ठं ब्रह्म एव ।

पदच्छेद अर्थसहित–

इदम् = यह, अमृतम् = अमृतमय, ब्रह्म = ब्रह्म, एव = ही, पुरस्तात् = आगे, पश्चात् =

पीछे, दक्षिणतः = दाहिनी ओर, उत्तरेण = बायीं ओर, अधः = नीचे, च = और, ऊर्ध्वम् = ऊपर, प्रसृतम् = फैला हुआ हे, इदम् = यह (ब्रह्म) विश्वम = जगत् में ओतप्रोत, वरिष्ठम् = सर्वश्रेष्ठ, ब्रह्म= ब्रह्म, एव = ही ।

भावार्थ–

यह अमृतस्वरूप ब्रह्म ही आगे है, यह ब्रह्म ही पीछे है और यह ब्रह्म ही दाहिनी तथा बायीं ओर स्थित है । यह ब्रह्म ही ऊपर तथा नीचे फैला हुआ है । यह समग्र जगत् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है ।

श्लो १५–

एतादृगनुभवो यस्य स कृतार्थो नरोत्तमः ।
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।।

अन्वय–

यस्य एतादृक् अनुभवः स नरोत्तम; कृतार्थः ।।
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यस्य = जिसका, एतादृक् = इस प्रकार, अनुभवः = अनुभव, सः = वह, नरोत्तमः = श्रेष्ठ, कृतार्थ= कृतार्थ, ब्रह्मभूतः = ब्रह्म को प्राप्त, प्रसन्नात्मा = प्रसन्नचित्त, न = नहीं, शोचति = शोक करता है, कांक्षति = इच्छा करता है ।

भावार्थ–

जिसका इसप्रकार का अनुभव है, वह श्रेष्ठ मनुष्य कृतार्थ है । ब्रह्म को प्राप्त पुरुष नित्य प्रसन्नचित्त रहता है, वह न शोक करता है ओर न किसी प्रकार की आकांक्षा रखता है ।

श्लोक १६–

द्वितीयाद्वै भयं राजंस्तदभावाद् बिभेति न ।
न तद्वियोगो मेऽप्यस्ति मद्वियोगोऽपि तस्य न ।।

अन्वय–

राजन् द्वितीयात् वै भयं तदभावाद् न बिभेति ।
मेऽपि तद्वियोगो न अस्ति तस्य मद्वियोगोऽपि न ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

राजन ! = हे राजा, द्वितीयात् = दूसरे से, भयम् = भय, तत् = वह , अभावात् = अभाव होने के कारण, न = नहीं, बिभेति = डरता है । में = मुझसे, अपि = भी, तत् , वियोगः = वियोग, न = नहीं, अस्ति = है, तस्य = उसका, मत् = मुझसे, वियोग, न= नहीं ।

भावार्थ–

हे राजन् ! भय दूसरे से हुआ करता है; द्वैतभाव न रहने पर (संसार से) भय नहीं होता । उस ज्ञानी से मेरा कभी वियोग नहीं होता और मुझसे उस ज्ञानी का कभी वियोग नहीं होता ।

श्लोक १७–

अहमेव स सोऽहं वै निश्चितं विद्धि पर्वत ।
मद्दर्शनं तु तत्र स्याद्यत्र ज्ञानी स्थितो मम ।।

अन्वय–

पर्वत निश्चितं विद्धि अहमेव स सोऽहम् ।
यत्र मम ज्ञानी स्थितः तत्र तु मद्दर्शनम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पर्वत = हे पर्वत, निश्चितम् = निश्चित, विद्धि = जानो, अहम् = मैं, एव = ही, सः = वह अर्थात् ज्ञानी, अहम् = मैं, यत्र = जहाँ, मम = मेरा, स्थितः = है, तत्र = वहाँ, मद्दर्शनम् (मतः + दर्शनम्)= मेरा दर्शन ।

भावार्थ–

हे पर्वत ! आप यह निश्चित जान लीजिये कि मैं ही वह हूँ और वही मेरा स्वरूप है । जिस किसी भी स्थान में ज्ञानी रहे, वहीं मेरा दर्शन होता रहता है ।

श्लोक १८–

नाहं तीर्थे न कैलासे वैकुण्ठे वा न कर्हिचित् ।
वसामि किं तु मज्ज्ञानिहृदयाम्भोजमध्यमे ।।

अन्वय–

अहं कर्हिचित् न तीर्थे न कैलासे न वा वैकुण्ठे (वसामि) किं तु मज्ज्ञानिहृदयाम्भोजमध्यमे वसामि ।

पदच्छेद अर्थसहित––

अहम् = मैं, कर्हिचित् = कभी भी, न = नहीं, तीर्थे = तीर्थ में, कैलासे = कैलास में, वा= अथवा, वैकुण्ठे = वैकुण्ठ में, किं तु = केवल, मत् = अपने, ज्ञानिहृदयाम्भोज = ज्ञानियों का हृदय रूपी कमल, मध्यमे = मध्य में, वसामि = रहती हूँ ।

भावार्थ–

मैं कभी भी न तीर्थ में, न कैलास में और न तो वैकुण्ठ में ही निवास करती हूँ । मैं अपने ज्ञानी भक्त के हृदय-कमल में निवास करती हूँ ।

श्लोक १९–

मत्पूजाकोटिफलदं सकृन्मज्ज्ञानिनोऽर्चनम् ।
कुलं पवित्रं तस्यास्ति जननी कृतकृत्यका ।।

अन्वय–

सकृन्मज्ज्ञानिनोऽर्चनम् मत्पूजाकोटिफलदम् ।
तस्य कुलं पवित्रं अस्ति जननी कृतकृत्यका ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सकृत् = एक बार, मज्ज्ञानिनः (मत् + ज्ञानिनः) मत् = मेरे, ज्ञानिनः = ज्ञानी का, अर्चनम् = पूजा, मत्पूजाकोटिफलदम् = मेरी करोड़ों पूजा के समान फल देने वाली, तस्य = उसका, कुलम् = कुल, पवित्रम् = पवित्र, अस्ति = है, जननी = माता, कृतकृत्यका = कृतकृत्य ।

भावार्थ–

मेरे ज्ञानपरायण भक्त की एक बार की गयी पूजा मेरी करोड़ों पूजाओं का फल प्रदान करती है । उसका कुल पवित्र है और उसकी जननी कृतकृत्य है ।

श्लोक २०–

विश्वम्भरा पुण्यवती चिल्लयो यस्य चेतसः ।
ब्रह्मज्ञानं तु यत्पृष्टं त्वया पर्वतसत्तम ।।

अन्वय–

यस्य चेतसः चिल्लयः विश्वम्भरा पुण्यवती ।
पर्वतसत्तम त्वया यद् ब्रह्मज्ञानं पृष्टम् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

यस्य = जिसका, चेतसः = चित्त, चिल्लय; = चित्स्वरूप ब्रह्म में लीन, विश्वम्भरा = पृथिवी, पुण्यवती = पुण्यशाली, पर्वतसत्तम = हे पर्वतराज, त्वया = आपके द्वारा, यद् = जो, ब्रह्मज्ञानम् = ब्रह्मज्ञान, पृष्टम् = पूछा गया ।

भावार्थ–

जिसका चित्त चित्स्वरूप ब्रह्म में लीन हो गया, पृथ्वी उसे धारण करके पुण्यवती हो गयी । हे पर्वतराज हिमालय ! आपने ब्रह्मज्ञान के विषय में जो जिज्ञासा की ।

श्लोक २१–

कथितं तन्मया सर्वं नातो वक्तव्यमस्ति हि ।
इदं ज्येष्ठाय पुत्राय भक्तियुक्ताय शीलिने ।।

अन्वय–

तत् सर्वं मया कथितं हि अतोः वक्तव्यं न अस्ति ।
इदं भक्तियुक्ताय शीलिने ज्येष्ठाय पुत्राय ।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत् = वह, सर्वम् = सब, मया = मेरे द्वारा, कथितम् = कहा गया, हि = क्योंकि, अतः = इसलिए, वक्तव्यम् = कहने योग्य, न = नहीं, अस्ति = है, इदम् = इसको, भक्तियुक्ताय = भक्तिसम्पन्न, शीलिने= शीलवान् , ज्येष्ठाय = ज्येष्ठ, पुत्राय = पुत्र को

भावार्थ–

वह सब मैंने बता दिया । अब इसके आगे बताने योग्य कुछ भी शेष नहीं है । इसे भक्तिसम्पन्न और शीलवान् ज्येष्ठ पुत्र को बताना चाहिए ।

श्लोक २२ - २३–

शिष्याय च यथोक्ताय वक्तव्यं नान्यथा क्वचित् ।
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।।

अन्वय–

यथोक्ताय शिष्याय च वक्तव्यं अन्यथा क्वचित् न
यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्य महात्मनः कथिता हि अर्थाः प्रकाशन्ते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यथा = इस प्रकार, उक्ताय = कहे गये, शिष्याय = शिष्य को, वक्तव्यम् = बनाना चाहिए, अन्यथा= इसके विपरीत, क्वचित् = किसी दूसरे को, न= नहीं, तस्य= उसके, महात्मनः= महात्मा के, एते= ये, कथिताः = बताये गये, अर्थाः = रहस्य, प्रकाशन्ते = प्रकाशित होते हैं ।

भावार्थ–

तथा इसी प्रकार के गुण वाले शिष्य को भी इसे बताना चाहिए, किसी दूसरे को इसे कभी प्रकाशित नहीं करना चाहिए । जिसकी परमदेव परमेश्वर में परम भक्ति है तथा जिस प्रकार परमेश्वर में है, उसी प्रकार गुरु में भी है, उस महात्मा पुरुष के हृदय में ही ये बताये हुए रहस्य प्रकाशित होते हैं ।

श्लोक २३ - २४–

येनोपदिष्टा विद्येयं स एव परमेश्वरः ।
यस्यायं सुकृतं कर्तुमसमर्थस्ततो ऋणी ।।
पित्रोरप्यधिकः प्रोक्तो ब्रह्मजन्मप्रदायकः।।

अन्वय–

येन इयं विद्या समुपदिष्टा स एव परमेश्वरः ।
यस्य सुकृतं कर्तुं अयम् असमर्थः ततो ऋणी।
ब्रह्मजन्मप्रदायकः पित्रोः अपि अधिकः प्रोक्तः

पदच्छेद अर्थसहित–

येन = जिसके द्वारा, इयम् = यह, विद्या = विद्या, समुपदिष्टा = उपदेश की गयी, सः = वह, एव= ही, परमेश्वरः = परमेश्वर, यस्य = जिसका, सुकृतम् = प्रत्युपकार, कर्तुम् = करने में, अयम् = यह मनुष्य, असमर्थः = असमर्थ, ततः = इसलिए, ऋणी = ऋणी, ब्रह्मजन्मप्रदायकः = ब्रह्म-तत्त्व का साक्षात्कार कराने वाला, पित्रोः = माता-पिता से, अपि = भी, अधिकः = श्रेष्ठ, प्रोक्तः = कहा गया है ।

भावार्थ–

जिसके द्वारा इस ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया जाता है, वह साक्षात् परमेश्वर ही है । उपदिष्ट विद्या का प्रत्युपकार करने में मनुष्य सर्वथा असमर्थ है, इसलिए वह गुरु का सदा ऋणी रहता है । ब्रह्म-तत्त्व का साक्षात्कार कराने वाला गुरु माता-पिता से श्रेष्ठ कहा गया है ।

श्लोक २५–

पितृजातं जन्म नष्टं नेत्थं जातं कदाचन ।
तस्मै न द्रुह्येदित्यादि निगमोऽप्यवदन्नग ।।

अन्वय–

पितृजातं जन्म नष्टं इत्थं जातं कदाचन न ।
नग तस्मै न द्रुह्येत् इत्यादि निगमः अपि अवदत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पितृजातम् = माता-पिता से उत्पन्न, जन्म = जन्म, नष्टम् = नष्ट हो जाता है, इत्थम् = इस प्रकार, जातम् = उत्पन्न, कदाचन = कभी, न= नहीं, नग = हे पर्वत, तस्मै = उनसे, यानि गुरु से, न= नहीं, द्रुह्येत् = डाह करे, निगमः = वेद, अपि = भी, अवदत् = कहा है ।

भावार्थ–

क्योंकि माता-पिता से प्राप्त जीवन तो नष्ट हो जाता है, किन्तु गुरु द्वारा प्राप्त ब्रह्म-जन्म कभी नष्ट नहीं होता । इसलिए हे पर्वत ! उन गुरु से कभी द्रोह नहीं करना चाहिए ।

श्लोक २६–

तस्माच्छास्त्रस्य सिद्धान्तो ब्रह्मदाता गुरुः परः ।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न शङ्करः ।।

अन्वय–

तस्मात् शास्त्रस्य सिद्धान्तः ब्रह्मदाता गुरुः परः ।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे शङ्करः न ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तस्मात् = अतः, शास्त्रस्य = शास्त्र का, सिद्धान्तः = सिद्धान्त, ब्रह्मदाता = ब्रह्म का ज्ञान देने वाला, गुरुः = गुरु, परः = सबसे श्रेष्ठ, शिवे रुष्टे = शिव के रूठने पर, गुरुः = गुरु, त्राता = रक्षक, गुरौ, रुष्टे = गुरु के रुष्ट होने पर, शङ्करः = शंकर, न = नहीं ।

भावार्थ–

अतः शास्त्रसिद्धान्त है कि ब्रह्मज्ञानदाता गुरु सबसे श्रेष्ठ होता है । हे पर्वत ! शिव के रुष्ट होने पर गुरु रक्षा कर सकते हैं, किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर शंकर भी रक्षा नहीं कर सकते ।

श्लोक २७–

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं तोषयेन्नग ।
कायेन मनसा वाचा सर्वदा तत्परो भवेत् ।।

अन्वय–

नग तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं तोषयेत् ।
कायेन मनसा वाचा सर्वदा तत्परो भवेत् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

नग = हे पर्वत, तस्मात् = इसलिए, सर्वप्रयत्नेन = पूर्ण प्रयत्न से, श्री गुरुं = गुरु को, तोषयेत् = सन्तुष्ट रखना चाहिए, कायेन = शरीर से, मनसा = मन से, वाचा = वाणी से, सर्वदा = सदैव, तत्परः = गुरुपरायण, भवेत् = होना चाहिए ।

भावार्थ–

अतः पूर्ण प्रयत्न से गुरु को सन्तुष्ट रखना चाहिए । तन-मन-वचन से सर्वदा गुरुपरायण रहना चाहिए ।

श्लोक २८–

अन्यथा तु कृतघ्नः स्यात्कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।
इन्द्रेणाथर्वणायोक्ता शिरश्छेदप्रतिज्ञया ।।

अन्वय–

अन्यथा तु कृतघ्नः स्यात् कृतघ्ने निष्कृतिः नास्ति ।
इन्द्रेण शिरश्छेदप्रतिज्ञया अथर्वणाय उक्ता ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अन्यथा = नहीं तो, कृतघ्नः = कृतघ्न, स्यात् = होता है, कृतघ्ने = कृतघ्न होने पर, निष्कृतिः = छुटकारा, न = नहीं, अस्ति = है, इन्द्रेण = इन्द्र के द्वारा, शिरश्छेदप्रतिज्ञया = सिर काट डालने की प्रतिज्ञा के साथ, अथर्वणाय = अथर्वण मुनि को, उक्ता = बतायी ।

भावार्थ–

अन्यथा कृतघ्न होना पड़ता है और कृतघ्न का उद्धार नहीं होता । पूर्व समय की बात है कि अथर्वण मुनि के द्वारा इन्द्र से ब्रह्मविद्या की याचना किये जाने पर इन्द्र ने अथर्वण मुनि को ब्रह्मविद्या इस शर्त पर बतायी कि किसी अन्य को बताने पर आपका सिर काट लूँगा ।

श्लोक २९–

अश्विभ्यां कथने तस्य शिरश्छिन्नं च वज्रिणा ।
अश्वीयं तच्छिरो नष्टं दृष्ट्वा वैद्यौ सुरोत्तमौ ।।
पुनः संयोजितं स्वीयं ताभ्यां मुनिशिरस्तदा ।।

अन्वय–

अश्विभ्यां कथने वज्रिणा तस्य शिरः छिन्नम् ।
तत् शिरः नष्टं दृष्ट्वा सुरोत्तमौ वैद्यौ ।
अश्वीयं पुनः संयोजितं तदा मुनिः ताभ्यां स्वीयं शिरः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अश्विभ्याम् = अश्विनीकुमारों के, कथने = बता देने पर, वज्रिणा = इन्द्र के द्वारा, तस्य = अथर्वण मुनि का, शिरः = सिर, छिन्नम् = काटा डाला गया, तत् = उसको, शिरः = सिर को, नष्टम् = नष्ट, दृष्ट्वा = देखकर, सुरोत्तमौ = सुरश्रेष्ठ, वैद्यौ = वैद्य, अश्वीयं = घोड़े का (सिर), पुनः = फिर, संयोजितम् = जोड़ दिया, तदा = तब, मुनिः = मुनि, ताभ्याम् = उन दोनों को, स्वीयम् = अपना।

भावार्थ–

अश्विनी कुमारों के याचना करने पर मुनि ने उन्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश कर दिया और इन्द्र ने मुनि का सिर काट लिया । तदनन्तर सुरश्रेष्ठ दोनों वैद्यों ने उनके सिर को कटा देखकर घोड़े का सिर मुनि पर पुनः जोड़ दिया ।

श्लोक ३०–

इति संकटसम्याद्या ब्रह्मविद्या नगाधिप ।
लब्धा येन स धन्यः स्यात्कृतकृत्यश्च भूधर ।।

अन्वय–

नगाधिप इति संकटसम्पाद्या ब्रह्मविद्या ।
येन तब्धा भूधर स धन्यः कृतकृत्यश्च स्यात् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नगाधिप = पर्वतराज, इति = इस प्रकार, संकटसम्पाद्या = कठिनाई से प्राप्त होने वाली, ब्रह्मविद्या= ब्रह्मविद्या, येन = जिसके द्वारा, लब्धा = प्राप्त की गयी, भूधर = पर्वत, सः = वह, धन्यः = धन्य, कृतकृत्यः = कृतार्थ, स्यात् = हो जाता है ।

भावार्थ–

हे भूधर ! ये पर्वतराज ! इस प्रकार बड़ी कठिनता से प्राप्त होने वाली ब्रह्मविद्या को जिसने प्राप्त कर लिया, वह धन्य तथा कृतकृत्य है ।

सप्तविंशोऽध्यायः (सैंतीसवाँ अध्याय)

हिमालय उवाच

श्लोक १–

स्वीयां भक्तिं वदस्वाम्ब येन ज्ञानं सुखेन हि ।
जायेत मनुजस्यास्य मध्यमस्याविरागिणः ।।

अन्वय–

अम्ब स्वीयां भक्तिं वदस्व येन अविरागिणः ।
मध्यमस्य मनुजस्य अस्य ज्ञानं सुखेन हि जायेत ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अम्ब = हे माता, स्वीयाम् = अपनी, भक्तिम् = भक्ति को, वदस्व = बताइये, येन = जिससे, अविरागिणः = अपरिपक्व वैराग्य वाले, मध्यमस्य = मध्यम, मनुजस्य = मनुष्य का, अस्य = इसका, यानि ब्रह्मविद्या का, ज्ञानम् = ज्ञान, सुखेन = सुगमतापूर्वक, जायेत = हो जाय ।

भावार्थ–

हिमालय बोले - हे माता ! आप मुझे अपनी वह भक्ति बताने की कृपा कीजिये, जिस भक्ति के द्वारा अपरिपक्व वैराग्य वाले मध्यम अधिकारी को भी इस ब्रह्म का ज्ञान सुगमतापूर्वक हो जाय ।

श्लोक २–

मार्गास्त्रयो मे विख्याता मोक्षप्राप्तौ नगाधिप ।
कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च सत्तम् ।।

अन्वय–

नगाधिपसत्तम मोक्षप्राप्तौ मे त्रयो मार्गा विख्याता: । कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च ।

पदच्छेद अर्थसहित–

नगाधिप = हे पर्वतराज, सत्तम = हे वरेण्य, मोक्षप्राप्तौ = मोक्ष की प्राप्ति में, मे= मेरे, त्रय: = तीन, मार्गा: = मार्ग, विख्याता: = प्रसिद्ध, कर्मयोग: = कर्मयोग, ज्ञानयोग: = ज्ञानयोग, भक्तियोग: = भक्तियोग, च = और ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! हे वरेण्य ! मोक्षप्राप्ति के साधनभूत कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग - ये मेरे तीन मार्ग प्रसिद्ध हैं ।

श्लोक ३–

त्रयाणामप्ययं योगय: कर्तुं शक्योऽस्ति सर्वथा ।
सुलभत्वान्मानसत्वात्कायचित्ताद्यपीडनात् ।।

अन्वय–

त्रयाणां अपि अयं योग्य: सुलभत्वात् मानसत्वात् ।
कायचित्तादि अपीडनात् सर्वथा कर्तुं शक्योऽस्ति ।

पदच्छेद अर्थसहित–

त्रयाणाम् = तीनों में अर्थात् ज्ञानयोग और भक्तियोग में, अपि= भी, अयम् = यह, यानि भक्तियोग, सुलभत्वात् = सुलभ होने, मानसत्वात् = मन से सम्पादित होने, कायचित्तादि = शरीर और चित्त आदि को, अपीडनात् = पीड़ा न पहुँचाने के कारण, सर्वथा = सब प्रकार से, कर्तुम् = करने को, शक्य: = संभव, अस्ति = है ।

भावार्थ–

इन तीनों में भी यह भक्तियोग सर्वथा सुलभ होने, मन से सम्पादित होने और शरीर तथा चित्त आदि को पीड़ा न पहुँचाने के कारण सरलतापूर्वक किया जा सकता है ।

श्लोक ४–

गुणभेदान्मनुष्याणां सा भक्तिस्त्रिविधा मता ।
परपीडां समुद्दिश्य दम्भं कृत्वा पुरस्सरम् ।
मात्सर्यक्रोधयुक्तो यस्तस्य भक्तिस्तु तामसी ।।

अन्वय–

मनुष्याणां गुणभेदान् सा भक्ति: त्रिविधा मता ।
परपीडां समुद्दिश्य दम्भं पुरस्सरं कृत्वा

मात्सर्यक्रोधयुक्तः यः तस्य भक्तिः तु तामसी ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मनुष्याणाम् = मनुष्यों के, गुणभेदात् = गुणभेद के अनुसार, सा= वह, भक्तिः = भक्ति, त्रिविधा = तीन प्रकार की, मता= मानी गयी है, परपीडाम् = दूसरों को पीड़ा, समुद्दिश्य = देने के उद्देश्य से, दम्भम् = दम्भ को, पुरस्सरम् = आगे, कृत्वा = करके, मात्सर्यक्रोधयुक्तः = डाह और क्रोध से युक्त होकर, यः = जो भक्त, तस्य = उसकी, भक्तिः = भक्ति, तामसी = तमोगुणी ।

भावार्थ–

मनुष्यों के गुणभेद के अनुसार वह भक्ति भी तीन प्रकार की कही गयी है । जो मनुष्य डाह तथा क्रोध से युक्त होकर दम्भपूर्वक दूसरों को सन्तप्त करने के उद्देश्य से भक्ति करता है, उसकी वह भक्ति तामसी होती है ।

श्लोक ५-६–

परपीडादिरहितः स्वकल्याणार्थमेव च ।
नित्यं सकामो हृदयं यशोऽर्थी भोगलोलुपः ।
तत्तत्फलसमावाप्त्यै मामुपास्तेऽतिभक्तितः ।।

अन्वय–

परपीडादिरहितः स्वकल्याणार्थं एव च ।
नित्यं सकामो हृदयं यशोऽर्थी भोगलोलुपः ।
तत्तत्फलसमावाप्तौ अतिभक्तितः मां उपासते ।

पदच्छेद अर्थसहित -

परपीडादिरहितः = परपीड़ा से रहित, स्वकल्याणार्थम् = अपने कल्याण के लिए, एव = ही, नित्यं= सदैव, सकामः = कामना वाला, यशोऽर्थी = यश चाहने वाला, भोगलोलुप = भोग का लोभी, तत्तत्= उस-उस, फलसमावाप्तत्यै = फल की प्राप्ति के लिए, अतिभक्तितः = अत्यन्त भक्तिपूर्वक, माम् = मुझको, उपासते = उपासना करता है ।

भावार्थ–

सर्वदा हृदय में कामनाएँ रखने वाला, यश चाहने वाला तथा भोग का लोलुप जो मनुष्य पर-पीडा से रहित होकर मात्र अपने ही कल्याण के लिए उन-उन फलों की प्राप्ति के लिए अत्यन्त भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करता है ।

श्लोक ७–

भेदबुद्ध्या तु मां स्वस्मादन्यां जानाति पामरः ।

तस्य भक्तिः समाख्याता नगाधिप तु राजसी ।।

अन्वय–

नगाधिप पामरः भेदबुद्ध्या तु मां स्वस्मात् अन्यां जानाति तस्य भक्तिः तु राजसी समाख्याता ।

पदच्छेद अर्थसहित–

नगाधिप = हे पर्वतराज, पामरः = मन्दमति, भेदबुद्ध्या = भेद-बुद्धि से, माम् = मुझको, स्वस्मात्= अपने से, अन्याम् = भिन्न, जानाति = जानता है, तस्य = उसकी, भक्तिः = भक्ति, राजसी = रजोगुणी, समाख्याता = कही गयी ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! वह मन्दमति भक्त भेद-बुद्धि के कारण मुझ भगवती को अपने से भिन्न मानता हे, उसकी भक्ति राजसी कही गयी है ।

श्लोक ८–

परमेशार्पणं कर्म पापसंक्षालनाय च ।
वेदोक्तत्वादवश्यं तत्कर्तव्यं तु मयानिशम् ।।

अन्वय–

पापसंक्षालनाय कर्म परमेशार्पणम् ।
वेदोक्तत्वात् मया अनिशं अवश्यं कर्तव्यम् ।।

पदच्छेद अर्थसिहत–

पापसंक्षालनाय = पाप धो डालने के लिए, कर्म = कर्त्तव्य कर्म, परमेशार्पणम् = परमेश्वर को अर्पित, वेदोक्तत्वात् = वेद द्वारा निर्दिष्ट होने के कारण, मया = मेरे द्वारा, अनिशम् = प्रतिदिन, अवश्यम्= आवश्यक रूप से, कर्त्तव्यम् = करना चाहिए ।

भावार्थ–

जो मनुष्य अपना पाप धो डालने के लिए अपना कर्म परमेश्वर को अर्पण कर देता है और वेद की आज्ञा के अनुसार मुझे प्रतिदिन वही वेदनिर्दिष्ट कर्म अवश्य करना चाहिए । -

श्लोक ९–

इति निश्चितबुद्धिस्तु भेदबुद्धिमाश्रितः ।
करोति प्रीतये कर्म भक्तिः सा नग सात्त्विकी ।।

अन्वय–

नग इति निश्चितबुद्धिः तु भेदबुद्धिं उपाश्रितः ।
प्रीतये कर्म करोति सा सात्त्विकी भक्तिः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नग+ हे पर्वत, इति = इस प्रकार, निश्चितबुद्धि = निश्चित बुद्धि वाला, भेदबुद्धिम् = भेद-बुद्धि को, उपाश्रित: = सहारा लेने वाला, प्रीतये = मेरी प्रीति के लिए, कर्म = कर्म, करोति = करता है, सा= वह, सात्त्विकी = सात्त्विक, भक्ति: = भक्ति ।

भावार्थ–

ऐसा मन में निश्चित करके सेव्य -सेवक की भेद-बुद्धि का आश्रय लेकर मेरी प्रसन्नता के लिए कर्म करता है, उस मनुष्य की वह भक्ति सात्त्विकी होती है ।

श्लोक १०–

परभक्तेः प्रापिकेयं भेदबुद्ध्यवलग्बनात् ।
पूर्वप्रोक्ते ह्युभे भक्ती न परप्रापिके मते ।।

अन्वय–

भेदबुद्ध्यबलम्बनात् इयं परभक्तेः प्रापिका ।
पूर्वप्रोक्ते हि उभे भक्ती परप्रापिके मते न ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

भेदबुद्ध्यवलम्बनात् = भेद-बुद्धि का सहारा लेने के कारण, इयम् = यह, यानि सात्त्विकी भक्ति, परभक्ते: = परा भक्ति की, प्रापिका = प्राप्ति कराने वाली, पूर्वप्रोक्ते = पूर्व में कही गयी, उभे = दोनों, भक्ती = भक्ति, परप्रापिके = परा भक्ति की प्राप्ति कराने वाली, मते = मानी गयी, न = नहीं ।

भावार्थ–

(सेव्य - सेवक की) भेद-बुद्धि का सहारा लेकर की गयी यह सात्त्विकी भक्ति पराभक्ति की प्राप्ति कराने वाली सिद्ध होती है । पूर्व में कही गयी तामसी और राजसी - दोनों भक्तियां पराभक्ति की प्राप्ति का साधन नहीं मानी गयी हैं ।

श्लोक ११–

अधुना परभक्तिं तु प्रोच्यमानां निबोध मे ।
मद्गुणश्रवणं नित्यं मम नामानुकीर्तनम् ।।

अन्वय–

अधुना मे परभक्तिं प्रोच्यमानां निबोध ।
नित्यं मद्गुणश्रवणं मम नामानुकीर्तनम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अधुना= अब, मे = मेरी, परभक्तिम् = परा भक्ति को, प्रोच्यमानाम् = वर्णन की जाने वाली को, निबोध= सुनिये, नित्यम् = नित्य, मद्गुणश्रवणम् = मेरे गुणों को सुनना, मम= मेरा, नामानुकीर्तनम्=

नाम का संकीर्तन ।

भावार्थ–

अब मैं परा भक्ति का वर्णन कर रही हूँ, आप उसे सुनिये - नित्य मेरे गुणों का श्रवण और मेरे नाम का संकीर्तन करना ।

श्लोक १२–

कल्याणगुणरत्नानामाकरायां मयि स्थिरम् ।
चेतसो वर्तनं चैव तैलधारासमं सदा।।

अन्वय–

कल्याणगुणरत्नानामाकरायां मयि सदा तैलधारासमं चेतसो स्थिरं वर्तनं चैव ।

पदच्छेद अर्थसहित–

कल्याणगुणरत्नानाम् = कल्याण एवं गुणस्वरूप रत्नों वाली में, आकरायाम् = भण्डार में, मयि = मुझमे, सदा = सदैव, तैलधारासमम् = तेल की धारा के समान, चेतस: = चित्त का, स्थिरम् = स्थिर, वर्तनम् = व्यवहार, च = और, एव = ही ।

भावार्थ–

कल्याण एवं गुणस्वरूप रत्नों की भण्डार मुझ भगवती में तैल धारा की भाँति अपना चित्र सर्वदा लगाये रखना ।

श्लोक १३–

हेतुस्तु तत्र को वापि न कदाचिद्भवेदपि ।
सापीप्यसार्ष्टिसायुज्यसालोक्यानां न चैष्णा ।।

अन्वय–

तत्र तु को वापि हेतुः कदाचित् अपि न भवेत् ।
सामीप्यसार्ष्टिसायुज्यसालोक्यानां च एषणा न ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत्र = वहाँ अर्थात् मेरी भक्ति में, क: अपि = कोई भी, हेतु= हेतु, कदाचित् = कभी, अपि = भी, न = नहीं, भवेत् = होना चाहिए, सामीप्यसार्ष्टिसायुज्यसालोक्यानाम् = सामीप्य, सार्ष्टि, सायुज्य और सालोक्य - इन चार प्रकार की मुक्तियों की, च = और, एषणा = इच्छा, न= नहीं ।

भावार्थ–

मेरी भक्ति में किसी प्रकार की हेतु की भावना कभी न होने देना तथा सामीप्य, सार्ष्टि, सायुज्य और सालोक्य - इन चार प्रकार की मुक्तियों की भी कामना न होना ।

श्लोक १४–

मत्सेवातोऽधिकं किञ्चिनैव जानाति कर्हिचित् ।
सेव्यसेवकताभावात्तत्र मोक्षं न वाञ्छति ।।

अन्वय–

मत्सेवातोऽधिकं किञ्चित् कर्हिचित् न एव जानाति ।
सेव्यसेवकताभावात् तत्र मोक्षं न वांछति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मत् = मेरी, सेवातः = सेवा से, अधिकम् = अधिक, किञ्चित् = कुछ भी, कर्हिचित् = कभी भी, न= नहीं, जानाति = जानता है, सेव्यसेवकताभावात् = सेव्य और सेवक का भाव होने से, तत्र = वहाँ, मोक्षम् = मोक्ष को, न= नहीं, वांछति = चाहता है ।

भावार्थ–

मेरी सेवा से बढ़कर किसी भी वस्तु को कभी श्रेष्ठ नहीं समझता तथा सेव्य-सेवक की उत्कृष्ट भावना के कारण मोक्ष की आकांक्षा नहीं रखता ।

श्लोक १५–

परानुरक्त्या मामेव चिन्तयेद्यो ह्यतन्द्रितः ।
स्वाभेदेनैव मां नित्यं जानाति न विभेदतः ।।

अन्वय–

हि अतन्द्रितः यः परानुरक्त्या मामेव चिन्तयेत् ।
स्वाभेदेनैव मां नित्यं जानाति विभेदतः न ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

हि = क्योंकि, अतन्द्रितः = सावधान, यः = जो, परानुरक्त्या = परम अनुरक्ति से, माम् = मुझे, एव= ही, चिन्तयेत् = ध्यान करता रहता है, स्वाभेदेनैव = (स्व+अभेदेन + एव) स्व= अपना, अभेदेन= भेदबुद्धि छोड़कर, एव = ही, माम् = मुझे, नित्यम् = नित्य, जानाति = जानता है, विभेदतः = भेद बुद्धि से, न = नहीं ।

भावार्थ–

परम भक्ति के साथ सावधान होकर जो मेरा ही ध्यान करता रहता है, मुझमें तथा अपने में भेद-बुद्धि छोड़कर अभेद बुद्धि रखते हुए मुझे नित्य जानता है।

श्लोक १६–

मद्रूपत्वेन जीवानां चिन्तनं कुरुते तु यः ।

यथा स्वस्यात्मनि प्रीतिस्तथैव च परात्मनि ।।

अन्वय–

यः मद्रूपत्वेन जीवानां तु चिन्तनं कुरुते ।
यथा स्वस्यात्मनि प्रीतिः तथैव च परात्मनि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यः= जो, मत् = मेरे, रूपत्वेन = रूप से, जीवानाम् = जीवों का, चिन्तनम् = चिन्तन, कुरुते = करता है, यथा = जैसे, स्वस्यात्मनि = अपने प्रति, प्रीतिः = प्रेम, तथैव = वैसे ही, परात्मनि = दूसरों में ।

भावार्थ–

सभी जीवों में मेरे ही रूप का चिन्तन करता है तथा जैसी प्रीति अपने में होती है, वैसी ही दूसरों में भी रखता है ।

श्लोक १७–

चैतन्यस्य समानत्वान्न भेदं कुरुते तु यः ।
सर्वत्र वर्तमानं सर्वरूपां च सर्वदा ।।

अन्वय–

यः चैतन्यस्य समानत्वात् भेदं तु न कुरुते ।
सर्वदा सर्वत्र च सर्वरूपां वर्तमानाम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यः = जो, चैतन्यस्य = चैतन्य के, समानत्वात् = समान होने के कारण, भेदम् = भेद, न = नहीं, कुरुते = करता है, सर्वदा = सदैव, सर्वत्र = सब जगह, सर्वरूपाम् = सभी रूपों में, वर्तमानम् = वर्तमान (मुझे)

भावार्थ–

चैतन्यस्वरूप परब्रह्म की समान रूप से सर्वत्र व्याप्ति समझकर किसी में भी भेद नहीं करता तथा सर्वत्र विद्यमान सभी प्राणियों में मुझ सर्वरूपिणी को देखता है ।

श्लोक १८–

नमते यजते चैवाप्याचाण्डालान्तमीश्वर ।
न कुत्रापि द्रोहबुद्धिं कुरुते भेदवर्जनात् ।।

अन्वय–

ईश्वर चाण्डालान्तमपि च नमते यजते ।

भेदवर्जनात् कुत्रापि द्रोहबुद्धिं न कुरुते ।

पदच्छेद अर्थसहित–

ईश्वर = हे राजन् , चाण्डालान्तम् = चाण्डाल तक, अपि = भी, च = और, नमते = नमस्कार करता है, यजते = पूजा करता है, भेदवर्जनात् = भेद का परित्याग करने के कारण, कुत्र = कहीं, अपि = भी, द्रोहबुद्धिम् = द्रोह की भावना, न= नहीं, कुरुते = करता है ।

भावार्थ–

हे राजन् ! मेरा भक्त चाण्डाल तक को भी नमस्कार करता है, उसकी पूजा करता है । साथ ही, भेद-भावना का सर्वथा परित्याग कर देने के कारण वह कहीं भी किसी से भी द्रोह नहीं करता ।

श्लोक १९–

मत्स्थानदर्शने श्रद्धा मद्भक्तदर्शने तथा ।
मच्छास्त्रश्रवणे श्रद्धा मन्त्रतन्त्रादिषु प्रभो ।

अन्वय–

प्रभो मत्स्थानदर्शने तथा मद्भक्तदर्शने श्रद्धा ।
मच्छास्त्रश्रवणे मन्त्रतन्त्रादिषु श्रद्धा ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

प्रभो= हे प्रभो, मत्स्थानदर्शने = मुझसे सम्बन्धित दर्शनीय स्थलों का दर्शन करने में, मद्भक्तदर्शने = मेरे भक्तों का दर्शन करने में, श्रद्धा = श्रद्धा, मत्छास्त्रश्रवणे = मेरा शास्त्र अर्थात् मुझसे सम्बन्धित ग्रन्थों के पठन-पाठन में श्रद्धा, मन्त्रतन्त्रादिषु = मन्त्र तन्त्र आदि में ।

भावार्थ–

हे प्रभो ! मेरा भक्त मुझसे सम्बन्धित दर्शनीय स्थलों का दर्शन करने तथा मेरे भक्तों का दर्शन करने में श्रद्धा रखता है । साथ ही, वह मुझसे सम्बन्धित शास्त्रों के श्रवण तथा मन्त्र - तन्त्र आदि में भी श्रद्धा रखता है ।

श्लोक २०–

मयि प्रोमाकुलमती रोमाञ्चिततनुः सदा ।
प्रेमाश्रुजलपूर्णाक्षः कण्ठगद्गदनिःस्वनः ।।

अन्वय–

सदा मयि प्रेमाकुलमती रोमाञ्चिततनुः ।
प्रेमाश्रुजलपूर्णाक्षः कण्ठगद्गद निःस्वनः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सदा = सदैव, मयि = मुझमें, प्रेमाकुलमती = प्रेम से आकुल चित्त वाला, रोमाञ्चिततनुः = मेरे चिन्तन से पुलकित शरीर वाला, प्रेमाश्रुजलपूर्णाक्षः = प्रेम के आँसुओं से परिपूर्ण नेत्रों वाला, कण्ठगद्गदनिःस्वनः= कण्ठ गद्गद होने से अवरुद्ध वाणी वाला ।

भावार्थ–

मेरा भक्त सदैव मेरे प्रेम में आकुल चित्त वाला होता है । मेरे निरन्तर चिन्तन से उसका शरीर पुलकित होता रहता है । प्रेम के आँसुओं से उसके नेत्र परिपूर्ण रहते हैं तथा कण्ठ गद्गद होने से उसकी वाणी अवरुद्ध रहती है ।

श्लोक २१–

अनन्येनैव भावेन पूजयेद्यो नगाधिप ।
मामीश्वरीं जगद्योनिं सर्वकारणकारणम् ।।

अन्वय–

नगाधिप यो अनन्येनैव भावेन मामीश्वरीं ।
जगद्योनिं सर्वकारणकारणं पूजयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नगाधिप = पर्वतराज, यः = जो, अनन्येन = अनन्य, एव = हि, भावेन = भाव से, माम् = मुझे, ईश्वरीम् = परमेश्वरी को, जगत् + योनिम् = जगत् को उत्पन्न करने वाली को, सर्वकारणकारणम् = सभी कारणों की कारण को, पूजयेत् = पूजा करता है ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! जो भक्त अनन्य भाव से जगत् को उत्पन्न करने वाली और सभी कारणों की कारण मुझ परमेश्वरी की आराधना करता है ।

श्लोक २२–

व्रतानि मम दिव्यानि नित्यनैमित्तिकान्यपि ।
नित्यं यः कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ।।

अन्वय–

यः वित्तशाठ्यविवर्जितः मम नित्यनैमित्तिकानि अपि ।
दिव्यानि व्रतानि नित्यं भक्त्या कुरुते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यः = जो, वित्तशाठ्यविवर्जितः = कृपणता न करने वाला, मम = मेरा, नित्यनैमित्तिकानि = नित्य और नैमित्तिक कर्मों को, अपि = भी, दिव्यानि = दिव्य, व्रतानि = व्रतों को, नित्यम् = नित्य,

भक्त्या= भक्तिपूर्वक, कुरुते = करता है ।

भावार्थ–

जो भक्त मेरे नित्य और नैमित्तिक सभी व्रतों को धन की कृपणता से रहित होकर भक्तिपूर्वक नित्य करता है ।

श्लोक २३–

मदुत्सवादिदृक्षा च मदुत्सववृतिस्तथा ।
जायते यस्य नियतं स्वभावादेव भूधर ।।

अन्वय–

भूधर यस्य स्वभावादेव मदुत्सवदिदृक्षा च ।
मदुत्सववृतिस्तथा नियतं जायते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

भूधर = हे पर्वत, यस्य = जिसकी, स्वभावादेन = स्वभाव से ही, मत् = मेरी, उत्सव = उत्सव, दिदृक्षा = देखने की इच्छा, च = और, मदुत्सवकृतिः = मेरे उत्सव का आयोजन, तथा = और, नियतम् = निश्चित रूप से, जायते = उत्पन्न होती है ।

भावार्थ–

जिसके मन में मेरे उत्सवों को करने और देखने की स्वाभाविक इच्छा होती है ।

श्लोक २४–

उच्चैर्गायंश्च नामानि ममैव खलु नृत्यति ।
अहङ्काररादिरहितो देहतादात्म्यवार्जितः ।।

अन्वय–

मम एव नामानि उच्चैर्गायंश्च खलु नृत्यति ।
अहङ्कारादिरहितो देहतादात्म्यवर्जितः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मम = मेरे, एव = ही, नामानि, नामों को, उच्चैः = ऊँचे स्वर से, गायन= गाता हुआ, खलु = निश्चय ही, नृत्यति = नृत्य करता है, अहङ्कारादि (अहंकार + आदि) = अहंकार आदि विकारों से, रहितः = रहित, देहतादात्म्यवर्जितः = देह-भावना से रहित ।

भावार्थ–

जो भक्त मात्र मेरे नामों को उच्च स्वर से कीर्तन करता हुआ भावावेश में आकर नृत्य करता है तथा जो देह-भावना से रहित होने के कारण अहंकार आदि विकारों से रहित है ।

श्लोक २५–

प्रारब्धेन यथा यच्च क्रियते तत्तथा भवेत् ।

न मे चिन्तास्ति तत्रापि देहसंरक्षणादिषु ।

अन्वय–

प्रारब्धेन यथा यच्च क्रियते तत्तथा भवेत् ।
तत्रापि देहसंरक्षणादिषु मे चिन्ता नास्ति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

प्रारब्धेन = प्रारब्ध के द्वारा, यथा = जैसा, यत् = जो, च = और, क्रियते = किया जाता है, तत् = वह, तथा = वैसा, भवेत् = हो, तत्र = यहाँ अर्थात् प्रारब्ध के विषय में, अपि = भी, देहसंरक्षणादिषु= देह आदि के संरक्षण में, मे = मेरी, चिन्ता = चिन्ता, न = नहीं, अस्ति = है ।

भावार्थ–

मेरा भक्त ऐसी भावना रखता है कि प्रारब्ध से जैसा विधान हुआ है वैसा ही हो । मुझे तो देह की रक्षा आदि विषयों में भी कोई चिन्ता नहीं करनी है, फिर अन्य बातों की चिन्ता क्या करना ।

श्लोक २६–

इति भक्तिस्तु या प्रोक्ता परभक्तिस्तु सा स्मृता ।
यस्यां देव्यतिरिक्तं तु न किञ्चिदपि भाव्यते ।।

अन्वय–

इति भक्तिस्तु या प्रोक्ता सा परभक्तिस्तु स्मृता ।
यस्यां देव्यतिरिक्तं तु किञ्चिदपि न भाव्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

इति = इस प्रकार, भक्तिः = भक्ति, या = जो, प्रोक्ता = कही गयी, सा = वह, परभक्तिः = परा भक्ति, स्मृता = विख्यात, यस्याम् = जिसमें, देव्यतिरिक्तम् (देवि + अतिरिक्तम्) = देवी के अतिरिक्त, किञ्चित् = कुछ, अपि = भी, न = नहीं, भाव्यते = भावना की जाती है ।

भावार्थ–

ऐसे पुरुषों की जो भक्ति कही गयी, वह परा भक्ति के नाम से विख्यात है, जिसमें देवी को छोड़कर अन्य किसी की भी भावना नहीं की जाती ।

श्लोक २७–

इत्थं जाता परा भक्तिर्यस्य भूधर तत्त्वतः ।
तदैव तस्य चिन्मात्रे मद्रूपे विलयो भवेत् ।।

अन्वय–

भूधर इत्थं यस्य तत्त्वतः परा भक्तिः जाता ।

तदा एव तस्य चिन्मात्रे मद्रूपे विलयो भवेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

भूधर = हे पर्वत, इत्थम् = इस प्रकार, यस्य = जिसकी, तत्त्वत: = तात्त्विक रूप से, परा भक्ति: = परा भक्ति, जाता = उत्पन्न होती है, तदा = तब, एव = ही, तस्य = उसका, चिन्मात्रे = चिन्मय में, मत् = मेरे, रूपे = रूप में, विलयो = लीन, भवेत् = हो जाता है ।

भावार्थ–

हे पर्वत ! जिस पुरुष में इस प्रकार की भक्ति जब तात्त्विक रूप से उत्पन्न हो जाती है, वह उसी क्षण मेरे चिन्मय रूप में विलीन हो जाता है ।

श्लोक २८–

भक्तेस्तु या पराकाष्ठा सैव ज्ञानं प्रकीर्तितम् ।
वैराग्यस्य च सीमा सा ज्ञाने तदुद्भवं यतः ।।

अन्वय–

भक्तेस्तु या पराक्राष्ठा सैव ज्ञानं प्रकीर्तितम् ।
सा च वैराग्यस्य सीमा यतः ज्ञाने तदुद्भयम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

भक्ते: = भक्ति की, या = जो, पराकाष्ठा = पराकाष्ठा, सा = वह, एव = ही, ज्ञानम् = ज्ञान, प्रकीर्तितम् = कहा गया है, सा = वह, च = और, वैराग्यस्य = वैराग्य की, सीमा = सीमा, यत:= क्योंकि, ज्ञाने = ज्ञान में, तत् = वह, उभयम् = दोनों ।

भावार्थ–

भक्ति की जो पराकाष्ठा है, उसी को ज्ञान कहा गया है और वही वैराग्य की सीमा भी है; क्योंकि ज्ञान प्राप्त हो जाने पर भक्ति और वैराग्य - ये दोनों ही स्वयं सिद्ध हो जाते हैं ।

श्लोक २९–

भक्तौ कृतायां यस्यापि प्रारब्धवशतो नग ।
न जायते मम ज्ञानं मणिद्वीपं स गच्छति ।।

अन्वय–

नग भक्तौ कृतायां प्रारब्धवशतो यस्यापि मम ।
ज्ञानं न जायते स मणिद्वीपं गच्छति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नग = हे पर्वत, भक्तौ कृतायाम् = भक्ति करने पर भी, प्रारब्धवशत: = प्रारब्धवश, यस्य = जिसका,

अपि = भी, मम = मेरा, ज्ञानम् = ज्ञान, न = नहीं, जायते = उत्पन्न होता है, सः = वह, मणिद्वीपम्= मणिद्वीप, गच्छति = जाता है ।

भावार्थ–

हे पर्वत ! भक्ति करने पर भी प्रारब्धवश यदि किसी भक्त को मेरा ज्ञान नहीं होता तो वह मेरे धाम 'मणिद्वीप' में जाता है ।

श्लोक ३०–

तत्र गत्वाखिलान्भोगाननिच्छन्नपि चर्च्छति ।
तदन्ते मम चिद्रूपज्ञानं सम्यग्भवेन्नग ।

अन्वय–

नग तत्र गत्वा अखिलान् भोगान् अनिच्छन् अपि च ऋच्छति । तदन्ते मम सम्यक् चिद्रूपज्ञानं भवेत्।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नग = हे पर्वत, तत्र = वहाँ, गत्वा = जाकर, अखिलान् = सभी, भोगान् = भोगों को, अनिच्छन्= न चाहते हुए, अपि = भी, च = और, ऋच्छति = प्राप्त करता है, तत् = वह, अन्ते = अन्त में, मम = मेरा, सम्यक् = सम्पूर्ण रूप से, चिद्रूपज्ञानम् = चिन्मय रूप का ज्ञान, भवेत् = हो जाता है।

भावार्थ–

हे पर्वत ! ऐसा मेरा भक्त मणिद्वीप में जाकर सब प्रकार के भोगों को न चाहते हुए भी प्राप्त करता है । वहाँ रहने पर अन्ततः उसे मेरे चिन्मय रूप का सम्यक् ज्ञान हो जाता है ।

श्लोक ३१ - ३२–

तेन मुक्तः सदैव स्याज्ज्ञानान्मुक्तिर्न चान्यथा ।
इहैव यस्य ज्ञानं स्याद् धृद्गतप्रत्यगात्मनः ।।
मम संवित्परतनोस्तस्य प्राणा व्रजन्ति न ।
ब्रह्मैव संस्तदाप्नोति ब्रह्मैव ब्रह्म वेद यः ।।

अन्वय–

तेन सदैव मुक्तः ज्ञानात् मुक्तिः स्यात् च अन्यथा न ।
इहैव यस्य मम ज्ञानं स्यात् हृद्ग तप्रत्यगात्मनः ।
संवित्परतनोः तस्य प्राणा न व्रजन्ति
यो ब्रह्मैव ब्रह्म वेद ब्रह्मैव संस्तदाप्नोति ।

पदच्छेद अर्थसहित–

तेन = ज्ञान के द्वारा, सदैव = सदा, मुक्तः = मुक्त, ज्ञानात् = ज्ञान से, स्यात् = होती है, इहैव =

इस संसार में ही, यस्य = जिसका, मम = मेरा, स्यात् = हो जाता है, हृद्गतप्रत्यगात्मनः = हृदय में स्थित प्रत्यगात्मा का, संवित्परतनोः = ज्ञानस्वरूप का, तस्य = उसका, प्राणाः = प्राण, न= नहीं, व्रजन्ति = उत्क्रमण करते हैं, यः = जो, ब्रह्मैव = ब्रह्म को ही, संस्तदाप्नोति = प्राप्त हो जाता है ।

भावार्थ–

उस ज्ञान के प्रभाव से वह सदा के लिए मुक्त हो जाता है, क्योंकि ज्ञान से ही मुक्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं है । इस लोक में जिस व्यक्ति को हृदय में स्थित प्रत्यगात्मा का स्वरूपावबोध हो जाता है, मेरे ज्ञानपरायण उस भक्त के प्राण उत्क्रमण नहीं करते अर्थात् इस शरीर में ही प्राणों का लय हो जाता है । जो मनुष्य ब्रह्म को जान लेता है, वह स्वयं ब्रह्म का ही रूप होकर उसी ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है ।

श्लोक ३३–

कण्ठचामीकरसममज्ञानात्तु तिरोहितम् ।
ज्ञानादज्ञाननाशेन लब्धमेव हि लभ्यते ।।

अन्वय–

अज्ञानात् तिरोहितं कण्ठचामीकरसमं तु ।
ज्ञानात् अज्ञाननाशेन लब्धमेव हि लभ्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अज्ञानात् = अज्ञान के कारण, तिरोहितम् = खोये हुए, कण्ठचामीकरसमम् = कण्ठ में स्थित सोने का हार, ज्ञानात् = ज्ञान होने से, अज्ञान का नाश होने से, लब्धम् = प्राप्त, एव = ही, लभ्यते = प्राप्त हो जाता है ।

भावार्थ–

जैसे कण्ठ में स्थित सोने का हार भ्रमवश खो गये के समान प्रतीत होता है, किन्तु भ्रम का नाश होते ही वह प्राप्त हो जाता है, जबकि वह पहले से ही प्राप्त था । वैसे ही ब्रह्म की प्राप्ति प्राप्त की ही प्राप्ति है ।

श्लोक ३४–

विदिताविदितादन्यन्नगोत्तम वपुर्मम ।
यथादर्शे तथात्मनि यथा जले तथा पितृलोके ।।

अन्वय–

नगोत्तम मम वपुः विदिताविदितात् अन्यत् ।
यथादर्शे तथा आत्मनि यथा जले तथा पितृलोके ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नगोत्तम = हे पर्वतश्रेष्ठ, मम = मेरा, वपुः = शरीर, विदिताविदितात् = ज्ञात और अज्ञात से, अन्यत्= दूसरा अर्थात् विलक्षण, यथा = जैसे, आदर्शे = दर्पण में, तथा = वैसे, आत्मनि = आत्मा में, जले = जल में, पितृलोके = पितृलोक में ।

भावार्थ–

हे पर्वतश्रेष्ठ ! मेरा स्वरूप ज्ञात और अज्ञात से विलक्षण है । जैसे दर्पण पर परछाहीं पड़ती है, वैसे ही इस शरीर में आत्मा की परछाहीं का अनुभव होता है । जैसे जल में प्रतिबिम्ब पड़ता है, वैसे ही पितृलोक में अनुभव होता है ।

श्लोक ३५–

छायातपौ यथा स्वच्छौ विविक्तौ तद्वदेव हि ।
मम लोके भवेज्ज्ञानं द्वैतभावविवर्जितम् ।।

अन्वय–

यथा छायातपौ स्वच्छौ विविक्तौ तद्वत् एव हि ।
मम लोके द्वैतभावविवर्जितं ज्ञानं भवेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यथा = जैसे, छायातपौ = छाया और प्रकाश, स्वच्छौ = स्वच्छ, विविक्तौ = भिन्न-भिन्न, तद्वत् = उसी प्रकार, एव = ही, मम = मेरा, लोके = लोक में, द्वैतभावविवर्जितम् = द्वैतभाव से रहित, ज्ञानम् = ज्ञान, भवेत् = होता है ।

भावार्थ–

जैसे छाया और प्रकाश स्पष्टतः भिन्न दीखते हैं, वैसे ही मेरे लोक में द्वैतभाव से रहित ज्ञान की प्राप्ति होती है ।

श्लोक ३६–

यस्तु वैराग्यवानेन ज्ञानहीनो म्रियेत् चेत् ।
ब्रह्मलोके वसेन्नित्यं यावत्कल्पं ततः परम् ।।

अन्वय–

यः वैराग्यवान् ज्ञानहीन एव चेत् म्रियेत् ।
यावत्कल्पं ब्रह्मलोके नित्यं वसेत् ततः परम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यः = जो, वैराग्यवान् = वैराग्ययुक्त, ज्ञानहीनः = ज्ञानरहित, एव = ही, चेत् = यदि, म्रियेत् = मर

जाता है, यावत्कल्पम् = कल्प पर्यन्त, ब्रह्मलोके = ब्रह्मलोक में, नित्यम् = निरन्तर, वसेत् = निवास करता है, ततः = उसके बाद, परम् = ज्ञान ।

भावार्थ–

वैराग्यवान् होने पर भी जो ज्ञान प्राप्त किये विना ही मर जाता है वह कल्पपर्यन्त ब्रह्मलोक में निवास करता है । तदुपरान्त उसे स्वतः ज्ञान हो जाता है । यह कैसे? अगले श्लोक में बताते हैं ।

श्लोक ३७–

शुचीनां श्रीमतां गेहे भवेत्तस्य जनिः पुनः ।
करोति साधनं पश्चात्ततो ज्ञानं हि जायते ।।

अन्वय–

शुचीनां श्रीमतां गेहे तस्य पुनः जनिः भवेत् ।
साधनं करोति ततः पश्चात् ज्ञानं हि जायते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

शुचीनाम् = पवित्र, श्रीमताम् = श्रीमान् पुरुषों के, गेहे = घर में, तस्य = उसका, पुनः = फिर, जनिः= जन्म, भवेत् = होता है, साधनम् = साधन, करोति = करता है, ततः = इससे, पश्चात् = बाद में, ज्ञानम् = ज्ञान, जायते = होता है ।

भावार्थ–

उसके बाद पवित्र श्रीमान् पुरुषों के घर में उसका जन्म होता है । वहाँ पर वह साधना करता है और फिर उसमें ज्ञान का उदय होता है ।

श्लोक ३८–

अनेकजन्मभी राजन् ज्ञानं स्यान्नैकजन्मना ।
ततः सर्वप्रयत्नेन ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत् ।।

अन्वय–

राजन् ज्ञानं नैकजन्मना स्यात् अनेकजन्मभी ।
ततः सर्वप्रयत्नेन ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

राजन् = हे राजन् ! ज्ञानम् = ज्ञान, नैकजन्मना = एक जन्म में नहीं, स्यात् = होता है, अनेकजन्मभी= अनेक जन्मों में सम्भव, ततः = इसलिए, सर्वप्रयत्नेन = पूर्ण प्रयत्न के साथ, ज्ञानार्थम् = ज्ञान की प्राप्ति के लिए, यत्नमाश्रयेत् (यत्नम् + आश्रयेत) यत्नम् = यत्न, आश्रयेत् = आश्रय लेना चाहिए।

भावार्थ–

हे राजन् ! एक जन्म में मनुष्य को ज्ञान नहीं होता, अपितु अनेक जन्मों में ज्ञान का आविर्भाव होता

है । अतः पूर्ण प्रयत्न के साथ ज्ञान की प्राप्ति के लिए उपाय का आश्रय लेना चाहिए ।

श्लोक ३९–

नोचेत् महान् विनाशः स्यात् पुनः एतत् जन्म दुर्लभम्।
तत्र अपि प्रथमे वर्णे वेदप्राप्तिः च दुर्लभा ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नोचेत् = नहीं तो, महान् = बड़ा, विनाशः = अनर्थ, स्यात् = होता है, पुनः = फिर, एतत् = यह, जन्म = मानव जन्म, दुर्लभम् = दुर्लभ, तत्र = वहाँ, अपि = भी, प्रथमे = प्रथम, वर्णे = वर्ण में, वेदप्राप्तिः = वेद की प्राप्ति, च = और, दुर्लभा = कठिन ।

भावार्थ -

अन्यथा बड़ा अनर्थ होता है । क्योंकि यह मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, उसमें भी ब्राह्मण वर्ण में और उसमें भी वेद-ज्ञान की प्राप्ति होना दुर्लभ है ।

श्लोक ४०–

शमादिषट्कसम्पत्तिर्योगसिद्धिस्तथैव च ।
तथोत्तमगुरुप्राप्तिः सर्वमेवात्र दुर्लभम् ।।

अन्वय–

शमदमादिषट्कसम्पत्तिः योगसिद्धिः तथैव च ।
तथा उत्तमगुरुप्राप्तिः सर्वम् एव अत्र दुर्लभम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

शमदमादिषट्कसम्पत्तिः = शम, दम आदि छः सम्पदाएँ, योगसिद्धिः = योगसिद्धि, तथा = और, उत्तमगुरुप्राप्तिः = उत्तम गुरु की प्राप्ति, सर्वम् = सब कुछ, एव = ही, अत्र = यहाँ, दुर्लभम् = दुर्लभ।

भावार्थ–

साथ ही शम, दम आदि छः सम्पदाएँ, योगसिद्धि तथा उत्तम गुरु की प्राप्ति - यह सब इस लोक में दुर्लभ है ।

श्लोक ४१–

तथेन्द्रियाणां पटुता संस्कृतत्वं तनोस्तथा ।
अनेकजन्मपुण्यैस्तु मोक्षेच्छा जायते ततः ।।

अन्वय–

तथा इन्द्रियाणां पटुता तथा तनोः संस्कृतत्वम् ।
अनेकजन्मपुण्यैः ततः मोक्षेच्छा जायते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तथा = और, इन्द्रियाणां पटुता = इन्द्रियों में सदा कार्य करने रहने की क्षमता, तनोः = शरीर का, संस्कृतत्वम् = संस्कारसम्पन्न रहना, अनेकजन्मपुण्यैः = अनेक जन्मों के पुण्य से, ततः = इसके बाद, मोक्षेच्छा = मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा, जायते = उत्पन्न होती है ।

भावार्थ–

अनेक जन्मों के पुण्यों से इन्द्रियों में सदा कार्य करते रहने की क्षमता, शरीर का संस्कार-सम्पन्न रहना तथा मोक्ष की अभिलाषा उत्पन्न होती है ।

श्लोक ४२–

साधने सफलेऽप्येवं जायमानेऽपि यो नरः ।
ज्ञानार्थं नैव यतते तस्य जन्म निरर्थकम् ।।

अन्वय–

एवं सफले साधने जायमानेऽपि यो नरः ।
ज्ञानार्थं नैव यतते तस्य जन्म निरर्थकम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

एवम् = इस प्रकार, सफले = सफल, साधने = साधन, जायमाने = होने पर, अपि = भी, यः= जो, नरः = मनुष्य, ज्ञानार्थम् = ज्ञान-प्राप्ति के लिए, न= नहीं, एव = ही, यतते = प्रयत्न करता है, तस्य = उसका, जन्म = जन्म, निरर्थकम् = व्यर्थ ।

भावार्थ–

जो मनुष्य इस प्रकार के सफल साधन से युक्त रहने पर भी ज्ञान के लिए प्रयत्न नहीं करता, उसका जन्म व्यर्थ है ।

श्लोक ४३–

तस्माद्राजन् यथाशक्त्या ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत् ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ।।

अन्वय–

तस्मात् राजन् यथाशक्त्या ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत् ।
पदे पदे अश्वमेधस्य फलं निश्चितं आप्नोति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तस्मात् = इसलिए, राजन् = हे राजन् , यथाशक्त्या = शक्ति के अनुसार, यत्नम् = प्रयत्न, आश्रयेत्= आश्रय लेना चाहिए, पदे पदे = प्रत्येक पद पर, अश्वमेधस्य = अश्वमेध का, फलम् =

फल, निश्चितम् = निश्चित रूप से, आप्नोति = प्राप्त करता है ।

भावार्थ–

अतएव हे राजन् ! मनुष्य को यथाशक्ति ज्ञानप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । उससे मनुष्य एक एक पद पर अश्वमेध यज्ञ का फल निश्चित रूप से प्राप्त करता है ।

श्लोक ४४–

घृतमिव पयसि निगूढं भूते भूते च वसति विज्ञानम्।
सततं मन्थयितव्यं मनसा मन्थानभूतेन ।।

अन्वय–

पयसि निगूढं घृतमिव भूते भूते च विज्ञानं वसति ।
मन्थानभूतेन मनसा सततं मन्थयितव्यम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पयसि = दूध में, निगूढम् = छिपे हुए, घृतमिव = घी के समान , भूते भूते = प्रत्येक प्राणी में, विज्ञानम् = विज्ञान, वसति = रहता है, मन्थानभूतेन = मथानी से, मनसा = मन से, सततम् = निरन्तर, मन्थयितव्यम् = मथना चाहिए ।

भावार्थ–

दूध में छिपे हुए घृत की भाँति प्रत्येक प्राणी में विज्ञान छिपा रहता रहता है । उसे मन रूपी मथानी से निरन्तर मथते रहना चाहिए ।

श्लोक ४५–

ज्ञानं लब्ध्वा कृतार्थः स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ।
सर्वमुक्तं समासेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।

अन्वय–

ज्ञानं लब्ध्वा कृतार्थः स्यात् इति वेदान्तडिण्डिमः ।
समासेन सर्वमुक्तं भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ज्ञानम् = ज्ञान को, लब्ध्वा = प्राप्त करके, कृतार्थः = कृतार्थ, स्यात् = होना चाहिए, इति = इस प्रकार, वेदान्तडिण्डिमः = वेदान्त का डिंडिमघोष, समासेन = संक्षेप में, सर्वम् = सब कुछ, उक्तम्= कह दिया, भूयः = फिर, किम् = क्या, श्रोतुमिच्छसि (श्रोतुम् + इच्छसि) = सुनना चाहते हो ।

भावार्थ–

इस प्रकार उस विज्ञान को प्राप्त करके कृतार्थ हो जाना चाहिए - ऐसा वेदान्त का डिंडिमषोघ

है । हे पर्वतराज हिमालय ! मैंने आपको सब कुछ संक्षेप में बता दिया, अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं ?

अष्टत्रिंशोऽध्यायः (अड़तीसवाँ अध्याय)

हिमालय उवाच

श्लोक १–

कति स्थानानि देवेशि द्रष्टव्यानि महीतले ।
मुख्यानि च पवित्राणि देवीप्रियतमानि च ।।

अन्वय–

देवेशि महीतले कति मुख्यानि च पवित्राणि द्रष्टव्यानि देवीप्रियतमानि च स्थानानि ।।

पदच्छेद अर्थसहित -

देवेशि = हे देवेश्वरि, महीतले = पृथ्वी तल पर, कति = कितने, मुख्यानि = मुख्य, च = और, पवित्राणि,, पवित्र, द्रष्टव्यानि = द्रष्टव्य, देवीप्रियतमानि = भगवती के लिए अत्यन्त प्रिय, स्थानानि= स्थान ।

भावार्थ–

हे देवेश्वरि ! इस पृथ्वीतल पर कौन - कौन से पवित्र, मुख्य, दर्शनीय तथा आप भगवती के लिए अत्यन्त प्रिय स्थान हैं ?

श्लोक २–

व्रतान्यपि तथा यानि तुष्टिदान्युत्सवा अपि ।
तत्सर्वं वद में मात कृतकृत्यो यतो नरः ।।

अन्वय–

मातः यानि व्रतान्यपि तथा तुष्टिदान्युत्सवा अपि तत्सर्वं मे वद यतो नरः कृतकृत्यः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

हे माता ! आपको सन्तुष्ट करने वाले जो जो व्रत तथा उत्सव हों, उन सबको भी मुझे बताइये, जिससे मुझ जैसा प्राणी कृतकृत्य हो जाये ।

देव्युवाच

श्लोक ३–

सर्वं दृश्यं मम स्थानं सर्वे काला व्रतात्मकाः ।
उत्सवाः सर्वकालेषु यतोऽहं सर्वरूपिणी ।।

अन्वय–

सर्वं दृश्यं मम स्थानं सर्वे काला व्रतात्मकाः ।
उत्सवाः सर्वकालेषु यतोऽहं सर्वरूपिणी ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सर्वम् = सब कुछ, दृश्यम् = दृश्यमान जगत् , मम = मेरा, स्थानम् = स्थान, सर्वे = सब, कालाः= समय, व्रतात्मकाः = व्रत योग्य, उत्सवा; = उत्सव, सर्वकालेषु = सब काल में, यतः = क्योंकि, अहम् = मैं, सर्वरूपिणी = सब रूपों वाली ।

भावार्थ–

दृष्टिगोचर होने वाले सभी स्थान मेरे अपने हैं, सभी काल व्रतयोग्य हैं तथा सभी समयों में मेरे उत्सव मनाये जा सकते हैं, क्योंकि मैं सब रूपों वाली हूँ ।

श्लोक ४–

तथापि भक्तवात्सल्यात्किञ्चिकिञ्चिद्यथोच्यते ।
श्रुणुष्णावहितो भूत्वा नगराज वचो मम ।।

अन्वय–

नागराज तथापि भक्तवात्सल्यात् किञ्चित् किञ्चित् अथ उच्यते । अवहितो भूत्वा मम वचः श्रुणु ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नागराज = पर्वतराज, तथापि = फिर भी, भक्तवात्सल्यात् = भक्तवात्सल्य के कारण, किञ्चित् किञ्चित्= कुछ कुछ, अथ = अथ मंगलसूचक अव्यय है, उच्यते = बताया जा रहा है, अवहितः = सावधान, भूत्वा = होकर, मम = मेरा, वचः = वचन, शृणु = सुनिये ।

भावार्थ–

फिर भी हे पर्वतराज ! भक्तवात्सल्य के कारण मैं कतिपय स्थानों को बता रही हूँ । आप सावधान होकर मेरा वचन सुनिये ।

श्लोक ५–

कोलापुर महास्थानं यत्र लक्ष्मीः सदा स्थिता ।
मातुःपुरं द्वितीयं च रेणुकाधिष्ठितं परम् ।।

अन्वय–

कोलापुरं महास्थानं यत्र लक्ष्मीः सदा स्थिता ।
मातुःपुरं च द्वितीयं परं यत्र रेणुकाधिष्ठितम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

कोलापुरम् = कोलापुर, महास्थानम् = श्रेष्ठ स्थान, यत्र = जहाँ, लक्ष्मी: = लक्ष्मी, सदा = सदैव, स्थिता = स्थित, मातु:पुरम् = मातृपुर, च = और, द्वितीयम् = दूसरा, परम् = श्रेष्ठ, यत्र = जहाँ, रेणुकाधिष्ठितम् = रेणुका जहाँ विराजित हैं ।

भावार्थ–

कोलापुर एक अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान है, जहाँ लक्ष्मी सदा निवास करती है । मातृपुर दूसरा परम स्थान है, जहाँ भगवती रेणुका विराजमान है ।

श्लोक ६–

तुलजापुरं तृतीयं स्यात्सप्तशृङ्गं तथैव च ।
हिङ्गुलाया महास्थानं ज्वालामुख्यास्तथैव च ।।

अन्वय–

तुलजापुरं तृतीयं स्यात् तथैव सप्तशृङ्गं च ।
हिङ्गुलाया महास्थानं तथैव ज्वालामुख्याः च ।

पदच्छेद अर्थसहित–

तुलापुरम् = तुलजापुर नामक देवी का स्थान, तृतीयम् = तीसरा, स्यात् तथैव = उसी प्रकार, सप्तशृङ्गम् = सप्तशृंग, च = और, हिङ्गुलाया = हिंगलाज या हिंगुला नामक देवी का स्थान, महास्थानम् = महान् स्थान, ज्वालामुख्य: = ज्वालामुखी आदि स्थान ।

भावार्थ–

तीसरा स्थान तुलजापुर है । इसी प्रकार सप्तशृंग भी एक स्थान है । हिंगलाज और ज्वालामुखी - ये देवी के बड़े स्थान हैं ।

श्लोक ७–

शाकम्भर्याः परं स्थानं भ्रामर्याः स्थानमुत्तमम् ।
श्रीरक्तदन्तिकास्थानं दुर्गास्थानं तथैव च ।।

अन्वय–

शाकम्भर्याः परं स्थानं भ्रामर्याः स्थानमुत्तमम् ।
तथैव रक्तदन्तिकास्थानं दुर्गास्थानं च ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

शाकम्भर्या: = शाकम्भरी देवी का, परम् = श्रेष्ठ, स्थानम् = स्थान, भ्रामर्या: = भ्रामरी देवी का, स्थानम् = स्थान, उत्तमम् = उत्तम, तथैव = उसी प्रकार, रक्तदन्तिकास्थानम् = रक्तदन्तिका देवी का स्थान, च = और, दुर्गास्थानम् = दुर्गा देवी का स्थान ।

भावार्थ–

शाकम्भरी देवी का स्थान श्रेष्ठ है । भ्रामरी देवी का स्थान भी उत्तम है । इसी प्रकार श्रीरक्तदन्तिका देवी और श्रीदुर्गा देवी के स्थान भी उत्कृष्ट हैं । देवियों के उत्तम स्थान इन्हीं के नामों से प्रसिद्ध हैं ।

श्लोक ८–

विन्ध्याचलनिवासिन्याः स्थानं सर्वोत्तमोत्तमम् ।
अन्नपूर्णामहास्थानं काञ्चीपुरमनुत्तमम् ।।

अन्वय–

विन्ध्याचलनिवासिन्या स्थानं सर्वोत्तमोत्तमम् ।
अन्नपूर्णामहास्थानं काञ्चीपुरमनुत्तमम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

विन्ध्याचलनिवासिन्याः = विन्ध्याचल नामक स्थान में निवास करने वाली देवी का, स्थानम् = स्थान, सर्वोत्तम + उत्तमम् = सर्वोत्कृष्ट, अन्नपूर्णामहास्थानम् = देवी अन्नपूर्णा का श्रेष्ठ स्थान, काञ्चीपुरम् + अनुत्तमम् = श्रेष्ठ काञ्चीपुर ।

भावार्थ–

भगवती विन्ध्यवासिनी का स्थान विन्ध्याचल सर्वोत्कृष्ट है । देवी अन्नपूर्णा का परम स्थान श्रेष्ठ काञ्चीपुर है ।

श्लोक ९–

भीमादेव्या परं स्थान विमलास्थानमेव च ।
श्रीचन्द्रलामहास्थानं कौशिकीस्थानमेव च ।।

अन्वय–

भीमादेव्या स्थानं परं विमलास्थानं च एव ।
श्रीचन्द्रलामहास्थानं कौशिकीस्थानमेव च ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

भीमादेव्याः = भीमा देवी का, स्थानम् = स्थान, परम् = श्रेष्ठ, विमलास्थानम् = विमला देवी का स्थान, च = और, एव = ही, श्रीचन्द्रलामहास्थानम् = श्रीचन्द्रला देवी का महास्थान, कौशिकीस्थानमेव= कौशिकी देवी का स्थान ।

भावार्थ–

भीमा देवी का स्थान श्रेष्ठ है । विमला देवी का स्थान भी उत्कृष्ट है । श्रीचन्द्रला देवी का और

कौशिकी देवी का महास्थान अति प्रसिद्ध हैं ।

श्लोक १०–

नीलाम्बायाः परं स्थानं नीलपर्वतमस्तके ।
जाम्बूनदेश्वरीस्थानं तथा श्रीनगरम् शुभम् ।।

अन्वय–

नीलपर्वतमस्तके नीलाम्बयाः परं स्थानम् ।
तथा जाम्बूनदेश्वरीस्थानं शुभं श्रीनगरम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नीलपर्वतमस्तके = नील पर्वत के शिखर पर, नीलाम्बायाः = भगवती नीलाम्बा का, परम् = श्रेष्ठ, स्थानम् = स्थान, तथा = और, जाम्बूनदेश्वरीस्थानम् = जाम्बूनदेश्वरी का स्थान, शुभम् = पवित्र, श्रीनगरम् = श्रीनगर ।

भावार्थ–

नीलपर्वत के शिखर पर नीलाम्बा देवी का श्रेष्ठ स्थान है । देवी जाम्बूनदेश्वरी का स्थान पवित्र श्रीनगर है ।

श्लोक ११–

गुह्यकाल्या महास्थानं नेपाले यत्प्रतिष्ठितम् ।
मीनाक्ष्याः परमं स्थानं यच्च प्रोक्तं चिदम्बरे ।।

अन्वय–

गुह्यकाल्या महास्थानं यत् नेपाले प्रतिष्ठितम् ।
मीनाक्ष्याः परमं स्थानं च यत् चिदम्बरे प्रोक्तम्।।

पदच्छेद अर्थसहित–

गुह्यकाल्याः = गुह्यकाली का, महास्थानम् = महान् स्थान, यत् = जो, नेपाले = नेपाल में, प्रतिष्ठितम्= प्रतिष्ठित, मीनाक्ष्याः = मीनाक्षी देवी का, परमम् = श्रेष्ठ, स्थानम् = स्थान, चिदम्बरे= चिदम्बर में, प्रोक्तम् = बताया गया ।

भावार्थ–

भगवती गुह्यकाली का महान् स्थान नेपाल में हैं । मीनाक्षी देवी का श्रेष्ठ स्थान चिदम्बर में स्थित बताया गया है ।

श्लोक १२–

वेदारण्यं महास्थानं सुन्दर्याः समधिष्ठितम् ।

एकाम्बरं महास्थानं परशक्त्या प्रतिष्ठितम् ।।

अन्वय–

सुन्दर्याः महास्थानं वेदारण्यं समधिष्ठितम् ।
परशक्त्या महास्थानं एकाम्बरं प्रतिष्ठितम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सुन्दर्याः = भगवती सुन्दरी का, महास्थानम् = महान् स्थान, वेदारण्यम् = वेदारण्य, समधिष्ठितम् = अधिष्ठित, परशक्त्या = देवी परा शक्ति का, महास्थानम् = श्रेष्ठ स्थान, एकाम्बरम् = एकाम्बर, प्रतिष्ठितम् = स्थित ।

भावार्थ–

भगवती सुन्दरी का महान् स्थान वेदारण्य में स्थित है । देवी परा शक्ति का श्रेष्ठ स्थान एकाम्बर में स्थित है ।

श्लोक १३–

महालसा परं स्थानं योगेश्वर्यास्तथैव च ।
तथा नीलसरस्वत्याः स्थानं चीनेषु विश्रुतम् ।।

अन्वय–

महालसा योगेश्वर्याश्च परं स्थानं तथैव ।
तथा नीलसरस्वत्याः स्थानं चीनेषु विश्रुतम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

महालसा = देवी महालसा के, योगेश्वर्याः = योगेश्वरी के, च = और, परम् = श्रेष्ठ, स्थानम् = स्थान, तथैव = इसी प्रकार, तथा = और, नीलसरस्वत्याः = नीलसरस्वती का, स्थानम् = स्थान, चीनेषु= चीन देश में, विश्रुतम् = प्रसिद्ध है ।

भावार्थ–

भगवती महालसा और इसी प्रकार देवी योगेश्वरी के महान् स्थान इन्हीं के नामों से विख्यात हैं । भगवती नीलसरस्वती का स्थान चीन देश में प्रसिद्ध है ।

श्लोक १४–

वैद्यनाथे तु बगलास्थानं सर्वोत्तमं मतम् ।
श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वर्या मणिद्वीपं मम स्मृतम् ।।

अन्वय–

वैद्यनाथे तु बगलास्थानं सर्वोत्तमं मतम् ।

श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वर्या मणिद्वीपं स्मृतम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

वैद्यनाथे = वैद्यनाथ में, बगलास्थानम् = देवी बगला का स्थान, सर्वोत्तम = सर्वोत्तम, मतम् = बताया गया है, मम = मेरी, श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वरर्या: = श्रीमत् = श्रीभुवनेश्वरी का (स्थान) मणिद्वीपम् = मणिद्वीप, स्मृतम् = कहा गया है ।

भावार्थ–

भगवती बगला का सर्वोत्तम स्थान वैद्यनाथ धाम में स्थित माना गया है । मुझ श्रीमत् - श्रीभुवनेश्वरी का स्थान मणिद्वीप बताया गया है ।

श्लोक १५–

श्रीमत्त्रिपुरभैरव्या: कामाख्यायोनिमण्डलम् ।
भूमण्डले क्षेत्ररत्नं महामायाधिवासितम् ।।

अन्वय–

श्रीमत्त्रिपुरभैव्या: (स्थानं) कामाख्यायोनिमण्डलम् ।
भूमण्डले क्षेत्ररत्नं महामायाधिवासितम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

श्रीमत्+त्रिपुरभैरव्या: = श्रीमत्त्रिपुर भैरवी देवी का (स्थान), कामाख्यायोनिमण्डलम् = कामाख्यायोनिमण्डल, भूमण्डले = भूमण्डल पर, क्षेत्ररत्नम् = क्षेत्र का रत्नस्वरूप, महामायाधिवासितम् = महामाया द्वारा अधिवासित ।

भावार्थ–

श्रीमत्त्रिपुरभैरवी देवी का स्थान कामाख्या - योनिमण्डल है । यह भूमण्डल पर क्षेत्र का रत्नस्वरूप है तथा महामाया द्वारा अधिवासित क्षेत्र है ।

श्लोक १६–

नात: परतरं स्थानं क्वचिदस्ति धरातले ।
प्रतिमासं भवेद्देवी यत्र साक्षाद्रजस्वला ।।

अन्वय–

धरातले अत: परतरं स्थानं क्वचिद् न अस्ति ।
यत्र देवी प्रतिमासं साक्षात् रजस्वला भवति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

धरातले = पृथ्वी पर, अत: = इससे, परतरम् = बढ़कर, स्थानम् = स्थान, क्वचित् = कहीं भी, न=

नहीं, अस्ति = है, यत्र = जहाँ, देवी = भगवती, प्रतिमासम् = प्रत्येक माह में, साक्षात् = प्रत्यक्षतः, रजस्वला = रजस्वला, भवति = होती है ।

भावार्थ–

पृथ्वी पर इससे बढ़कर कोई स्थान नहीं है । यहाँ भगवती प्रत्येक माह में साक्षात् रजस्वला हुआ करती है ।

श्लोक १७–

तत्रत्या देवताः सर्वाः पर्वतात्मकतां गताः ।
पर्वतेषु वसन्त्येव महत्यो देवता अपि ।।

अन्वय–

तत्रत्याः सर्वा देवताः पर्वतात्मकतां गताः ।
पर्वतेषु महत्यो देवता अपि वसन्त्येव ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत्रत्याः = वहाँ के, सर्वाः = सभी, देवताः = देवता, पर्वतात्मकताम् = पर्वतात्मकता को, गताः = प्राप्त हो जाते हैं, पर्वतेषु = पर्वतों पर, महत्यः = महान् , देवता = देवता, अपि = भी, वसन्ति = वसते हैं, एव = भी ।

भावार्थ–

उस समय वहाँ के सभी देवता पर्वतस्वरूप हो जाते हैं और अन्य महान् देवता भी वहाँ पर्वतों पर निवास करते हैं ।

श्लोक १८–

तत्रत्या पृथिवी सर्वा देवीरूपा स्मृता बुधैः ।
नातः परतरं स्थानं कामाख्यायोनिमण्डलात् ।।

अन्वय–

बुधैः तत्रत्या सर्वा पृथिवी देवीरूपा स्मृता ।
अतः कामाख्यायोनिमण्डलात् परतरं स्थानं न ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

बुधैः= विद्वान् पुरुषों के द्वारा, तत्रत्या = वहाँ की, सर्वा = सम्पूर्ण, पृथिवी = धरती, देवीरूपा = देवीरूप, स्मृता = मानी गयी है, अतः = इससे, कामाख्यायोनिमण्डलात् = कामाख्यायोनिमण्डल से, परतरम् = बढ़कर, स्थानम् = स्थान, न= नहीं ।

भावार्थ–

विद्वान् पुरुषों ने वहाँ की सम्पूर्ण भूमि को देवीरूप कहा है । इस कामाख्यायोनिमण्डल से बढ़कर श्रेष्ठ स्थान कोई नहीं है ।

श्लोक १९–

गायत्र्याश्च पर स्थानं श्रीमत्पुष्करमीरितम् ।
अमरेशे चण्डिका स्यात्प्रभासे पुष्करेक्षिणी ।।

अन्वय–

श्रीमत्पुष्करं गायत्र्याः परं स्थानमीरितम् ।
अमरेशे चण्डिका प्रभासे पुष्करिणी स्यात् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

श्रीमत्पुष्करम् = ऐश्वर्यमय पुष्कर क्षेत्र, गायत्र्याः = भगवती गायत्री का, परम् = श्रेष्ठ, स्थानम् = स्थान, ईरितम् = कहा गया है । अमरेशे = अमरेश क्षेत्र में, चण्डिका = चण्डिका देवी, प्रभासे = प्रभास क्षेत्र में, पुष्करिणी = देवी पुष्करिणी, स्यात् = हैं ।

भावार्थ–

ऐश्वर्यमय पुष्कर क्षेत्र भगवती गायत्री का उत्तम स्थान कहा गया है । अमरेश क्षेत्र में देवी चण्डिका तथा प्रभास क्षेत्र में भगवती पुष्करेक्षिणी विराजमान हैं ।

श्लोक २०–

नैमिषे तु महास्थाने देवी सा लिङ्गधारिणी ।
पुरुहूता पुष्कराक्षे आषाढौ च रतिस्तथा ।।

अन्वय–

सा देवी नैमिषे महास्थाने तु लिङ्गधारिणी ।
पुष्कराक्षे पुरुहूता तथा च आषाढौ रतिः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सा = वह, देवी = भगवती, नैमिषे = नैमिषारण्य में, महास्थाने = महान् स्थान में, लिङ्गधारिणी = लिङ्गधारिणी नामक देवी, पुष्कराक्षे = पुष्कराक्ष में, पुरुहूता = देवी का एक नाम, तथा = और, आषाढ़ौ = आषाढी में, रति = देवी का एक नाम ।

भावार्थ–

महास्थान नैमिषारण्य में लिङ्गधारिणी विराजमान हैं । पुष्कराक्ष में देवी पुरुहूता और आषाढी में भगवती रति प्रतिष्ठित हैं ।

श्लोक २१–

चण्डमुण्डी महास्थाने दण्डिनी परमेश्वरी ।

भारभूतौ भवेद्भूतिर्नाकुले नकुलेश्वरी ।।

अन्वय–

चण्डमुण्डी महास्थाने परमेश्वरी दण्डिनी ।
भारभूतौ भूतिः नाकुले नकुलेश्वरी भवेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

चण्डमुण्डी = एक स्थान का नाम, महास्थाने = महान् स्थान में, परमेश्वरी = परमेश्वरी, दण्डिनी = देवी का नाम, नाकुले = एक स्थान का नाम, भारभूतौ = भारभूति में भूतिः = देवी का नाम, नकुलेश्वरी= देवी का नाम, भवेत् = है ।

भावार्थ–

चण्डमुण्डी नामक महान् स्थान में परमेश्वरी दण्डिनी और भारभूति में देवी भूति तथा नाकुल में देवी नकुलेश्वरी विराजमान हैं ।

श्लोक २२–

चन्द्रिका तु हरिश्चन्द्रे श्रीगिरौ शाङ्करी स्मृता ।
जप्येश्वरे त्रिशूला स्यात्सूक्ष्मा चाम्रातकेश्वरे ।।

अन्वय–

हरिश्चन्द्रे तु चन्द्रिका श्रीगिरौ शाङ्करी स्मृता ।
जप्येश्वरे त्रिशूला आम्रातकेश्वरे च सूक्ष्मा स्यात् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

हरिश्चन्द्रे = हरिश्चन्द्र नामक स्थान में चन्द्रिका = देवी का नाम, श्रीगिरौ = श्रीगिरि पर शाङ्करी = देवी का नाम, स्मृता = कही गयी, जयेश्वरे = जयेश्वर नामक स्थान में, त्रिशूला = देवी का नाम, आम्रातकेश्वरे= आम्रातकेश्वर नामक स्थान में सूक्ष्मा = देवी का नाम ।

भावार्थ–

हरिश्चन्द्र नामक स्थान में भगवती चन्द्रिका और श्रीगिरि पर शाङ्करी प्रतिष्ठित मानी गयी हैं । जप्येश्वर नामक स्थान में, त्रिशूला और आम्रातकेश्वर नामक स्थान में देवी त्रिशूला हैं ।

श्लोक २३–

शाङ्करी तु महाकाले शर्वाणी मध्यामाभिधे ।
केदाराख्ये महाक्षेत्रे देवी सा मार्गदायिनी ।।

अन्वय–

महाकाले तु शाङ्करी मध्यमाभिधे शर्वाणी ।

केदाराख्ये महाक्षेत्रे सा देवी मार्गदायिनी ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

महाकाले = महाकाल क्षेत्र में, शाङ्करी = देवी का एक नाम, मध्यमाभिधे = (मध्यम + अभिद्ये) = मध्यम नामक क्षेत्र में, केदाराख्ये (केदार + आख्ये) = केदार नामक, महाक्षेत्रे = महान् क्षेत्र में, सा= वह, देवी = देवी, मार्गदायिनी = देवी का एक नाम ।

भावार्थ–

महाकाल क्षेत्र में शांकरी और मध्यम नामक क्षेत्र में शर्वाणी अधिष्ठित हैं । केदार नामक महान् क्षेत्र में वे भगवती मार्गदायिनी नाम से प्रसिद्ध हैं ।

श्लोक २४–

भैरवाख्ये भैरवी सा गयायां मङ्गला स्मृता ।
स्थाणुप्रिया कुरुक्षेत्रे स्वायम्भुव्यपि नाकुले ।

अन्वय–

सा भैरवाख्ये भैरवी गयायां मङ्गला स्मृता ।
कुरुक्षेत्रे स्थाणुप्रिया नाकुले अपि स्वाम्भुवि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सा = वह (देवी), भैरवाख्ये = भैरव नामक स्थान में, भैरवी = देवी का एक नाम, गयायाम् = गया में, मङ्गला = देवी का एक नाम, स्मृता = कही गयी हैं, कुरुक्षेत्रे = कुरुक्षेत्र में, स्थाणुप्रिया = देवी का एक नाम, नाकुले = नाकुल नामक स्थान में, अपि = भी, स्वायम्भुवि = देवी का एक नाम ।

भावार्थ–

भैरव नामक स्थान में भैरवी देवी हैं और गया में मंगला प्रतिष्ठित हैं । कुरुक्षेत्र में स्थाणुप्रिया और नाकुल में स्वायम्भुवी का स्थान हैं ।

श्लोक २५–

कनखले भवेदुग्रा विश्वेशा विमलेश्वरे ।
अट्टहासे महानन्दा महेन्द्रे तु महान्तका ।

अन्वय–

कनखले उग्रा विमलेश्वरे विश्वेशा भवेत् ।
अट्टहासे महानन्दा महेन्द्रे तु महान्तका (भवेत्) ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

कनखले = कनखल में उग्रा = देवी का एक नाम, विमलेश्वरे = विमलेश्वर में, विश्वेशा = देवी का

एक नाम, भवेत् = है, अट्टहासे = अट्टहास नामक स्थान में, महेन्द्रे = महेन्द्र पर्वत पर, महान्तका= देवी का एक नाम ।

भावार्थ–

कनखल में भगवती उग्रा और विमलेश्वर में विश्वेशा का स्थान है । अट्टहास में महानन्दा और महेन्द्र पर्वत पर महान्तका विराजमान हैं ।

श्लोक २६–

भीमे भीमेश्वरी प्रोक्ता स्थाने वस्त्रापथे पुनः ।
भवानी शाङ्करी प्रोक्ता रुद्राणी त्वर्धकोटिके ।।

अन्वय–

भीमे भीमेश्वरी पुनः वस्त्राथे स्थाने भवानी शाङ्करी प्रोक्ता । अर्धकोटिके तु रुद्राणी प्रोक्ता ।

पदच्छेद अर्थसहित–

भीमे = भीम पर्वत पर भीमेश्वरी = देवी का नाम, पुनः = तथा, वस्त्रापथे स्थाने = वस्त्रापथ नामक स्थान में, भवानी शाङ्करी = देवी का एक नाम, प्रोक्ता = कही गयी. अर्धकोटिके = अर्धकोटि पर्वत पर, रुद्राणी = देवी का नाम ।

भावार्थ–

भगवती भीम पर्वत पर भीमेश्वरी और वस्त्रापथ नामक स्थान में भवानी शांकरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। अर्धकोटि पर्वत पर वे रुद्राणी के रूप में प्रतिष्ठित हैं ।

श्लोक २७–

अविमुक्ते विशालाक्षी महाभागा महालये ।
गोकर्णे भद्रकर्णी स्याद्भद्रा स्याद्भद्रकर्णके ।।

अन्वय–

अविमुक्ते विशालाक्षी महालये महाभागा ।
गोकर्णे भद्रकर्णी स्याद् भद्रकर्णके भद्रा स्यात् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अविमुक्ते = अविमुक्त क्षेत्र (काशी) में, विशालाक्षी = देवी का एक नाम, महालये = महालय क्षेत्र में, महाभागा = देवी का एक नाम, गोकर्णे = गोकर्ण तीर्थ में, भद्रकर्णी = देवी का एक नाम, भद्रकर्णके= भद्रकर्णक में, भद्रा = देवी का एक नाम, स्यात् = है ।

भावार्थ–

अविमुक्त क्षेत्र (काशी) में विशालाक्षी तथा महालय क्षेत्र में महाभागा विराजमान हैं । गोकर्ण

में भद्रकर्णी और भद्रकर्णक में भद्रा विराजमान हैं ।

श्लोक २८–

उत्पलाक्षी सुवर्णाक्षे स्थाण्वीशा स्थाणुसंज्ञके ।
कमलालये तु कमला प्रचण्डा छगलण्डके ।।

अन्वय–

सुवर्णाक्षे उत्पलाक्षी स्थाणुसंज्ञके स्थाण्वीशा ।
कमलालये तु कमला छगलण्डके प्रचण्डा ।।

पदच्छेद अर्थसहित -

सुवर्णाक्षे = सुवर्ण नामक स्थान में, उत्पलाक्षी = देवी का एक नाम । स्थाणुसंज्ञके = स्थाणुसंज्ञक नामक स्थान में, स्थाण्वीशा = देवी का एक नाम, कमलालये = कमलालय में, कमला = देवी का एक नाम, छगलण्डके = छगलण्डक स्थान में, प्रचण्डा = देवी का एक नाम ।

भावार्थ–

सुवर्णाक्ष नामक स्थान में देवी उत्पलाक्षी, स्थाणुसंज्ञक नामक स्थान में स्थाण्वीशा, कमलालय में कमला और छगलण्डक में प्रचण्डा नाम से प्रसिद्ध हैं ।

श्लोक २९–

कुरण्डले त्रिसन्ध्या स्यान्माकोटे मुकुटेश्वरी ।
मण्डलेशे शाण्डकी स्यात्काली कालञ्जरे पुनः ।।

अन्वय–

कुरण्डले त्रिसन्ध्या स्यात् माकोटे मुकुटेश्वरी (स्यात्) ।
पुनः मण्डलेशे शाण्डकी स्यात् कालञ्जरे काली (स्यात्) ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

कुरण्डले = कुरण्डल में, त्रिसन्ध्या = देवी का एक नाम, माकोटे = माकोट में, मुकुटेश्वरी = देवी का एक नाम, स्यात् = है, पुनः = तथा, मण्डलेशे = मण्डलेश में, शाण्डकी = देवी का एक नाम, कालञ्जरे = कालंजर पर्वत पर, काली = काली ।

भावार्थ–

कुरण्डल में त्रिसन्ध्या, माकोट में मुकुटेश्वरी, मण्डलेश में शाण्डकी तथा कालंजर पर्वतपर काली प्रतिष्ठित हैं ।

श्लोक ३०–

शङ्कुकर्णे ध्वनिः प्रोक्ता स्थूला स्यात्स्थूलकेश्वरे ।

ज्ञानिनां हृदयाम्भोजे हृल्लेखा परमेश्वरी ।।

अन्वय–

शङ्कुकर्णे ध्वनिः प्रोक्ता स्थूलकेश्वरे स्थूला स्यात् ।
परमेश्वरी हृल्लेखा ज्ञानिनां हृदयाम्भोजे ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

शङ्कुकर्णे = शंकुकर्ण पर्वत पर, ध्वनिः = देवी का एक नाम, प्रोक्ता = कही गयी हैं, स्थूलकेश्वरे = स्थूलकेश्वर में, स्थूला = देवी का एक नाम, स्यात् = है, परमेश्वरी = परमेश्वरी, हृल्लेखा = हृल्लेखा, ज्ञानिनाम् = ज्ञानियों के, हृदयाम्भोजे (हृदय+अम्भोजे) = हृदयकमल में ।

भावार्थ–

शंकुकर्ण पर्वत पर भगवती ध्वनि विराजमान है । स्थूलकेश्वर पर भगवती स्थूला हैं । परमेश्वरी हृल्लेखा ज्ञानियों के हृदय-कमल में विराजमान रहती हैं ।

श्लोक ३१–

प्रोक्तानीमानि स्थानानि देव्याः प्रियतमानि च ।
तत्तत्क्षेत्रस्य माहात्म्यं श्रुत्वा पूर्वं नगोत्तम ।।

अन्वय–

प्रोक्तानि इमानि स्थानानि देव्याः प्रियतमानि च ।
नगोत्तम पूर्वं तत् तत् क्षेत्रस्य माहात्म्यं श्रुत्वा ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

प्रोक्तानि = बताये गये, इमानि = ये, स्थानानि = स्थान, देव्याः = देवी के, प्रियतमानि = अत्यन्त प्रिय, नगोत्तम = हे पर्वतराज, पूर्वम् = पहले पहल, तत्तत् = उस-उस, क्षेत्रस्य = क्षेत्र का, माहात्म्य= महिमा, श्रुत्वा ।

भावार्थ–

ऊपर बताये गये ये स्थान देवी के लिए अत्यन्त प्रिय हैं । हे पर्वतराज ! पहले उस-उस क्षेत्र का माहात्म्य सुनकर ।

श्लोक ३२–

तदुक्तेन विधानेन पश्चाद्देवी प्रपूजयेत् ।
अथवा सर्वक्षेत्राणि काश्यां सन्ति नगोत्तम ।

अन्वय–

पश्चात् तदुक्तेन विधानेन देवीं प्रपूजयेत् ।

अथवा नगोत्तम सर्वक्षेत्राणि काश्यां सन्ति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पश्चात् = इसके बाद, तदुक्तेन विधानेन = शास्त्रोक्त विधि से, देवीं = देवी को, प्रपूजयेत् = पूजा करनी चाहिए, अथवा = अथवा, नगोत्तम = हे पर्वतराज, सर्वक्षेत्राणि = सभी क्षेत्र, काश्याम् = काशी में, सन्ति = हैं ।

भावार्थ–

तत्पश्चात् शास्त्रोक्त विधि से देवी की पूजा करनी चाहिए अथवा हे पर्वतराज ! देवी के ये सभी क्षेत्र काशी में भी स्थित हैं ।

श्लोक ३३–

अतस्तत्र वसेन्नित्यं देवीभक्तिपरायणः ।
तानि स्थानानि सम्पश्यन्जपन्देवीं निरन्तरम् ।।

अन्वय–

अतः देवीभक्तिपरायणः तत्र नित्यं वसेत् ।
तानि स्थानानि सम्पश्यन् देवीं निरन्तरं जपन् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अतः = इसलिए, देवीभक्तिपरायणः = देवी की भक्ति में तत्पर रहने वाला, तत्र = वहाँ, नित्यम् = सदैव, वसेत् = रहना चाहिए, तानि = वे सब, स्थानानि = देवी के स्थान, सम्पश्यन् = दर्शन करते हुए, देवीम् = देवी को, निरन्तरम् = निरन्तर, जपन् = जप करते हुए ।

भावार्थ–

अतः देवी की भक्ति में तत्पर रहने वाले मनुष्य को सदैव काशी में रहना चाहिए । वहाँ देवी से सम्बन्धित सभी स्थानों का दर्शन करते हुए और भगवती के मन्त्रों का जप करते हुए समय बिताना चाहिए ।

श्लोक ३४–

ध्यायंस्तच्चरणाम्भोजं मुक्तो भवति बन्धनात् ।
इमानि देवीनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।।

अन्वय–

तच्चरणाम्भोजं ध्यायन् बन्धनात् मुक्तो भवति ।
यः प्रातरुत्थाय इमानि देवीनामानि पठेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तच्चरणाम्भोजम् (तत् + चरण + अम्भोजम्) = देवी के चरण-कमल को, ध्यायन् = ध्यान करते हुए, बन्धनात् = भव बन्धन से, मुक्तः = मुक्त, भवति = हो जाता है, यः = जो, प्रातरुत्थाय (प्रातः + उत्थाय) = प्रातः उठकर, इमानि = इन, देवीनामानि = देवी के नामों को, पठेत् = पढ़े ।

भावार्थ–

मनुष्य देवी के चरण-कमल का ध्यान करते हुए, भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है । जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर देवी के इन नामों का पाठ करता है ।

श्लोक ३५–

भस्मीभवन्ति पापानि तत्क्षणान्नग सत्वरम् ।
श्राद्धकाले पठेदेतान्यमत्नानि द्विजाग्रतः ।।

अन्वय–

नग (तस्य) पापानि तत्क्षणात् सत्वरं भस्मीभवन्ति ।
श्राद्धकाले द्विजाग्रतः एतानि अमलानि (नामानि) पठेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नग= हे पर्वतराज, पापानि = पाप, तत्क्षणात् = उसी समय, सत्वरम् = शीघ्र, भस्मीभवन्ति= भस्म हो जाते हैं, श्राद्धकाले = श्राद्ध के समय, द्विजाग्रतः = ब्राह्मणों के समक्ष, एतानि = इन को, अमलानि= पवित्र नामों को, पठेत् = पढ़ता है ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज! उसके पाप उसी समय शीघ्र भस्म हो जाते हैं । श्राद्ध के समय जो मनुष्य ब्राह्मणों के समक्ष देवी के इन पवित्र नामों को पढ़ता है ।

श्लोक ३६–

मुक्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयान्ति परमां गतिम् ।
अधुना कथयिष्यामि व्रतानि तव सुव्रत ।।

अन्वय–

तत्पितरः सर्वे मुक्ताः परमां गतिं प्रयान्ति ।
सुव्रत अधुना व्रतानि तव कथयिष्यामि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत्पितरः = तस्य पितरः = उसके पितृगण, सर्वे = सभी मुक्ताः = मुक्त, परमाम् = परम गतिम् = गति को, प्रयान्ति = प्राप्त करते हैं, सुव्रत = हे सुव्रत, अधुना= अब, व्रतानि = देवी के व्रतों को, तव = तुम्हारा, कथयिष्यामि = कहूँगा ।

भावार्थ–

उसके सभी पितर मुक्त होकर परम गति को प्राप्त हो जाते हैं । हे सुव्रत ! अब मैं देवी के व्रतों के सम्बन्ध में आपको बताऊँगा ।

श्लोक ३७–

नारीभिश्च नरैश्चैव कर्त्तव्यानि प्रयत्नतः ।
व्रतमनन्ततृतीयाख्यं रसकल्याणिनीव्रतम् ।।

अन्वय–

नारीभिश्च नरैश्चैव प्रयत्नतः कर्त्तव्यानि ।
अनन्ततृतीयाख्यं व्रतं रसकल्याणिनीव्रतम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नारीभिः + च = नारियों के द्वारा, नरैश्चैव (नरैः + च + एव) = और पुरुषों के द्वारा, प्रयत्नतः = प्रयत्नूर्वक, कर्त्तव्यानि = करना चाहिए, अनन्ततृतीयाख्यम् (अनन्ततृतीया + आख्यम्) = अनन्ततृतीया नाम, व्रतम् = व्रत, रसकल्याणिनीव्रतम् = रसकल्याणिनी नामक व्रत ।

भावार्थ–

व्रतों में जो तृतीया के व्रत हैं, वे अनन्ततृतीया, रसकल्याणिनी तथा -

श्लोक ३८–

आर्द्रानन्दकरं नाम्ना तृतीयाया व्रतं च यत् ।
शुक्रवारव्रतं चैव तथा कृष्णचतुर्दशी ।।

अन्वय–

यत् च तृतीयाया व्रतं आर्द्रानन्दकरं नाम्ना ।
शुक्रवारव्रतं चैव तथा कृष्णचतुर्दशी ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यत् = जो, च = और, तृतीयाया = तृतीया का, व्रतम् = व्रत, आर्द्रानन्दकरम् = आर्द्रानन्दकर, नाम्ना= नाम से, शुक्रवारव्रतम् = शुक्रवारव्रत, चैव = और, तथा = तथा, कृष्णचतुर्दशी का व्रत ।

भावार्थ–

तीसरा आर्द्रानन्दकर नामक व्रत है । इसके अतिरिक्त शुक्रवार तथा कृष्णचतुर्दशी को भी देवी का व्रत किया जाता है ।

श्लोक ३९–

भौमवारव्रतं चैव प्रदोषव्रतमेव च ।

यत्र देवो महादेवो देवीं संस्थाप्य विष्टरे ।।

अन्वय–

भौमवारव्रतं चैव प्रदोषव्रतमेव च ।
यत्र देवो महादेवो देवीं विष्टरे संस्थाप्य ।

पदच्छेद अर्थसहित–

भौमवारव्रतम् = मंगलवार का व्रत, चैव = और, प्रदोषव्रतम् + एव = प्रदोश का व्रत, यत्र = जहाँ, देव: = देवता, महादेव: = महादेव, देवीम् = देवी को, विष्टरे = कुशासन पर, संस्थाप्य = विराजमान करके ।

भावार्थ–

मंगलवार को भी देवी का व्रत किया जाता है । प्रदोष में भी देवी का व्रत किया जाता है, उसे प्रदोषव्रत कहते हैं । उस दिन देवाधिदेव भगवान् शिव पार्वती को कुशासन पर विराजमान करके ।

श्लोक ४०–

नृत्यं करोति पुरतः सार्धं देवैर्निशामुखे ।
तत्रोपोष्य रजन्यादौ प्रदोषे पूजयेच्छिवाम् ।।

अन्वय–

(महादेवो) निशामुखे देवै: सार्धं (देवीं) पुरत: नृत्यं करोति । तत्रोपोष्य रजन्यादौ प्रदोषे शिवां पूजयेत्।।

पदच्छेद अर्थसहित–

निशामुखे= सायंकाल, देवै: = देवताओं द्वारा, सार्धम् = साथ, पुरत: = समक्ष, नृत्यम् = नृत्य, करोति = करते हैं, तत्रोपोष्य (तत्र + उपोष्य) = उस दिन उपवास करके, रजनि + आदौ = रात्रि के प्रारम्भ में, प्रदोषे = प्रदोष काल में, शिवाम् = देवी को, पूजयेत् = पूजा करनी चाहिए ।

भावार्थ–

(महादेव) सायंकाल देवताओं के साथ देवी के समक्ष नृत्य करते हैं । उस दिन उपवास करके सायंकाल के प्रदोष में भगवती शिवा की पूजा करनी चाहिए ।

श्लोक ४१–

प्रतिपक्षं विशेषेण तद्देवीप्रीतिकारकम् ।
सोमवारव्रतं चैव ममातिप्रियकृन्नग ।।

अन्वय–

तद्देवीप्रीतिकारकं विशेषेण प्रतिपक्षम् ।
नग सोमवारव्रतं चैव ममातिप्रियकृत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत् = यह, देवीप्रीतिकारकम् = देवी को सन्तुष्ट करने वाला, विशेषेण = विशेष रूप से, प्रतिपक्षम्= प्रत्येक पक्ष में, नग = हे पर्वतराज, सोमवारव्रतम् = सोमवार का व्रत, चैव = भी, ममातिप्रियकृत (मम + अति+प्रियकृत्) = मुझे अत्यधिक सन्तुष्ट करने वाला ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! देवी को विशेष रूप से सन्तुष्ट करने वाला यह प्रदोष व्रत प्रत्येक पक्ष में करना चाहिए । हे पर्वतराज ! सोमवार का व्रत भी मुझे अत्यधिक सन्तुष्ट करने वाला है ।

श्लोक ४२–

तत्रापि देवीं सम्पूज्य शत्रौ भोजनमाचरेत् ।
नवरात्रद्वयं चैव व्रतं प्रीतिकरं मम ।।

अन्वय–

तत्रापि देवीं सम्पूज्य रात्रौ भोजनमाचरेत् ।
नवरात्रद्वयं चैव व्रतं मम प्रीतिकरम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत्रापि (तत्र + अपि) = इस व्रत में भी, देवीम् = भगवती को, सम्पूज्य = पूजा करके, रात्रौ = रात्रि में, भोजनमाचरेत् (भोजनम् + आचरेत्) = भोजन करे, नवरात्रद्वयम् = दोनों नवरात्र को, चैव = भी, व्रतम् = व्रत, मम = मेरे, प्रीतिकरम् = प्रियकर ।

भावार्थ -

इस व्रत में भी उपवास करके देवी भगवती की सम्यक् पूजा करने के पश्चात् रात्रि में भोजन करना चाहिए । हे नागराज ! इसीप्रकार चैत्र और आश्विन महीनों के दोनों नवरात्र व्रत मेरे लिए अत्यन्त प्रियकर हैं ।

श्लोक ४३–

एवमन्यान्यपि विभो नित्यनैमित्तिकानि च ।
व्रतानि कुरुते यो वै मत्प्रीत्यर्थं विमत्सरः ।

अन्वय–

विभो एवमन्यान्यपि नित्यनैमित्तिकानि च (व्रतानि)
यो वै विमत्सरः मत्प्रीत्यर्थं व्रतानि कुरुते ।

पदच्छेद अर्थसहित–

विभो = हे विभो, एवमन्यान्यपि (एवम + अन्य + अपि) = इसी प्रकार, अन्य = अन्य भी, नित्यनैमित्तिकानि = नित्य और नैमित्तिक, च = और, यः = जो मनुष्य, विमत्सरः = राग-द्वेष से

रहित, मत्प्रीत्यर्थम् = मत् + प्रीति + अर्थम्) मेरी प्रसन्नता के लिए, व्रतानि = व्रतों को, कुरुते = करता है ।

भावार्थ–

हे विभो ! इसी प्रकार और भी नित्य तथा नैमित्तिक व्रत हैं । जो मनुष्य राग-द्वेष से रहित होकर मेरी प्रसन्नता के लिए इन व्रतों को करता है ।

श्लोक ४४–

प्राप्नोति मम सायुज्यं स मे भक्तः स मे प्रियः ।
उत्सवानपि कुर्वीत दोलोत्सवमुखान्विभो ।।

अन्वय–

(स भक्तः) मम सायुज्यं प्राप्नोति स मे भक्तः स मे प्रियः ।
विभो दोलोत्सवमुखान् उत्सवानपि कुर्वीत ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मम = मेरा, सायुज्यम् = सायुज्य, प्राप्नोति = प्राप्त करता है, सः = वह, में = मेरा, भक्तः = भक्त, प्रियः = प्रिय, विभो = हे विभो, दोलोत्सवमुखान् = झूला प्रभृति उत्सव, उत्सवानपि (उत्सवान् + अपि) = उत्सव भी, कुर्वीत = करे ।

भावार्थ -

ऐसा भक्त मेरा सायुज्य कर लेता है । वही वास्तव में मेरा भक्त है और वही मुझे प्रिय भी ह। हे विभो ! व्रतों के अवसर पर झूला सजाकर मेरा उत्सव भी मनाना चाहिए ।

श्लोक ४५–

शयनोत्सवं तथा कुर्यात्तथा जागरणोत्सवम् ।
रथोत्सवं च मे कुर्याद्दमनोत्सवमेव च ।।

अन्वय–

तथा शयनोत्सवं कुर्यात् तथा जागरणोत्सवं कुर्यात् ।
मे रथोत्सवं च दमनोत्सवमेव च कुर्यात् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तथा = इसीप्रकार, शयनोत्सवम् = शयनोत्सव, कुर्यात् = करे, जागरणोत्सवम् = जागरणोत्सव, मे= मेरा, रथोत्सवम् = रथोत्सव, च = और, दमनोत्सवमेव (दमनोत्सव + एव) = दमनोत्सव भा।

भावार्थ–

इसी प्रकार मेरा शयनोत्सव, जागरणोत्सव, रथोत्सव और दमनोत्सव आयोजित करना चाहिए ।

श्लोक ४६–

पवित्रोत्सवमेवापि श्रावणे प्रीतिकारकम् ।
मम भक्तः सदा कुर्यादवमन्यान्महोत्सवान् ।।

अन्वय–

श्रावणे प्रीतिकारकं पवित्रोत्सवमेवापि (कुर्यात्) ।
मम भक्तः सदा अन्यान्महोत्सवान् कुर्यात् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

श्रावणे = सावन महीने में, प्रीतिकारकम् = प्रीति उत्पन्न करने वाले, पवित्रोत्सवमेवापि (पवित्र + उत्सवम् + एव + अपि) = पवित्र उत्सव भी, मम = मेरा, भक्तः = भक्त, सदा = सदैव, अन्यान्महोत्सवान् (अन्यान् + महा + उत्सवान्) = अन्य-अन्य महोत्सवों को, कुर्यात् = करना चाहिए।

भावार्थ–

सावन महीने में होने वाला पवित्रोत्सव भी मेरे लिए प्रीतिकारक है । मेरे भक्त को चाहिए कि वह इसी तरह अन्य महोत्सवों को भी सदा करे ।

श्लोक ४७–

मद्भक्तान्भोजयेत्प्रीत्या तथा चैव सुवासिनीः ।
कुमारीर्वटुकांश्चापि मद्बुद्ध्या तद्गतान्तरः ।।

अन्वय–

मद्भक्तान् तथा सुवासिनीः चैव ।
कुमारीर्वटुकांश्चापि मद्बुद्ध्या तद्गतान्तरः प्रीत्या भोजयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मद्भक्तान् = मेरे भक्तों को, तथा = और, सुवासिनीः = सधवा स्त्रियों को, चैव = भी, कुमारीः = कुमारी कन्याओं को, वटुकान् = बटुकों को, चापि = भी, मद्बुद्ध्या = मेरा स्वरूप समझकर, तद्गतान्तरः = अपने मन स्थित करके, प्रीत्या = प्रेमपूर्वक, भोजयेत् = भोजन कराना चाहिए ।

भावार्थ–

ऐसे अवसरों पर मेरे भक्तों, सुवासिनी स्त्रियों, कुमारी कन्याओं और बटुकों को मेरा ही स्वरूप समझकर उनमें मन स्थित करके उन्हें प्रेमपूर्वक भोजन कराना चाहिए ।

श्लोक ४८–

वित्तशाठ्येन रहितो यजेदेतान्सुमनादिभिः ।

य एवं कुरुते भक्त्या प्रतिवर्षमतन्द्रितः ।।

अन्वय–

वित्तशाठ्येन रहितो एतान् सुमनादिभिः यजेत् ।
यो अतन्द्रितः भक्त्या प्रतिवर्षम् एवं कुरुते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

वित्तशाठ्येन = कृपणता से, रहितः = रहित होकर, एतान् = इनकी, सुमनादिभिः = पुष्प आदि से, यजेत् = पूजा करनी चाहिए, यः = जो मनुष्य, अतन्द्रितः = सावधान होकर, भक्त्या = भक्तिपूर्वक, प्रतिवर्षम् = प्रत्येक वर्ष, एवम् = ऐसा, कुरुते = करता है ।

भावार्थ–

साथ ही, धन की कृपणता से रहित होकर पुष्प आदि से इनकी पूजा करनी चाहिए । जो मनुष्य सावधान होकर भक्तिपूर्वक प्रत्येक वर्ष ऐसा करता है, वह -

श्लोक ४९–

स धन्यः कृतकृत्योऽसौ मत्प्रीतेः पात्रमञ्जसा ।
सर्वमुक्तं समासेन मम प्रीतिप्रदायकम् ।।
नाशिष्याय प्रदातव्यं नाभक्ताय कदाचन ।।

अन्वय–

स धन्यः कृतकृत्यः असौ अञ्जसा मत्प्रीतेः पात्रम् । मम प्रीतिप्रदायकं सर्वं समासेन उक्तम् ।
न अशिष्याय न अभक्ताय कदाचन प्रदातव्यम् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

सः = वह, धन्यः = धन्य, कृतकृत्यः = कृतकृत्य, असौ = वह, अञ्जसा = शीघ्र, मत्प्रीतेः = मेरे प्रेम का, पात्रम् = पात्र, मम = मेरा, प्रीतिप्रदायकम् = प्रसन्नता देने वाला, सर्वम् = सब कुछ, समासेन= संक्षेप में, उक्तम् = कहा गया, न= नहीं, अशिष्याय = जो शिष्य न हो उसे, अभक्ताय = जो भक्त न हो उसे, कदाचन = कभी भी, प्रदातव्यम् = प्रदान करना चाहिए ।

भावार्थ–

धन्य तथा कृतकृत्य है । वह शीघ्र ही मेरा प्रिय पात्र बन जाता है । मुझे प्रसन्नता प्रदान करने वाला यह सब प्रसंग मैंने संक्षेप में आपसे कह दिया । उपदेश न मानने वाले तथा मुझमें भक्ति न रखने वाले मनुष्य के समक्ष इसे कभी प्रकाशित नहीं करना चाहिए ।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः (उनतालीसवाँ अध्याय)

हिमालय उवाच

श्लोक १–

देवदेवि महेशानि करुणासागरेऽम्बिके ।
ब्रूहि पूजाविधिं सम्यग्यथावदधुना निजम् ।।

अन्वय–

देवदेवि महेशानि करुणासागरेऽम्बिके ।
अधुना निजं पूजाविधिं यथावत् सम्यक् ब्रूहि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

देवदेवि = हे देवेश्वरि, महेशानि = हे महेश्वरि, करुणासागरे = हे करुणासागरे, अम्बिके = हे अम्बिके, अधुना = अब, निजम् = अपना, पूजाविधिम् = पूजा की विधि को, यथावत् = यथार्थ रूप से, सम्यक= भलीभाँति, ब्रूहि = बताइए ।

भावार्थ–

हिमालय बोले–

हे देवेश्वरि ! हे महेश्वरि ! हे करुणासागरे, हे अम्बिके ! अब आप यथार्थ रूप से अपने पूजन की विधि को भलीभाँति बतलाइये ।

श्रीदेव्युवाच

श्लोक २–

वक्ष्ये पूजाविधिं राजन्नम्बिकाया यथाप्रियम् ।
अत्यन्तश्रद्धया सार्धं शृणु पर्वतपुङ्गव ।।

अन्वय–

राजन् अम्बिकाया यथाप्रियं पूजाविधिं वक्ष्ये ।
पर्वतपुङ्गव अत्यन्तश्रद्धया सार्धं शृणु ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

राजन् = हे राजन्, अम्बिकायाः = अम्बिका का, यथाप्रियम् = यथार्थ रूप से प्रिय लगने वाली, पूजाविधिम् = पूजा की विधि को, वक्ष्ये = बताती हूँ, पर्वतपुङ्गव = हे पर्वतश्रेष्ठ, अत्यन्तश्रद्धया = अत्यन्त श्रद्धा से, सार्धम् = साथ, श्रुणु = सुनिये ।।

भावार्थ–

श्रीदेवी बोलीं - हे राजन् ! हे पर्वतश्रेष्ठ ! मैं यथार्थ रूप में जगदम्बा को प्रसन्न करने वाली पूजाविधि

बता रही हूँ, अत्यन्त श्रद्धा के साथ इसे सुनिये ।

श्लोक ३–

द्विविधा मम पूजा स्याद् बाह्या चाभ्यन्तरापि च ।
बाह्यापि द्विविधा प्रोक्ता वैदिकी तान्त्रिकी तथा ।।

अन्वय–

मम पूजा द्विविधा स्याद् बाह्या चाभ्यन्तरापि च ।
बाह्यापि द्विविधा प्रोक्ता वैदिकी तथा तान्त्रिकी ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मम = मेरी, पूजा = आराधना, द्विविधा = दो प्रकार से, स्यात् = है, बाह्या = बाह्य, च = और आभ्यन्तरापि = आभ्यन्तर + अपि = आभ्यन्तर भी, ब्रह्मापि = (ब्रह्मा + पि) = ब्रह्मा भी, प्रोक्ता = कही गयी, वैदिकी = वैदिक रीति वाली, तान्त्रिकी = तान्त्रिक रीति वाली ।

भावार्थ–

मेरी पूजा दो प्रकार की है - बाह्य और आभ्यन्तर । बाह्य पूजा भी वैदिकी और तान्त्रिकी - दो प्रकार की कही गयी है ।

श्लोक ४–

वैदिक्यर्चापि द्विविधा मूर्तिभेदेन भूधर ।
वैदिकी वैदिकैः कार्या वेददीक्षासमन्वितैः ।।

अन्वय–

भूधर वैदिक्यर्चापि मूर्तिभेदेन द्विविधा ।
वैदिकी वेददीक्षासमन्वितैः वैदिकैः कार्या ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

भूधर = हे पर्वतराज, वैदिक्यर्चापि (वैदिकी + अर्चा + अपि) = वैदिकी पूजा भी, मूर्तिभेदेन = मूर्तिभेद से, द्विविधा = दो प्रकार की, वैदिकी = वैदिकी पूजा, वेददीक्षासमन्वितैः = वेद-दीक्षा से सम्पन्न, वैदिकैः = वैदिकों द्वारा, कार्या = की जानी चाहिए ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! वैदिकी पूजा भी मूर्ति-भेद से दो प्रकार की होती हैं । वेद-दीक्षा से सम्पन्न वैदिकों द्वारा वैदिकी पूजा की जानी चाहिए ।

श्लोक ५–

तन्त्रोक्तदीक्षावद्भिस्तु तान्त्रिकी संश्रिता भवेत् ।

इत्थं पूजारहस्यं च न ज्ञात्वा विपरीतकम् ।।

अन्वय–

तन्त्रोक्तदीक्षावद्भिस्तु तान्त्रिकी संश्रिता भवेत् ।
इत्थं पूजारहस्यं च न ज्ञात्वा विपरीतकम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तन्त्रोक्तदीक्षावद्भिस्तु (तन्त्र + उक्त + दीक्षावद्भिः +तु) = तन्त्रोक्त दीक्षा से युक्त पुरुषों के द्वारा, तान्त्रिकी = तान्त्रिकी दीक्षा, संश्रिता = सहारा, भवेत् = होती है, इत्थम् = इस प्रकार, पूजारहस्यम्= पूजा के रहस्य, न = नहीं, ज्ञात्वा = जानकर, विपरीतकम् = विपरीत ।

भावार्थ–

तन्त्रोक्त दीक्षा से युक्त पुरुषों के द्वारा तान्त्रिकी पूजा की जानी चाहिए । इस प्रकार पूजा के रहस्य को न समझकर जो अज्ञानी मनुष्य इसके विपरीत ।

श्लोक ६–

करोति यो नरो मूढः स पतत्येव सर्वथा ।
तत्र या वैदिकी प्रोक्ता प्रथमा तां वदाम्यहम् ।।

अन्वय–

यो मूढः नरो (विपरीतकम्) करोति स सर्वथा पतत्येव ।
तत्र या प्रथमा वैदिकी प्रोक्ता तां वदाम्यहम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यः = जो, मूढः = अज्ञानी मनुष्य, नरः = मनुष्य, करोति = करता है, सः = वह, सर्वथा = सब प्रकार से, पतत्येव (पतति +एव) = अधःपतन ही होता है, तत्र = उसमें, या = जो पूजा, प्रथमा = पहली, वैदिकी = वैदिकी, प्रोक्ता = कही गयी ताम् = उसे वदाम्यहम् (वदामि + अहम्) = मैं बता रही हूँ ।

भावार्थ–

करता है उसका सर्वथा अधःपतन हो जाता है । उसमें जो पहली वैदिकी पूजा कही गयी है, उसे मैं बता रही हूँ ।

श्लोक ७–

यन्मे साक्षात्परं रूपं दृष्टवानसि भूधर ।
अनन्तशीर्षनयनमनन्तचरणं महत् ।।

अन्वय–

भूधर अनन्तशीर्षनयनमनन्तचरणं यन्मे परं रूपं साक्षात् दृष्टवानसि ।

पदच्छेद अर्थसहित–

भूधर = हे पर्वतराज ! अनन्तशीर्षनयनम् = अनन्त सिर और अनन्त आँखों वाला, अनन्तचरणम् = अनन्त चरणों वाला, यन्मे (यत् + मे) = जो मेरा, परम् = महान् , रूपम् = रूप को, साक्षात् = अपनी आँखों से, दृष्टवानसि (दृष्टवान् + असि) = देख चुके हो ।

भावार्थ–

हे भूधर ! तुम अनन्त मस्तक, अनन्त नेत्र तथा अनन्त चरण वाले मेरे जिस महान् रूप का साक्षात् दर्शन कर चुके हो ।

श्लोक ८–

सर्वशक्तिसमायुक्तं प्रेरकं यत्परात्परम् ।
तदेव पूजयेन्नित्यं नमेद् ध्यायेत्स्मरेदपि ।।

अन्वय—

यत् सर्वशक्तिसमायुक्तं प्रेरकं परात्परम् ।
तदेव नित्यं पूजयेत् नमेद् ध्यायेत्स्मरेदपि ।

पदच्छेद अर्थसहित–

यत् = जो, सर्वशक्तिसमायुक्तम् = समस्त शक्तियों से सम्पन्न, प्रेरकम् = प्रेरणा देने वाला, परात्परम्= श्रेष्ठतम, तदेव (तत् + एव) वही, नित्यम् = सदैव, पूजयेत् = पूजन करना चाहिए, नमेत् = नमन करना चाहिए, ध्यायेत् = ध्यान करना चाहिए, स्मरेदपि (स्मरण + अपि) = स्मरण भी करना चाहिए।

भावार्थ–

उसी महान् रूप का नित्य पूजन, नमन, ध्यान तथा स्मरण करना चाहिए । क्योंकि वह समस्त शक्तियों से सम्पन्न, प्रेरणा प्रदान करने वाला तथा श्रेष्ठतम है ।

श्लोक ९–

इत्येतत्प्रथमार्चायाः स्वरूपं कथितं नग ।
शान्तः समाहितमना दम्भाहङ्कारवर्जितः ।।

अन्वय–

नग इति प्रथमार्चायाः एतत् स्वरूपं कथितम् ।
शान्तः समाहितमना दम्भाहङ्कारवर्जितः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नग = हे पर्वतराज, इति = इस प्रकार, प्रथमार्चायाः (प्रथम + अर्चायाः) = प्रथम पूजा का, एतत्=

यह, स्वरूपम् = स्वरूप, कथितम् = कहा गया, शान्तः = शान्त, समाहितमना = समाहित मन वाला, दम्भाहङ्कारवर्जितः (दम्भ + अहङ्कार + वर्जितः) = दम्भ और अहंकार से रहित हो ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! मेरी प्रथम पूजा का यही स्वरूप बतलाया गया है । आप शान्त, समाहित मन वाला और दम्भ तथा अहंकार से रहित (हो जाइये) ।

श्लोक १०–

तत्परो भव तद्याजी तदेव शरणं व्रज ।
तदेव चेतसा पश्य जप ध्यायस्व सर्वदा ।।

अन्वय–

तत्परो भव तद्याजी तदेव शरणं व्रज ।
तदेव चेतसा पश्य सर्वदा जप ध्यायस्य ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत्परो = उसके परायण, भव = हो जाइये, तद्याजी = उसी का यजन करने वाला, तदेव = उसी के, शरणम् = शरण, व्रज = रहित, चेतसा = चित्त से, पश्य = दर्शन कीजिये, सर्वदा = सदैव, जप= जप कीजिये, ध्यायस्य = ध्यान कीजिये ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज! आप देवी के परायण हो जाइये । उसी का यजन कीजिए और उसी के शरण में रहिये। आप चित्त में देवी का सदैव दर्शन कीजिये, उसी का जप और ध्यान कीजिये ।

श्लोक ११–

अनन्यया प्रेमयुक्तभक्त्या मद्भावमाश्रितः ।
यज्ञैर्यज तपोदानैर्मामेव परितोषय ।।

अन्वय–

मद्भावमाश्रितः अनन्यया प्रेमयुक्तभक्त्या
यज्ञैर्यज तपोदानैर्मामेव परितोषय ।

पदच्छेद अर्थसहित–

मद्भावमाश्रितः (मद् + भावम् + आश्रितः) = मेरा उपासक बनकर, अनन्यया = अनन्य, प्रेमयुक्तभक्त्या= प्रेमयुक्त भक्ति के द्वारा, यज्ञैः = यज्ञों द्वारा, यज = यजन कीजिये, तपोदानैर्मामेव (तपः+दानैः+ माम्+ एव) = तप और दान से मुझको ही, परितोषय = पूर्ण रूप से सन्तुष्ट कीजिये ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! आप अनन्य एवं प्रेमपूर्ण भक्ति से मेरे उपासक बनकर यज्ञों के द्वारा मेरी पूजा कीजिये और तपस्या तथा दान के द्वारा मुझको ही सन्तुष्ट कीजिये ।

श्लोक १२–

इत्थं ममानुग्रहतो मोक्ष्यसे भवबन्धनात् ।
मत्परा ये मदासक्तचित्ता भक्तवरा मताः ।।

अन्वय–

इत्थं ममानुग्रहतो भवबन्धनात् मोक्ष्यसे ।
ये मत्परा मदासक्तचित्ता (ते) भक्तवराः मताः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

इत्थम् = इस प्रकार, ममानुग्रहत: (मम + अनुग्रहत:) = मेरी कृपा से, भवबन्धनात् = भवबन्धन से, मोक्ष्यसे = छूट जायेंगे, ये = जो, मत्परा: = मेरे परायण, मदासक्तचित्ता: (मत् + आसक्तचित्ता:) = जिसका चित्त मुझमे लगा हुआ है, भक्तवरा: = उत्तम भक्त, मता: = माने गये हैं ।

भावार्थ–

ऐसा करने पर मेरी कृपा से आप भवबन्धन से छूट जायेंगे । जो मेरे ऊपर निर्भर रहते हैं और अपना चित्त मुझमें लगाये रखते हैं, वे मेरे उत्तम भक्त माने गये हैं ।

श्लोक १३–

प्रतिजाने भवादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु ।
ध्यायेन कर्मयुक्तेन भक्तिज्ञानेन वा पुनः ।।

अन्वय–

प्रतिजाने तु अस्मात् भवात् अचिरेण उद्धरामि ।
ध्यानेन कर्मयुक्तेन वा पुनः भक्तिज्ञानेन (प्राप्याहम्) ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

प्रतिजाने = मेरी प्रतिज्ञा है, अस्मात् = इस से, भवात् = भवसागर से, अचिरेण= शीघ्र ही, उद्धरमि= उद्धार कर देती हूँ, ध्यायेन = ध्यान द्वारा, कर्मयुक्तेन = कर्मयुक्त द्वारा, वा = अथवा, पुन: = फिर, भक्तिज्ञानेन = भक्तिपूर्ण ज्ञान द्वारा ।

भावार्थ–

यह मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं शीघ्र ही इस भवसागर से उनका उद्धार कर देती हूँ । हे राजन! मैं सर्वथा कर्मयुक्त ध्यान से अथवा भक्तिपूर्ण ज्ञान से ही प्राप्त हो सकती हूँ ।

श्लोक १४–

प्राप्याहं राजन्न तु केवलकर्मभिः ।
धर्मात्सञ्जायते भक्तिर्भक्त्या सञ्जायते परम् ।।

अन्वय–

राजन् अहं तु केवलकर्मभिः न प्राप्या ।
धर्मात् भक्तिः सञ्जायते भक्त्या परं सञ्जायते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

राजन् = हे राजन् । अहम् = मैं, केवलकर्माभिः = मात्र कर्मों द्वारा, न = नहीं, प्राप्या = प्राप्त होने वाली, धर्मात् = धर्म से, भक्तिः = भक्ति, सञ्जायते = उत्पन्न होती है, भक्त्या = भक्ति से, परम् = परब्रह्म, सञ्जायते = ज्ञान होता है ।

भावार्थ–

हे राजन ! केवल कर्मों से मेरी प्राप्ति सम्भव नहीं है । धर्म से भक्ति उत्पन्न होती है और भक्ति से परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है ।

श्लोक १५–

श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत्स धर्मः प्रकीर्तितः ।
अन्यशास्त्रेण यः प्रोक्तो धर्माभासः स उच्यते ।।

अन्वय–

यत् श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं स धर्मः प्रकीर्तितः ।
यः अन्यशास्त्रेण प्रोक्तः स धर्माभास उच्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यत् = जो, श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितम् (श्रुतिस्मृतिभ्याम् + उदितम्) = वेदों और स्मृति द्वारा प्रतिपादित, सः = वह, धर्मः = धर्म, प्रकीर्तितः = कहा गया है, यः = जो, अन्यशास्त्रेण = अन्य शास्त्रों के द्वारा, प्रोक्तः = कहा गया है, सः = वह, धर्माभासः = धर्माभास, उच्यते = कहा जाता है ।

भावार्थ–

श्रुति और स्मृति के द्वारा जो कुछ प्रतिपादित है, वही धर्म कहा गया है । अन्य शास्त्रों के द्वारा जो निरूपित किया गया है, उसे धर्माभास कहा जाता है ।

श्लोक १६–

सर्वज्ञात्सर्वशक्तेश्च मत्तो वेदः समुत्थितः ।
अज्ञानस्य ममाभावादप्रमाणा न च श्रुतिः ।।

अन्वय–

सर्वज्ञात्सर्वशक्तेश्च मत्तो वेदः समुत्थितः ।
मम अज्ञानस्य अभावात् च श्रुतिः अप्रमाणा न ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सर्वज्ञात् = सर्वज्ञ से, सर्वशक्तेः = सर्वशक्तिसम्पन्न से, च = और मत्तः = मुझसे, वेदः = वेद, समुत्थितः = उत्पन्न, मम = मेरा, अज्ञानस्य = अज्ञान का, अभावात् = अभाव होने से, श्रुतिः = वेद, अप्रमाणा = प्रमाण रहित, न = नहीं ।

भावार्थ–

मुझ सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिसम्पन्न भगवती से वेद उत्पन्न हुआ है और इसप्रकार मुझमें अज्ञान का अभाव रहने के कारण श्रुति अप्रमाणिक नहीं है ।

श्लोक १७–

स्मृतयश्च श्रुतेरर्थं गृहीत्वैव च निर्गताः ।
मन्वादीनां श्रुतीनां च ततः प्रामाण्यमिष्यते ।।

अन्वय–

स्मृतयश्च श्रुतेरर्थं गृहीत्वैव च निर्गताः ।
ततः श्रुतीनां मन्वादीनां च प्रामाण्यमिष्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

स्मृतयः = स्मृतियाँ, च = और, श्रुतेः = श्रुति के, अर्थम् = अर्थ को, गृहीत्वैव, गृहीत्वा + एव) = ग्रहण करके ही, निर्गताः = निकली हैं, ततः = इसलिए, श्रुतीनाम् = वेदों की, मन्वादीनाम् = मनु आदि स्मृतियों की, प्रामाण्यमिष्यते (प्रामाण्यम् + इष्यते) = प्रामाणिकता स्वयं सिद्ध है ।

भावार्थ–

श्रुति के अर्थ को लेकर ही स्मृतियाँ निकली हुई हैं । अतः श्रुतियों और मनु आदि स्मृतियों की प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध है ।

श्लोक १८–

क्वचित्कदाचित्तन्त्रार्थकटाक्षेण परोदितम् ।
धर्मं वदन्ति सोंऽशस्तु नैव ग्राह्योऽस्ति वैदिकैः ।।

अन्वय–

क्वचित्कदाचित् कटाक्षेण परोदितं तन्त्रार्थं धर्मं वदन्ति।
वैदिकैः सोंऽशस्तु नैव ग्राह्योऽस्ति ।

पदच्छेद अर्थसहित–

क्वचित् = कहीं - कहीं, कदाचित् = कभी-कभी, कटाक्षेण = कटाक्ष द्वारा, परोदितम् = वेदविरुद्ध, तन्त्रार्थम् = वामाचार को, धर्मम् = धर्म, वदन्ति = कह देते हैं, वैदिकै: = वैदिक विद्वानों के द्वारा, सोंऽशस्तु (स: + अंश: + तु) = वह अंश, नैव (न+ एव) = नहीं, ग्राह्य: = ग्रहणीय अस्ति है ।

भावार्थ–

स्मृति आदि में कहीं कहीं-कटाक्षपूर्वक वामाचार सम्बन्धी वेदविरुद्ध कही गयी बात को भी लोग धर्म के रूप में स्वीकार करते हैं, किन्तु वैदिक विद्वानों के द्वारा वह अंश कभी भी ग्राह्य नहीं है ।

श्लोक १९–

अन्येषां शास्त्रकर्तृणामज्ञानं प्रभवत्वतः ।
अज्ञानदोषदुष्टत्वात्तुदुक्तेर्न प्रमाणता ।।

अन्वय–

अन्येषां शास्त्रकर्तृणामज्ञानं प्रभवतु ।
अतः अज्ञानदोषदुष्टत्वात् तदुक्तेः प्रमाणता न ।

पदच्छेद अर्थसहित–

अन्येषाम् = अन्य के, शास्त्रकर्तृणाम् = शास्त्रकर्त्ताओं के, अज्ञानम् = अज्ञान, प्रभवतु = हो सकता है, अत: = इसलिए, अज्ञानदोषदुष्टत्वात् = अज्ञान दोष से, दूषित होने के कारण, तत् = वह, उक्ते:= उक्ति की, प्रमाणता = प्रामाणिक, न= नहीं ।

भावार्थ–

अन्य शास्त्रकर्त्ताओं के वचन अज्ञानमूलक भी हो सकते हें । अत: अज्ञान् दोष से दूषित होने के कारण उनकी उक्ति की कोई प्रामाणिकता नहीं है ।

श्लोक २०–

तस्मान्मुमुक्षुधर्मार्थं सर्वथा वेदमाश्रयेत् ।
राजाज्ञा च यथा लोके हन्यते न कदाचन ।।

अन्वय–

तस्मान्मुमुक्षुधर्मार्थं सर्वथा वेदमाश्रयेत् ।
यथा लोके च राजाज्ञा कदाचन न हन्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तस्मात् = इसलिए, मुमुक्षुधर्मार्थम् = मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले को, धर्मार्थम् = धर्म सम्पादन हेतु, सर्वथा = सब प्रकार से, वेदम् = वेद को, आश्रयेत् = आश्रय ग्रहण करना चाहिए, यथा = जैसे, लोके = संसार में, राजाज्ञा = राजा की आज्ञा, कदाचन = कभी भी, न = नहीं, हन्यते = अवहेलना

की जाती है ।

भावार्थ–

इसलिए मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले को धर्म की प्राप्ति के लिए सदा वेद का आश्रय ग्रहण करना चाहिए । लोक में राजा की आज्ञा की अवहेलना कभी नहीं की जाती ।

श्लोक २१–

सर्वेषान्या ममाज्ञा सा श्रुतिस्त्याज्या कथं नृभिः ।
मदाज्ञा रक्षणार्थं तु ब्रह्मक्षत्रियजातयः ।।

अन्वय–

मम सर्वेशान्या आज्ञा सा श्रुतिः नृभिः कथं त्याज्या ।
ब्रह्मक्षत्रियजातयः तु मदाज्ञारक्षणार्थम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मम = मेरी, सर्वेशान्या = सर्वेश्वरी की, आज्ञा = आज्ञास्वरूप, सा = वह, श्रुतिः = वेद, नृभिः = मनुष्यों के द्वारा, कथम् = कैसे, त्याज्या = त्यागने योग्य, ब्रह्मक्षत्रियजातयः = ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जातियाँ, मदाज्ञारक्षणार्थम् = मेरी आज्ञा की रक्षा के लिए ।

भावार्थ–

मनुष्य मुझ सर्वेश्वरी भगवती की आज्ञास्वरूपिणी उस श्रुति का त्याग कैसे कर सकते हैं? मेरी आज्ञा के पालन के लिए ही तो ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि जातियाँ मेरे द्वारा सृजित की गयी हैं ।

श्लोक २२–

मया सृष्टास्ततो ज्ञेयं रहस्यं मे श्रुतेर्वचः ।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर ।

अन्वय–

मया सृष्टाः श्रुतेर्वचः रहस्यं मे ज्ञेयम् ।
भूधर यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मया = मेरे द्वारा, सृष्टाः = सृजित की गयी, श्रुतेः = वेद की, वचः = वाणियाँ, रहस्यम् = रहस्य को, मे = मेरा, ज्ञेयम् = ज्ञेय, भूधर = हे पर्वतराज, यदा यदा = जब-जब, धर्मस्य = धर्म की, ग्लानिः= हानि, भवति = होती है ।

भावार्थ–

अब मेरी श्रुति की वाणी का रहस्य सुनिये । हे पर्वतराज ! जब-जब धर्म की हानि होती है । और-

श्लोक २३–

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा वेषान्बिभर्म्यहम् ।
देवदैत्यविभागश्चाप्यत एवाभवन्नृप ।।

अन्वय–

अधर्मस्य अभ्युत्थानं तदा अहं वेषान्बिभर्मि ।
नृप देवदैत्यविभागश्चाप्यत एवाभवत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अधर्मस्य = अधर्म का, अभ्युत्थानम् = बुद्धि, तदा = तब, अहम् = मैं, वेषान् = अवतार, बिभर्मि= धारण करती हूँ, नृप = हे राजन् , देवदैत्यविभाग: = देवताओं और दैत्यों का विभाग, च = और, अपि = भी, अत एव = इसी से, अभवत् = हुआ है ।

भावार्थ–

जब-जब अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं विभिन्न अवतार धारण करती हूँ । हे राजन! इसीलिए देवताओं और दैत्यों का विभाग हुआ है ।

श्लोक २४–

ये न कुर्वन्ति तद्धर्मं तच्छिक्षार्थं मया सदा ।
सम्पादितास्तु नरकास्त्रासो यच्छ्रवणाद्भवेत् ।।

अन्वय–

ये तद्धर्मं सदा न कुर्वन्ति तच्छिक्षार्थं ।
मया नरकाः सम्पादिताः यच्छ्रवणात् त्रासो भवेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ये = जो लोग, तत् = वह, धर्मम् = धर्म को, सदा = सदैव, न = नहीं, कुर्वन्ति, तत् = वह, शिक्षार्थम् = शिक्षा के लिए, मया = मेरे द्वारा, नरका: = नरक, सम्पादिता: = बनाये गये हैं, यच्छ्रवणात् (यत् + श्रृवणात्) = जिनके सुनने मात्र से, त्रास: = भय, भवेत् = होता है ।

भावार्थ–

जो लोग उन धर्मों का सदा आचरण नहीं करते, उन्हें शिक्षा देने के लिए मैंने अनेक नरकों की व्यवस्था कर रखी है, जिनके सुनने मात्र से भय उत्पन्न होता है ।

श्लोक २५–

यो वेदधर्ममुज्झित्य धर्ममन्यं समाश्रयेत् ।
राजा प्रवासयेद्देशान्निजादेतानधर्मिणः ।।

अन्वय–

यो वेदधर्ममुज्झित्य अन्यं धर्मं समाश्रयेत् ।
राजा एतानधर्मिणः निजाद्देशात् प्रवासयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यः = जो मनुष्य, वेदधर्मम् = वेद प्रतिपादित धर्म को, उज्झित्य = छोड़कर, अन्यम् = दूसरे को, धर्मम् = धर्म को, समाश्रयेत् = आश्रय ले लेते हैं, राजा = राजा, एतान् = इन, अधर्मिणः = अधर्मिकों को, निजात् = अपने से, देशात् = देश से प्रवासयेत् = निष्कासित कर दे ।

भावार्थ–

जो लोग वेदप्रतिपादित धर्म को छोड़कर अन्य धर्म का आश्रय लेते हैं, राजा को चाहिए कि वह ऐसे अधर्मियों को अपने राज्य से निष्कासित कर दे ।

श्लोक २६–

ब्राह्मणैर्न च सम्भाष्याः पंक्तिग्राह्या न च द्विजैः ।
अन्यानि यानि शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्विधानि च ।।

अन्वय–

ब्रह्मणैश्च सम्भाष्याः न द्विजैश्च पंक्तिगग्रह्या न ।
अस्मिन् लोके च यानि अन्यानि विविधानि शास्त्राणि। ।

पदच्छेद अर्थसहित–

ब्राह्मणैः = ब्राह्मणों के द्वारा, च = और, सम्भाष्याः = बात-चीत करने योग्य, द्विजैः = द्विजों के द्वारा, च = और, पंक्तिग्राह्या = पंक्ति में बैठने योग्य न = नहीं, अस्मिन् = इसमें, लोके = लोक में, यानि= जो, अन्यानि = अन्य, विविधानि = विविध, शास्त्राणि = शास्त्र ।

भावार्थ–

ब्राह्मण लोग ऐसे अधार्मिकों से बात-चीत न करें और द्विजगण उन्हें अपनी पंक्ति में न बैठायें । इस लोक में नानाविध जो अन्य शास्त्र हैं ।

श्लोक २७–

श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि तामसान्येक सर्वशः ।
वामं कापालकं चैव कौलकं भैरवागमः ।।

अन्वय–

श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि सर्वशः तामसान्येव ।
वामं कापालकं चैव कौलकं भैरवागमः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि = श्रुति-स्मृति विरुद्ध, सर्वशः = हर प्रकार से, तामसानि = तामस, एव = ही, वामम् = वाममार्ग, कापालकम् = कापालिक, कौलकम् = कौल, भैरवागमः = भैरव सम्प्रदाय ।

भावार्थ–

वे सब वेदों और स्मृतियों के विरुद्ध हैं । वे हर प्रकार से तामस हैं वाम, कापालिक, कौल और भैरवागम - ये ऐसे ही शास्त्र हैं ।

श्लोक २८–

शिवेन मोहनार्था प्रणीतो नान्यहेतुकः ।
दक्षशापाद् भृगोः शापाद्धीचस्य च शापतः ।।

अन्वय–

शिवेन मोहनाय प्रणीत अन्यहेतुको न ।
दक्षशापाद् भृगोः शापाद् दधीचस्य च शापतः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

शिवेन = शिव के द्वारा, मोहनाय = मोह में डाल देने के लिए, प्रणीतः = प्रतिपादित, अन्यहेतुकः= कोई अन्य कारण, न= नहीं, दशशापात् = दक्षप्रजापति के शाप से, भृगोः = महर्षि भृगु के, शापात्= शाप से, दधीचस्य = महर्षि दधीचि के, च = और, शापतः = शाप से ।

भावार्थ–

ये शास्त्र मोह में डाल देने के लिए शिवजी के द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं । दक्षप्रजापति के शाप से, महर्षि भृगु के शाप से और महर्षि दधीचि के शाप से -

श्लोक २९–

दग्धा ये ब्राह्मणवरा वेदमार्गबहिष्कृताः ।
तेषामुद्धरणार्थाय सोपानक्रमतः सदा ।।

अन्वय–

वेदमार्गबहिष्कृता ये ब्राह्मणवरा दग्धा ।
तेषामुद्धरणार्थाय सदा सोपानक्रमतः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

वेदमार्गबहिष्कृताः = वेद-मार्ग से च्युत, ये = जो, ब्राह्मणवराः = श्रेष्ठ ब्राह्मण, तेषाम् = उनके, उद्धरणार्थाय = उद्धार के लिए, सदा = सदैव, सोपानक्रमतः = सोपान क्रम से ।

भावार्थ–

वेद-मार्ग से च्युत होने के कारण जो उच्चकोटि के ब्राह्मण दग्ध कर दिये गये थे, उनके उद्धार के लिए सोपान-क्रम से—

श्लोक ३०–

शैवाश्च वैष्णवाश्चैव सौराः शाक्तास्तथैव च ।
गाणपत्या आगमाश्च प्रणीताः शङ्करेण तु ।।

अन्वय–

शैवाश्च, वैष्णवाश्चैव सौराः शाक्तास्तथैव च ।
गाणपत्या आगमाश्च शङ्करेण तु प्रणीताः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

शैवाः = शैव, च = और, वैष्णवाश्चैव (वैष्णवाः + च + एव) = वैष्णव, सौराः = सौर, शाक्ताः = शक्ति के उपासक, तथैव = इसीप्रकार गाणपत्याः = गाणपत्य, आगमाः = आगम, च = और, शङ्करेण = भगवान शंकर के द्वारा, प्रणीताः = रचे गये ।

भावार्थ–

भगवान् शंकर ने शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त तथा गाणपत्य आगमों की रचना की ।

श्लोक ३१–

तत्र वेदविरुद्धोंऽशोऽप्युक्त एव क्वचित्क्वचित् ।
वैदिकैस्तद् ग्रहे दोषो न भवत्येव कर्हिचित् ।।

अन्वय–

तत्र वेदविरुद्धोंऽशोऽपि एव क्वचित्क्वचित् उक्तः।
वैदिकैस्तद् ग्रहे कर्हिचित् दोषो न भवत्येव ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत्र = वहाँ, वेदविरुद्धः = वेदविरुद्ध, अंशः = अंश, अपि = भी, एव = ही, क्वचित्क्वचित् = कही-कहीं, उक्तः = कहा गया, वैदिकैः = वैदिकों के द्वारा, तद् ग्रहे = उसे ग्रहण कर लेने में, कर्हिचित्= कोई, दोषः = दोष, न = नहीं, भवति = होता है, एव = ही ।

भावार्थ–

उनमें कहीं- कहीं वेदविरुद्ध अंश भी कहा गया है । वैदिकों को उस अंश के ग्रहण कर लेने में कोई दोष नहीं होता है ।

श्लोक ३२–

सर्वथा वेदभिन्नार्थे नाधिकारी द्विजो भवेत् ।

वेदाधिकारहीनस्तु भवेत्तत्राधिकारवान् ।।

अन्वय–

सर्वथा वेदभिन्नार्थे द्विज अधिकारी न भवेत् ।
तत्र वेदाधिकारहीनस्तु अधिकारवान् भवेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सर्वथा = सब प्रकार से, वेदभिन्नार्थे = वेद से भिन्न अर्थ स्वीकार करने के लिए, द्विज = ब्राह्मण, अधिकारी = अधिकार, सम्पन्न, न= नहीं, भवेत् = होता है, तत्र = ऐसी स्थिति में, वेदाधिकारहीनस्तु (वेद + अधिकार + हीनः + तु) = वेदाधिकार से रहित व्यक्ति, अधिकारवान् = अधिकारी, भवेत् = होता है ।

भावार्थ–

वेद से सर्वथा भिन्न अर्थ स्वीकार करने के लिए द्विज अधिकारी नहीं हैं । वेदाधिकार से रहित व्यक्ति ही उसे ग्रहण करने का अधिकारी है ।

श्लोक ३३–

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वैदिको वेदमाश्रयेत् ।
धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत् ।।

अन्वय–

तस्मात् वैदिकः सर्वप्रयत्नेन वेदमाश्रयेत् ।
धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तस्मात् = इसलिए, वैदिक = वेदों का अनुयायी, सर्वप्रयत्नेन = सब प्रकार के प्रयत्न से, वेदमाश्रयेत् (वेदम् + आश्रयेत्)= वेद का आश्रय ग्रहण करे, धर्मेण = धर्म से, सहितम् = युक्त, ज्ञानम् = ज्ञान, परम् = परम, ब्रह्म = ब्रह्म को, प्रकाशयेत् = प्रकाशित कर सकता है ।

भावार्थ–

अतः वैदिक पुरुष को पूरे प्रयत्न के साथ वेद का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए; क्योंकि वेद-प्रतिपादित धर्म से युक्त ज्ञान ही परब्रह्म को प्रकाशित कर सकता है ।

श्लोक ३४–

सर्वैषणाः परित्यज्य मामेव शरणं गताः ।
सर्वभूतदयावन्तो मानाहङ्कारवर्जिताः ।।

अन्वय–

सर्वैषणाः परित्यज्य मामेव शरणं गताः ।
सर्वभूतदयावन्तो मानाहङ्कारवर्जिताः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सर्वैषणाः (सर्व + एषणाः) = सभी इच्छाओं को, परित्यज्य = छोड़कर, मामेव (माम् + एव) = मेरे ही, शरणम् = शरण, गताः = प्राप्त, सर्वभूतदयावन्तः = सभी प्राणियों पर दया करने वाले, मानाहङ्कारवर्जिता (मान + अहङ्कारवर्जिता) = मान और अहंकार से रहित ।

भावार्थ–

सम्पूर्ण इच्छाओं को त्यागकर मेरी ही शरण को प्राप्त, सभी प्राणियों पर दया करने वाले, मान-अहंकार से रहित—

श्लोक ३५–

मच्चित्ता मद्गतप्राणा मत्स्थानकथने रताः ।
संन्यासिनो वनस्थाश्च गृहस्था ब्रह्मचारिणः ।।

अन्वय–

मच्चित्ता मद्गतप्राणा मत्स्थानकथने रताः ।
संन्यासिनो वनस्थाश्च गृहस्था ब्रह्मचारिणः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मच्चिताः (मत् + चित्ताः) = मेरा ही चिन्तन करने वाले, मद्गतप्राणाः = मुझमें ही अपना प्राण समर्पित करने वाले, मत्स्थानकथने = मेरे स्थानों का वर्णन करने में, रताः = संलग्न रहने वाले, संन्यासिनः= संन्यासी, वनस्थाः = वानप्रस्थ, च = और, गृहस्थाः = गृहस्थ, ब्रह्मचारिणः = ब्रह्मचारी ।

भावार्थ–

मन से मेरा ही चिन्तन करने वाले, मुझमें ही अपना प्राण समर्पित करने वाले तथा मेरे स्थानों का वर्णन करने में संलग्न रहने वाले जो संन्यासी, वानप्रस्थ, गृहस्थ और ब्रह्मचारी -

श्लोक ३६-३७–

उपासन्ते सदा भक्त्यायोगमैश्वरसंज्ञितम् ।
तेषां नित्याभियुक्तानामहमज्ञानजं तमः ।।
ज्ञानसूर्यप्रकाशेन नाशयामि न संशयः ।
इत्थं वैदिक पूजायाः प्रथमाया नगाधिप ।।

अन्वय–

ऐश्वरसंज्ञितं योगं सदा भक्त्या उपासन्ते ।

अहं तेषां नित्याभियुक्त्यानामज्ञानजं तमः ।
ज्ञानसूर्यप्रकाशेन नाशयामि । संशयः न ।
नगाधिप ! इत्थं प्रथमाया वैदिकपूजायाः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ऐश्वरसंज्ञितम् = ऐश्वर नामक, योगम् = योग को, सदा = सदैव, भक्त्या = भक्तिपूर्वक, उपासन्ते = उपासना करते हैं, अहम् = मैं, तेषाम् = उनके, नित्याभियुक्तानाम् (नित्य + अभियुक्तानाम्) = निरन्तर अनुरक्त रहने वाले, अज्ञानजम् = अज्ञान से उत्पन्न, तमः = अन्धकार को, ज्ञानसूर्यप्रकाशेन= ज्ञान रूपी सूर्य के प्रकाश से, नाशयामि = नष्ट करती हूँ, संशयः = सन्देह, न= नहीं, नगाधिप = पर्वतराज, इत्थम् = इस प्रकार, प्रथमाया = पहले का, वैदिक पूजायाः = वैदिक पूजा का ।

भावार्थ–

मेरे ऐश्वरसंज्ञक योग की सदा भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं - मुझमें निरन्तर रहने वाले उन साधकों के अज्ञानजनित अन्धकार को मैं ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश से नष्ट कर देती हूँ, इसमें सन्देह नहीं है । हे पर्वतराज ! इस प्रकार मैनें पहली वैदिक पूजा के स्वरूप का संक्षेप में वर्णन कर दिया ।

श्लोक ३८- ३९–

स्वरूपमुक्तं संक्षेपाद् द्वितीयाया अथो ब्रुवे ।
मूर्तौ वा स्थण्डिले वापि तथा सूर्येन्दुमण्डले ।
जलेऽथवा बाणलिङ्गे यन्त्रे वापि महापटे ।
तथा श्रीहृदयाम्भोजे ध्यात्वा देवीं परात्पराम् ।।

अन्वय–

संक्षेपात् स्वरूपमुक्तम् अथो द्वितीयाया ब्रुवे ।
मूर्तौ वा स्थण्डिले वापि तथा सूर्येन्दुमण्डले ।।
जलेऽथवा बाणलिङ्गे यन्त्रे वापि महापटे ।
तथा श्रीहृदयाम्भोजे परात्परां देवीं ध्यात्वा ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

संक्षेपात् = संक्षेप में, स्वरूपम् = स्वरूप को, उक्तम् = कहा, अथ = इसके बाद, द्वितीयाया = दूसरे स्वरूप का, ब्रुवे = वर्णन करती हूँ, मूर्तौ = मूर्ति में, स्थण्डिले = वेदी में, वा+अपि, = अथवा, सूर्य + इन्दुमण्डले = सूर्य या चन्द्रमा के मण्डल में, जले = जल में, अथवा = या, बाणलिङ्गे = बाणलिङ्ग में, यन्त्रे = यन्त्र में, महापटे = महापट में, श्रीहृदयाम्भोजे = हृदयकमल में, परात्पराम् = परात्पर, देवीम् = देवी को, ध्यात्वा = ध्यान करके ।

भावार्थ–

अब दूसरी पूजा के विषय में बता रही हूँ । मूर्ति, वेदी, सूर्य-चन्द्रमण्डल, जल, बाणलिङ्ग, यन्त्र, महापट अथवा हृदय-कमल में सगुण रूप वाली परात्पर भगवती का इस प्रकार ध्यान करे -

श्लोक ४०–

सगुणां करुणापूर्णां तरुणीमरुणारुणाम् ।
सौन्दर्यसारसीमां तां सर्वावयवसुन्दरीम् ।।

अन्वय–

तां सगुणां करुणापूर्णां तरुणीमरुणारुणाम् ।
सौन्दर्यसारसीमां सर्वावयवसुन्दरीम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ताम् = उन देवी को, सगुणाम् = सगुण, करुणापूर्णाम् = करुणा से परिपूर्ण, तरुणीम् = तरुणी, अरुणारुणाम् = अरुण के समान अरुण आभा से युक्त, सौन्दर्यसारसीमाम् = सौन्दर्य के सार तत्त्व की सीमा, सर्वावयवसुन्दरीम् = सम्पूर्ण मनोहर अंगों वाली ।

भावार्थ–

कि वे करुणा से परिपूर्ण हैं, तरुण अवस्था वाली हैं, अरुण के समान अरुण आभा से युक्त हैं और सौन्दर्य के सार तत्त्व की सीमा हैं तथा उनके सम्पूर्ण अंग परम मनोहर हैं ।

श्लोक ४१–

शृंगाररससमपूर्णां सदा भक्तार्तिकातराम् ।
प्रसादसुमुखीमम्बां चन्द्रखण्डशिखण्डीनीम् ।।

अन्वय–

शृंगाररससम्पूर्णां सदा भक्तार्तिकातराम् ।
प्रसादसुमुखीं चन्द्रखण्डशिखण्डिनीम् अम्बाम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

शृंगाररससम्पूर्णाम् = शृंगार रस से परिपूर्ण, सदा = सदैव, भक्तार्तिकातराम् = भक्तों के दु;ख से दु:खी, प्रसादसुमुखीम् = प्रसन्नता से युक्त, मुख= मण्डल वाली, चन्द्रखण्डशिखण्डिनीम् = बाल चन्द्रमा और मयूर पंख वाली, अम्बाम् = देवी माँ को ।

भावार्थ–

माता जगदम्बा शृंगार रस से परिपूर्ण हैं तथा सदा भक्तों के दु:ख से दु:खी रहा करती हैं । उनका मुख-मण्डल प्रसन्नता से युक्त रहता है । वे मस्तक पर बाल चन्द्रमा और मयूर पंख धारण की हुई हैं ।

श्लोक ४२–

पाशाङ्कुशवराभीतिधरामानन्दरूपिणीम् ।
पूजयेदुपचारैश्च यथावित्तानुसारतः ।।

अन्वय–

पाशाङ्कुशवराभीतिधरामानन्दरूपिणीम् ।
यथावित्तानुसारतः उपचारैश्च पूजयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पाश + अङ्कुश + वराभीतिधराम् = पाश, अङ्कुश और अभय मुद्रा धारण करने वाली देवी को, आनन्दरूपिणीम् = आनन्दमयस्वरूप वाली को, यथावित्तानुसारतः = यथ + वित्त + अनुसारतः = वित्त के अनुसार, उपचारैश्च (उपचारैः + च) = उपचारों से, पूजयेत् = पूजन करना चाहिए ।

भावार्थ–

उन देवी ने पाश, अङ्कुश, वर तथा अभय मुद्रा धारण कर रखा है । वे आनन्दमय रूप से सम्पन्न हैं— इस प्रकार ध्यान करके अपने वित्त सामर्थ्य के अनुसार विभिन्न उपचारों से भगवती की पूजा करनी चाहिए ।

श्लोक ४३–

यावदान्तरपूजायामधिकारो भवेन्न हि ।
तावद् बाह्यामिमं पूजां श्रयेज्जाते तु तां त्यजेत् ।।

अन्वय–

हि यावदान्तरपूजायामधिकारो न भवेत् ।
तावद् इमां बाह्यां पूजां श्रयेत् जाने तु तां त्यजेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

हि = क्योंकि, यावत् = जब तक, आन्तरपूजायाम् = अन्तः पूजा में, अधिकारः = अधिकार, न=नहीं, भवेत् = होता है, तावत् = तब तक, इमाम् = इसको, बाह्याम् = बाह्य को, पूजाम् = पूजा को, श्रयेत्= आश्रय लेना चाहिए, जाते = अन्तःपूजा में अधिकार हो जाने पर, ताम् = बाह्य पूजा को, त्येजेत् = छोड़ देना चाहिए ।

भावार्थ–

जब तक अन्तःपूजा में अधिकार नहीं हो जाता, तब तक यह बाह्य पूजा करनी चाहिए । पुनः अन्तःपूजा में अधिकार हो जाने पर उस बाह्य पूजा को छोड़ देना चाहिए ।

श्लोक ४४–

आभ्यन्तरा तु या पूजा सा तु संविल्लयः स्मृतः।

संविदेव परं रूपमुपाधिरहितं मम ।।

अन्वय–

या तु आभ्यन्तरा पूजा सा तु संविल्लयः स्मृतः ।
संविदेव मम उपाधिरहितं परं रूपम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

या = जो, आभ्यान्तरा = आन्तरकि, पूजा = पूजा, सा = वह, संविल्लयः (संवित् + लयः) = ज्ञान का लय, स्मृतः = कहा गया है, संविदेन (संविद् + एव) = ज्ञान ही, मम = मेरा, उपाधिरहितम् = उपाधिरहित, परम् = परम, रूपम् = रूप ।

भावार्थ–

जो आभ्यन्तर पूजा है, उसे ज्ञानरूप मुझ ब्रह्म में चित्त का लय होना कहा गया है । उपाधिरहित ज्ञान ही मेरा परम रूप है ।

श्लोक ४५–

अतः संविदि मद्रूपे चेतः स्थाप्यं निराश्रयम् ।
संविद्रूपातिरिक्तं तु मिथ्या मायामयं जगत् ।।

अन्वय–

अतः मत् संविदि रूपे निराश्रयं चित्तं स्थाप्यम् ।
संविद्रूपातिरिक्तं तु मायामयं जगत् मिथ्या ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अतः = इसलिए, मत् = मेरे, संविदि = ज्ञान में, रूपे = रूप में, निराश्रयम् = आश्रयरहित, चित्तम्= चित्त को, स्थाप्यम् = लगा देना चाहिए, संविद्रूपातिरक्तिम् (संवित् +रूप+अतिरिक्तम्) = ज्ञानमय रूप के अतिरिक्त, मायामयम् = मायामय, जगत् = संसार, मिथ्या = मिथ्या ।

भावार्थ–

अतः मेरे ज्ञानमय रूप में अपना आश्रयहीन चित्त लगा देना चाहिए । मेरे इस ज्ञानमय रूप के अतिरिक्त यह मायामय जगत् पूर्णतः मिथ्या है ।

श्लोक ४६–

अतः संसारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीम् ।
भावयेन्निर्मनस्केन योगयुक्तेन चेतसा ।।

अन्वय–

अतः संसारनाशाय निर्मनस्केन योगयुक्तेन चेतसा ।

साक्षिणीम् आत्मरूपिणीं भावयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

अतः = इसलिए, संसारनाशाय = भवबन्धन के नाश के लिए, निर्मनस्केन = एकनिष्ठ, योगयुक्तेन= योगयुक्त, चेतसा = चित्त से, साक्षिणीम् = सब की साक्षी, आत्मरूपिणीम् = आत्मस्वरूपिणी भगवती को, भावयेत् = चिन्तन करना चाहिए ।

भावार्थ–

अतः भवबन्धन के नाश के लिए एकनिष्ठ तथा योगयुक्त चित्त मुझ सर्वसाक्षिणी तथा आत्मस्वरूपिणी भगवती का चिन्तन करना चाहिए ।

श्लोक ४७–

अतः परं बाह्यपूजाविस्तारः कथ्यते मया ।
सावधानेन मनसा शृणु पर्वतसत्तम ।।

अन्वय–

पर्वतसत्तम् अतः मया बाह्यपूजाविस्तारः ।
कथ्यते सावधानेन मनसा शृणु ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पर्वतसत्तम = हे पर्वतश्रेष्ठ, अतः = इससे, परम् = श्रेष्ठ, मया = मेरे द्वारा, बाह्यपूजाविस्तारः = बाह्य पूजा का विस्तार, कथ्यते = कहा जा रहा है, सावधानेन = सावधानी से, मनसा = मन से, शृणु = सुनिये ।

भावार्थ–

हे पर्वतराज ! इसके बाद में बाह्यपूजा का विस्तारपूर्वक वर्णन कर रही हूँ । आप सावधान मन से सुनिये।

चत्वारिंशोऽध्यायः (चालीसवाँ अध्याय)

देव्युवाच

श्लोक १-२–

प्रातरुत्थाय शिरसि संस्मरेत्पद्ममुज्ज्वलम् ।
कर्पूराभं स्मरेत्तत्र श्रीगुरुं निजरूपिणम् ।।
सुप्रसन्नं लसद्भूषाभूषितं शक्तिसंयुतम् ।
नमस्कृत्य ततो देवीं कुण्डलीं संस्मरेद् बुधः ।।

अन्वय–

प्रातरुत्थाय शिरसि कर्पूराभम् उज्ज्वलं पद्मं संस्मरेत्

तत्र सुप्रसन्नं लसद्भूषाभूषितं शक्तिसंयुतं श्रीगुरुं ।
नमस्कृत्य ततो बुधः श्रीगुरुं देवीं कुण्डलिनीं संस्मरेत्।।

पदच्छेद अर्थसहित–

प्रातरुत्थाय (प्रातः + उत्थाय) = प्रातः उठकर, शिरसि = सिर में प्रतिष्ठित ब्रह्मरन्ध्र में, कर्पूराभम् (कर्पूर + आभम्) = कर्पूर के समान आभा वाले, उज्ज्वलम् = उज्ज्वल, पद्मम् = कमल को, संस्मरेत्= ध्यान करना चाहिए, तत्र = वहाँ, सुप्रसन्नतम् = अत्यन्त प्रसन्न, लसद्भूषाभूषितम् = वस्त्राभूषण से सुसज्जित, शक्तिसंयुतम् = शक्ति से युक्त, श्रीगुरुम् = श्रीगुरुदेव को, नमस्कृत्य = नमस्कार करके, ततः = इसके बाद, बुधः = विद्वान् साधक, देवीम् = देवी को, कुण्डलिनीम् = कुण्डलिनी शक्ति को, संस्मरेत् = स्मरण करे ।

भावार्थ–

प्रातःकाल उठकर सिर में प्रतिष्ठित ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार-चक्र) में कर्पूर के समान आभा वाले उज्ज्वल कमल का ध्यान करना चाहिए । उस पर अत्यन्त प्रसन्न, वस्त्र, आभूषण से सुसज्जित तथा शक्ति से युक्त अपने ही स्वरूप वाले श्रीगुरु विराजमान हैं - ऐसी भावना करनी चाहिए । उन्हें प्रणाम करने के पश्चात् विद्वान् साधक को भगवती कुण्डलिनी शक्ति का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ।

श्लोक ३–

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ।
अन्तः पदव्यामनुसंचरन्ती - मानन्दरूपामबलां प्रपद्ये ।।

अन्वय–

प्रथमे प्रयाणे प्राकाशमानां प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ।
अन्तः पदव्यामनुसंचरन्ती - मानन्दरूपामबलां प्रपद्ये ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

प्रथमे प्रयाणे = प्रथम प्रयाण में अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में संचरण करने पर प्रकाशमानाम् = प्रकाश-पुंज रूप वाली, प्रतिप्रयाणे = मूलाधार में, संचरण करने पर, अपि = भी, अमृतायमानाम् = अमृतमय स्वरूप वाली, अन्तः = अन्तः पद में अर्थात् सुषुम्णा नाड़ी में, पदव्यामनुसंचरन्तीम् (पदवि +अनुसंत्वरन्तीम्= पद-न्यास करने पर, आनन्दरूपाम् = आनन्दस्वरूपिणी को, अबलाम् = देवी कुण्डलिनी को ।

भावार्थ–

प्रथम प्रयाण में अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में संचरण करने पर प्रकाश - पुंज रूप वाली, प्रतिप्रयाण में अर्थात् मूलाधार में संचरण करने पर अमृतमय स्वरूप वाली तथा अन्तःपद में अर्थात् सुषुम्णा नाड़ी में विराजने पर आनन्दमयी स्त्रीरूपिणी देवी कुण्डलिनी की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।

श्लोक ४–

ध्यात्वैवं तच्छिखामध्ये सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
मां ध्यायेदथ शौचादिक्रियाः सर्वाः समापयेत् ।।

अन्वय–

एवं ध्यात्वा तच्छिखामध्ये सच्चिदानन्दरूपिणीं मां ध्यायेत्।
अथ शौचादिक्रियाः सर्वाः समापयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

एवम् = इस प्रकार, ध्यात्वा = ध्यान करके, तच्छिखामध्ये = उसकी शिखा के मध्य, सच्चिदानन्दरूपिणीम्= सच्चिदानन्दरूपिणी को, माम् = मुझको, ध्यायेत् = ध्यान करे, अथ = इसके बाद, शौचादिक्रियाः= शौच आदि नित्य क्रियायें, सर्वाः = सभी, समापयेत् = सम्पन्न करनी चाहिए ।

भावार्थ–

इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान करके उसकी शिखा के मध्य में सच्चिदान्दरूपिणी मुझ भगवती का ध्यान करना चाहिए । इसके बाद शौच आदि सभी नित्य क्रियायें सम्पन्न करनी चाहिए ।

श्लोक ५–

अग्निहोत्रं ततो हुत्वा मत्प्रीत्यर्थं द्विजोत्तमः ।
होमान्ते स्वासने स्थित्वा पूजासङ्कल्पमाचरेत् ।।

अन्वय–

ततो द्विजोत्तमो मत्प्रीत्यर्थं अग्निहोत्रं हुत्वा ।
होमान्ते स्वासने स्थित्वा पूजासङ्कल्पमाचरेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ततः = इसके बाद, द्विजोत्तमः = द्विजश्रेष्ठ, मत्प्रीत्यर्थम् = मेरी प्रसन्नता के लिए, अग्निहोत्रम् = अग्निहोत्र को, हुत्वा = हवन करके, होमान्ते = होम के, अन्त में, स्वासने = अपने आसन पर, स्थित्वा = स्थित होकर, पूजासङ्कल्पम् = पूजा के संकल्प को, आचरेत् = करे ।

भावार्थ–

तत्पश्चात् श्रेष्ठ द्विज को चाहिए कि मेरी प्रसन्नता के लिए अग्निहोत्र करे । पुनः होम के अन्त में अपने आसन पर बैठकर पूजन का संकल्प करना चाहिए ।

श्लोक ६–

भूतशुद्धिं पुरा कृत्वा मातृकान्यासमेव च ।
ह्रल्लेखामातृकान्यासं नित्यमेव समाचरेत् ।।

अन्वय–

पुरा भूतशुद्धिं मातृकान्याससमेव च कृत्वा ।
ह्रल्लेखामातृकान्यासं नित्यमेव समाचरेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पुरा = पहले, भूतशुद्धिम् = भूतशुद्धि को, मातृकान्यासम् = मातृकान्यास को, एव = ही, च = और, कृत्वा = करके, ह्रल्लेखामातृकान्यासम् = ह्रल्लेखामातृका न्यास को नित्यम् = नित्य, एव = ही, समाचरेत् = कटना चाहिए ।

भावार्थ–

पहले भूतशुद्धि करके मातृकान्यास करे । ह्रल्लेखामातृकान्यास तो नित्य ही करना चाहिए ।

श्लोक ७–

मूलाधारे हकारं च हृदये च रकारकम् ।
भ्रूमध्ये तद्वदीकारं ह्रींकारं मस्तके न्यसेत् ।।

अन्वय–

मूलाधरे च हकारं हृदये च रकारकम् ।
तद्वद् भ्रूमध्ये ईकारं मस्तके ह्रींकारं न्यसेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मूलाधारे = मूलाधार में, च = और, हकारम् = हकार को, हृदये = हृदय में, च = और, रकारकम्= रकार को, तद्वत् = वैसे ही, भ्रूमध्ये = भौंहों के मध्य में, ईकारम् = ईकार को, मस्तके = मस्तक में, ह्रींकारम् = ह्रींकार को, न्यसेत् = न्यास करना चाहिए ।

भावार्थ–

मूलाधार में हकार और हृदय में रकार का ध्यान करना चाहिए । इसी प्रकार भ्रूमध्य में ईकार तथा मस्तक में ह्रींकार का न्यास करना चाहिए ।

श्लोक ८–

तत्तन्मन्त्रोदितानन्यान्नयासान्सर्वान्समाचरेत् ।
कल्पयेत्स्वात्मनो देहे पीठं कल्पयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत्तन्मन्त्रोदितान् (तत् + तत् + मन्त्र + उदितान्) = उन - उन मन्त्रों के कथन के अनुसार, अन्यान्= अन्य, सर्वान् = सभी, न्यासन् = न्यासों को, समाचरेत् = सम्पन्न करना चाहिए, पुनः = फिर, स्वात्मनः = अपनी, देहे = देह में, धर्मादिभिः = धर्म आदि सभी सत्कर्मों से परिपूर्ण, पीठम् = पीठ

को, कल्पयेत् = कल्पना करनी चाहिए ।

भावार्थ–

उन - उन मन्त्रों के कथनानुसार अन्य भी न्यासों को सम्पन्न करना चाहिए । फिर अपने शरीर में धर्म आदि सभी सत्कर्मों से परिपूर्ण एक दिव्य पीठ की कल्पना करनी चाहिए ।

श्लोक ९–

ततो ध्यायेन्महादेवीं प्राणायामैर्विजृम्भितै ।
हृदम्भोजे मम स्थाने पञ्चप्रेतासने बुधः ।।

अन्वय–

ततो बुधः प्राणायामैर्विजृम्भितै हृदम्भोजे ।
पञ्चप्रेतासने मम स्थाने महादेवीं ध्यायेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ततः = इसके बाद, बुधः = विज्ञ पुरुष, प्राणायामैः = प्राणायामों के द्वारा, विजृम्भिते = खिले हुए, हृदम्भोजे = हृदय-कमल में, पञ्चप्रेतासने = पंचप्रेतासन के ऊपर, मम = मेरा, स्थाने = स्थान पर, महादेवीम् = महादेवी को, ध्यायेत् = ध्यान करना चाहिए ।

भावार्थ–

तदनन्तर विज्ञ पुरुष को प्राणायाम के प्रभाव से खिले हुए अपने हृदयकमल रूप स्थान में पंचप्रेतासन के ऊपर महादेवी का ध्यान करना चाहिए ।

श्लोक १०–

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एते पञ्च महाप्रेताः पादमूले मम स्थिताः ।।

अन्वय–

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एते पञ्च महाप्रेताः मम पादमूले स्थिताः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ब्रह्मा = ब्रह्मा, विष्णुश्च = विष्णु, रुद्रश्च = रुद्र, ईश्वरश्च = ईश्वर, सदाशिवः = सदाशिव, एते = ये, पञ्च = पाँच, महाप्रेताः = महाप्रेत, मम = मेरा, पादमूले = पादमूल में, स्थिताः =स्थित हैं ।

भावार्थ–

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव - ये पाँचों महाप्रेत मेरे पादमूल में अवस्थित हैं ।

श्लोक ११–

पञ्चभूतात्मका ह्येते पञ्चावस्थात्मका अपि ।
अहं त्वव्यक्तचिद्रूपा तदतीतास्मि सर्वदा ।।

अन्वय–

हि एते पञ्चभूतात्मका पञ्चावस्थात्मका अपि ।
अहं त्वव्यक्तचिद्रूपा सर्वदा तदतीतास्मि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

एते = ये, पञ्चभूतात्मका = पाँच भूत, पञ्चावस्थात्मका = पाँच अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, नुरीय तथा अतीत - के स्वरूप वाले, अपि = भी, अहम् = मैं, त्वव्यक्तचिद्रूपा (तु + अव्यक्त + चित+ रूपा) = चिन्मय और अव्यक्त रूप वाली, तदतीतास्मि (तत् + अतीत + अस्मि) = इन सबसे सर्वथा परे हूँ ।

भावार्थ–

ये महाप्रेत पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश - इन पाँच भूतों एवं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय तथा अतीत - इन पाँच अवस्थाओं के स्वरूप हैं । चिन्मय तथा अव्यक्त रूप वाली मैं इन सबसे सर्वथा परे हूँ ।

श्लोक १२–

ततो विष्टरतां याताः शक्तितन्त्रेषु सर्वदा ।
ध्यात्वैवं मानसैर्भोगैः पूजयेन्मां जपेदपि ।।

अन्वय–

ततो शक्तितन्त्रेषु सर्वदा विष्टरतां याताः ।
एवं ध्यात्वा मानसैर्भोगैः मां पूजयेत् जपेदपि।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ततः = इसलिए, शक्तितन्त्रेषु = शक्तितन्त्रों में, सर्वदा = सदैव, विष्टरताम् = आसन रूप को, याताः= हो गये हैं, एवम् = इस प्रकार, ध्यात्वा = ध्यान करके, मानसैः = मानसिक, भोगैः = भोगो के द्वारा, माम् = मुझको, पूजयेत् = पूजा करे, जपेदपि (जपेत् + अपि) = और जप भी करे ।

भावार्थ–

देवीतन्त्रों में ब्रह्मा आदि का देवी के आसन रूप में परिणत होना सर्वदा प्रसिद्ध है । इस प्रकार ध्यान करके मानसिक भोगसामग्रियों से मेरी पूजा करे और मेरा जप भी करे ।

श्लोक १३–

जपं समर्प्य श्रीदेव्यै ततोऽर्घ्यस्थापनं चरेत् ।

पात्रासादनकं कृत्वा पूजाद्रव्याणि शोधयेत् ।।

अन्वय–

श्रीदेव्यै जपं समर्प्य ततोऽर्घ्यस्थापनं चरेत् ।
पात्रासादनकं कृत्वा पूजाद्रव्याणि शोधयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

श्रीदेव्यै: = श्रीदेवी के लिए, जपम् = जप को, समर्प्य = समर्पित करके, तत: = इसके बाद, अर्घ्यस्थापनम् = अर्घ्य की स्थापना, चरेत् = करना चाहिए, पात्रासदनकम् = पूजा-पात्रों को सामने रखना, कृत्वा = करके, पूजाद्रव्याणि = पूजा-सामग्री को, शोधयेत् = शुद्ध करना चाहिए ।

भावार्थ–

श्रीदेवी को जप अर्पण करके अर्घ्य -स्थापन करना चाहिए । सर्वप्रथम पूजा-पात्रों को सामने रखकर साधन अस्त्रमन्त्र (ॐ फट्) का उच्चारण करके जल में पूजा-द्रव्यों को शुद्ध करे ।

श्लोक १४–

जलेन तेन मनुना चास्त्रमनत्रेण देशिकः ।
दिग्बन्धं च पुरा कृत्वा गुरुन्नत्वा ततः परम् ।

अन्वय–

देशिकः तेज मनुना जलेन अस्त्रमन्त्रे च।
पुरा दिग्बन्धं च कृत्वा ततः परं गुरून्नत्वा ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

देशिक: = साधक, तेन = उसी के द्वारा, मनुना = मन्त्र से, जलेन = जल से, अस्त्रमन्त्रेण = अस्त्रमन्त्र (ॐ फट्) के द्वारा, च = और, पुरा = पहले, दिग्बन्धम् = दिग्बन्ध को, कृत्वा = करके, तत: = उसके बाद, परम् = अनन्तर, गुरुन्नत्वा (गुरुन् + नत्वा) = गुरु को प्रणाम करके ।

भावार्थ–

साधक इसी मन्त्र से गुरु को प्रणाम करने के अनन्तर—

श्लोक १५–

तदनुज्ञां समादाय बाह्यपीठे ततः परम् ।
हृर्दिस्थितां भावितां मूर्तिं मम दिव्यां मनोहराम्।।

अन्वय–

तदनुज्ञां समादाय ततः परं मम हृदिस्थां ।
भावितां दिव्यां मनोहरां मूर्तिम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तदनुज्ञाम् = उनकी यानि गुरु की आज्ञा को, समादाय = लेकर, ततः = उसके बाद, परम् = अनन्तर, मम = मेरी, हृदिस्थाम् = हृदय में स्थित, भाविताम् = भक्ति - भावना से भावित को, दिव्याम् = दिव्य को, मनोहराम् = मनोहर को, मूर्तिम् = मूर्ति को ।

भावार्थ–

उसके बाद गुरु की आज्ञा लेकर हृदय में स्थित और भक्ति - भावना से भावित मेरी दिव्य मनोहर मूर्ति को -

श्लोक १६-१७–

आवाहयेत्ततः पीठे प्राणस्थापनविद्यया ।
आसनावाहने चार्घ्यं पाद्याचमनं तथा ।
स्नानं वासोद्वयं चैव भूषणानि च सर्वशः ।
गन्धपुष्पं यथायोग्यं दत्वा देव्यै स्वभक्तितः।।

अन्वय–

प्राणस्थापनविद्याया पीठे आवाहयेत्
ततः आसनावाहने अर्घ्यं च पाद्याद्याचमनं तथा
स्नानं वासोद्वयं चैव सर्वशः भूषणानि च
यथायोग्यं गन्धपुष्पं स्वभक्तितः देव्यै दत्वा ।

पदच्छेद अर्थसहित–

प्राणस्थापन विद्यया = प्राणप्रतिष्ठा के मन्त्रों द्वारा, पीठे = पीठ पर, आवाहयेत् = आवाहन करे, ततः= इसके बाद आसनावाहने = आसन और आवाहन, अर्घ्यम् = अर्घ्य, पाद्याद्याचनम् (पाद्य + आदि + आचमनम्) = पाद्य और आचमन, तथा = और, स्नानम् = स्नान, वासोद्वयम् = दो वस्त्र, चैव = और भी, भूषणानि = आभूषण, सर्वशः = हर प्रकार के, यथायोग्यम् = यथोचित रूप से, गन्धपुष्पम् = गन्धपुष्प को, स्वभक्तितः = भक्तिपूर्वक, देव्यै = देवी के लिए, दत्त्वा = देकर ।

भावार्थ–

प्राणप्रतिष्ठा के मन्त्रों द्वारा पीठ पर आवाहित करे । इसके बाद आसन, आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, दो वस्त्र, हर प्रकार के आभूषण, गन्ध, पुष्प आदि भगवती को यथोचित रूप से भक्तिपूर्वक अर्पण करके—

श्लोक १८–

यन्त्रास्थानामावृतीनां पूजनं सम्यगाचरेत् ।

प्रतिवारमशक्तानां शुक्रवारो नियम्यते ।।

अन्वय–

यन्त्रास्थानामावृतीनां पूजनं सम्यगाचरेत् ।
प्रतिवारमशक्तानां शुक्रवारो नियम्यते ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

यन्त्रस्थानाम् = यन्त्र में, आवृतीनाम् = आवरण देवताओं की, पूजनम् = पूजा, सम्यक् = विधिपूर्वक, आचरेत् = करनी चाहिए, प्रतिवारम् = प्रत्येक दिन, अशक्तानाम् = असमर्थ लोगों के लिए, शुक्रवारः = शुक्रवार, नियम्यते = निर्धारित है ।

भावार्थ–

यन्त्र में लिखित आवरण देवताओं की पूजा विधिपूर्वक करनी चाहिए । जो लोग प्रत्येक दिन पूजा करने में असमर्थ हों, उनके लिए सप्ताह में एक दिन शुक्रवार को पूजा करने का दिन निर्धारित है ।

श्लोक १९–

मूलदेवीप्रभारूपाः स्मर्त्तव्या अङ्गदेवताः ।
तत्प्रज्ञापटलव्याप्तं त्रैलोक्यं च विचिन्तयेत् ।।

अन्वय–

मूलदेवीप्रभारूपाः अङ्गदेवताः स्मर्तव्या ।
तत्प्रभापटलव्याप्तं त्रैलोक्यं च विचिन्तयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

मूलदेवीप्रभारूपाः = मूल देवी के प्रभारूप, अङ्गदेवताः = अंग देवताओं को, स्मर्तव्या = स्मरणकरना चाहिए, तत्प्रभापटलव्याप्तम् = देवी के प्रभा-मण्डल में व्याप्त, त्रैलोक्यम् = तीनो लोक, च = और, विन्तियेत् = चिन्तन करना चाहिए ।

भावार्थ–

मूल देवी के प्रभास्वरूप आवरण देवताओं का ध्यान करना चाहिए । उन देवी के प्रभा-मण्डल में त्रिलोक व्याप्त है । ऐसा चिन्तन करना चाहिए ।

श्लोक २०–

पुनरावृत्तिसहितां मूलदेवीं च पूजयेत् ।
गन्धादिभिः सुगन्धैस्तु तथा पुष्पैः सुवासितैः ।।

अन्वय–

पुनरावृत्तिसहितां मूलदेवीं च गन्धादिभिः सुगन्धैः।

तथा सुवासितैः पुष्पैः पूजयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पुनः = फिर, आवृत्तिसहितम् = आवरण देवताओं के सहित, मूलदेवीम् = मूल देवी को, च = और, गन्धादिभिः = गन्ध आदि के द्वारा, सुगन्धैः = सुगन्धित द्रव्यों के द्वारा, तथा = और, सुवासितैः = सुन्दर वास से युक्त, पुष्पैः = फलों द्वारा, पूजयेत् = पूजन करना चाहिए ।

भावार्थ–

इसके बाद आवरण देवताओं के सहित मूल देवी का पूजन सुगन्धित गन्ध आदि द्रव्यों तथा सुन्दर वास से युक्त फलों से करना चाहिए ।

श्लोक २१–

नैवद्यैस्तर्पणैश्चैव ताम्बूलैर्दक्षिणादिभिः ।
तोषयेन्मां त्वत्कृतेन नाम्नां साहस्रकेण च ।।

अन्वय–

नैवेद्यैस्तर्पणैश्चैव ताम्बूलैर्दक्षिणादिभिः ।
त्वत्कृतेन नाम्नां साहस्रकेण च मां तोषयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नैवेद्यैः = विभिन्न प्रकार के नैवेद्यों से, तर्पणैः = विभिन्न प्रकार के तर्पणों से, चैव (च = एव) = और भी, ताम्बूलैः = ताम्बूलों से, दक्षिणादिभिः = दक्षिणाओं से, त्वत्कृतेन = आप द्वारा रचित, नाम्नां साहस्रकेण = सहस्रनाम से, च = और, माम् = मुझे, तोषयेत् = सन्तुष्ट करना चाहिए ।

भावार्थ–

इसके साथ - साथ विभिन्न प्रकार के नैवेद्यों, तर्पणों, ताम्बूलों और दक्षिणाओं तथा तुम्हारे द्वारा रचित सहस्रनाम से मुझे सन्तुष्ट करना चाहिए ।

श्लोक २२–

कवचेन च सूक्तेनाहं रुद्रेभिरिति प्रभो ।
देव्यथर्वशिरोमन्त्रैर्हल्लेखोपनिषद्भवैः ।।

अन्वय–

प्रभो कवचेन च अहं रुद्रेभिरिति सूक्तेन ।
देव्यथर्वशिरोमन्त्रैर्हल्लेखोपनिषद्भवैः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

प्रभो = हे राजन् , कवचेन = कवच से, च = और, अहं रुद्रेभिरिति अहं रुद्रेभिः इत्यादि, सुक्तेन =

सूक्त से, देव्यथर्वशिरोमन्त्रैः = देव्यथर्वशीर्ष मन्त्रों से, ह्रल्लेखोपनिषद्भवैः = ह्रल्लेखोपनिषद् सम्बन्धा।

भावार्थ–

हे राजन् ! साथ ही देवीकवच, अहं रुद्रेभिः इत्यादि सूक्त, ह्रल्लेखोपनिषद् सम्बन्धी देव्यथर्वशीर्ष मन्त्रों से मुझे प्रसन्न करना चाहिए ।

श्लोक २३–

महाविद्यामन्त्रैस्तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः ।
क्षमापयेज्जगद्धात्रीं प्रेमार्द्रहृदयो नरः ।।

अन्वय–

नरः महाविद्यामन्त्रैः मां मुहुर्मुहुः तोषयेत् ।
प्रेमाद्रहृदयो जगद्धात्रीं मां क्षमापयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

नरः = साधक या उपासक, महाविद्यामन्त्रैः = महाविद्या के प्रधान मन्त्रों से, माम् = मुझे, मुहुर्मुहुः = बार-बार, तोषयेत् = सन्तुष्ट करे, प्रेमाद्रहृदयः = प्रेम से आर्द्र हृदय वाला, जगद्धात्रीम् = जगत् की माता को, माम् = मुझे, क्षमापयेत् = क्षमापराध के लिए प्रार्थना करे ।

भावार्थ–

मेरे उपासक को चाहिए कि वह महाविद्या के प्रधान मन्त्रों से मुझे बार-बार प्रसन्न करे तथा प्रेम से आर्द्र हृदय वाला होकर मुझ जगन्माता के प्रति क्षमापराध के लिए प्रार्थना करे ।।

श्लोक–

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गैर्बाष्परुद्धाक्षिनिःस्वनः ।
नृत्यगीतादिघोषेण तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः ।।

अन्वय–

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गैः बाष्परुद्धाक्षिनिःस्वनः ।
नृत्यगीतादिघोषेण मां मुहुर्मुहुः तोषयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गैः (पुलक + अङ्कित + सर्व + अङ्गैः) = पुलकित समस्त अंगों से, बाष्परुद्धाक्षिनिःस्वनः (बाष्प + रुद्ध + अक्षि + निःस्वनः) = अश्रु से अवरुद्ध कण्ठ और नेत्र वाला, नृत्यगीतादिघोषेण = नृत्य और गीत आदि की ध्वनि से, माम् = मुझे, मुहुर्मुहुः = बार-बार, तोषयेत् = सन्तुष्ट करे ।

भावार्थ–

तत्पश्चात् पुलकित समस्त अंगों से युक्त, अश्रु से अवरुद्ध नेत्र और कण्ठ वाला वह साधक मुझे नृत्य

और गीत आदि की ध्वनि से बार-बार प्रसन्न करे ।

श्लोक २५–

वेदपारायणैश्चैव पुराणैः सकलैरपि ।
प्रतिपाद्या यतोऽहं वै तस्मात्तैस्तोषयेत्तु माम् ।।

अन्वय—

यतोऽहं वेदपारायणैश्चैव सकलैः पुराणैरपि ।
प्रतिपाद्या तस्मात् वै तैः माम् तु तोषयेत् ।।

पदच्छे अर्थसहित–

यतः = क्योंकि, अहम् = मैं, वेदपारायणैः = वेदों के पारायणों के द्वारा, च = और, एव = ही, सकलैः = सम्पूर्ण, पुराणैरपि (पुराणैः + अपि) = पुराणों के द्वारा भी, प्रतिपाद्या = प्रतिपाद्य, तस्मात्= इसलिए, तैः = उनके द्वारा, माम् = मुझे, तोषयेत् = प्रसन्न करना चाहिए ।

भावार्थ–

चूँकि मैं सभी वेदों तथा पुराणों की मुख्य प्रतिपाद्य विषय हूँ, अतः उनके पाठ पारायणों द्वारा मुझे प्रसन्न करना चाहिए ।

श्लोक २६-२७–

निजं सर्वस्वमपि मे सदेहं नित्यशोऽर्पयेत् ।
नित्यहोमं ततः कुर्याद् ब्राह्मणांश्च सुवासिनीः ।।
वटुकान्पामरानन्यान्देवीबुद्ध्या तु भोजयेत् ।
नत्वा पुनः स्वहृदये व्युत्क्रमेण विसर्जयेत् ।।

अन्वय–

सदेहं निजं सर्वमपि मे नित्यशोऽर्पयेत् ।
ततः नित्यहोमं कुर्याद् ब्राह्मणांश्च सुवासिनीः ।।
वटुकान्पामरानन्यान् तु देवीबुद्धया भोजयेत् ।
पुनः नत्वा स्वहृदये व्युत्क्रमेण विसर्जयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सदेहम् = देहसहित् , निजम् = अपना, सर्वमपि (सर्वम् + अपि) = सब कुछ, मे = मुझे, नित्यशोऽर्पयेत् (नित्यशः + अर्पयेत्) = नित्य अर्पित करना चाहिए, ततः = इसके बाद, नित्यहोमम= नित्यहोम, कुर्यात् = करना चाहिए, ब्राह्मणांश्च = ब्राह्मणों को, सुवासिनीः = सधवा स्त्रियों को, वटुकान् = ब्रह्मचारियों को, पामरान् = नीचों को, अन्यान् = अन्य दीन लोगों को, देवीबुद्धय=

देवी का रूप समझकर, भोजयेत् = भोजन कराना चाहिए, पुनः = फिर, नत्वा = नमस्कार करके, स्वहृदयो = अपने हृदय में, व्युत्क्रमेण = आवाहन के विपरीत क्रम से, विसर्जयेत् = विसर्जन करना चाहिए ।

भावाथ–

देहसहित अपना सब कुछ मुझे नित्य अर्पित कर देना चाहिए । इसके बाद नित्य होम करे । ब्राह्मणों, सधवा स्त्रियों, वटुकों तथा अन्य दीन लोगों को देवी का रूप समझकर उन्हें भोजन कराना चाहिए । पुनः नमस्कार करके अपने हृदय में जिस क्रम से आवाहन आदि किया हो, ठीक उसके विपरीत क्रम से विसर्जित करना चाहिए ।

श्लोक २८–

सर्वं ह्रल्लेखया कुर्यात् पूजनं मम सुव्रत ।
ह्रल्लेखा सर्वमन्त्राणां नायिका परमा स्मृता ।।

अन्वय–

सुव्रत मम सर्वं पूजनं ह्रल्लेखया कुर्यात् ।
ह्रल्लेखा सर्वमन्त्राणां परमा नायिका स्मृता ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सुव्रत = हे सुव्रत, मम = मेरी, सर्वम् = सम्पूर्ण, पूजनम् = पूजा, ह्रल्लेखया = ह्रल्लेखा (ह्रीं) मन्त्र के द्वारा, कुर्यात् = करनी चाहिए, ह्रल्लेखा = ह्रींकार, सर्वमन्त्राणाम् = सभी मन्त्रों की, परमा = श्रेष्ठ, नायिका = नायिका, स्मृता = कही गयी है ।

भावार्थ–

हे सुव्रत ! मेरी सम्पूर्ण पूजा ह्रल्लेखा (ह्रीं) मन्त्र से सम्पन्न करनी चाहिए; क्योंकि यह ह्रल्लेखा सभी मन्त्रों की परम नायिका कही गयी है ।

श्लोक २९–

ह्रल्लेखादर्पणे नित्यमहं तत्प्रतिबिम्बिता ।
तस्माद् ह्रल्लेखया दत्तं सर्वमन्त्रैः समर्पितम् ।।

अन्वय–

ह्रल्लेखादर्पणे अहं नित्यं तत्प्रतिबिम्बिता ।
तस्माद् ह्रल्लेखया दत्तं सर्वमन्त्रैः समर्पितम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ह्रल्लेखादर्पणे = ह्रल्लेखा रूपी दर्पण में, अहम् = मैं, नित्यम् = नित्य, तत्प्रतिबिम्बिता =

प्रतिबिम्बित, तस्मात् = इसलिए, ह्रल्लेखया = ह्रल्लेखा के द्वारा, दत्तम् = दिया हुआ, सर्वमन्त्रैः = सभी मन्त्रों द्वारा, समर्पितम् = समर्पित ।

भावार्थ–

ह्रल्लेख मन्त्रों के द्वारा मुझे अर्पित किया गया पदार्थ सभी मन्त्रों के द्वारा अर्पित किया हुआ समझा जाता है ।

श्लोक ३०–

गुरुं सम्पूज्य भूषाद्यैः कृतकृत्यत्वमावहेत् ।
य एवं पूजयेद्देवीं श्रीमद्भुवनसुन्दरीम् ।

अन्वय–

भूषाद्यैः गुरुं सम्पूज्य कृतकृत्यत्वमाहवेत् ।
य एवं श्रीमद्भुवनसुन्दरीं देवीं पूजयेत् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

भूषाद्यैः = आभूषण आदि सामग्रियों से, गुरुम् = गुरु को, सम्पूज्य = पूजा करके, कृतकृत्यम् = कृतकृत्यता को, आवहेत् = समझना चाहिए, यः = जो, एवम् = इस प्रकार, श्रीमद्भुवनसुन्दरीम् = त्रिभुवनसुन्दरी देवी को, पूजयेत् = पूजा करनी चाहिए ।

भावार्थ–

आभूषण आदि सामग्रियों से गुरु की विधिवत् पूजा करके अपने को कृतकृत्य समझना चाहिए । जो त्रिभुवनसुन्दरी देवी की इस प्रकार पूजा करता है ।

श्लोक ३१–

न तस्य दुर्लभं किञ्चित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि ।
देहान्ते तु मणिद्वीपं मम यात्येव सर्वथा ।।

अन्वय–

तस्य हि किञ्चित्कदाचित्क्वचित् दुर्लभं न अस्ति ।
देहान्ते तु मम मणिद्वीपं सर्वथा यात्येव ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तस्य = उसका, किञ्चित् = कुछ भी , कदाचित् = कभी भी, क्वचित् = कहीं भी, दुर्लभम् = दुर्लभ, न = नहीं, अस्ति = है, देहान्ते = देह का अन्त होने पर, मम = मेरा, मणिद्वीपम् = मणिदीप, सर्वथा= सब प्रकार से, यात्येव (याति + एव) = जाता है ।

भावार्थ–

उसके लिए कोई भी वस्तु किसी भी समय में कही भी दुर्लभ नहीं रह सकती । देहावसान होने पर वह निश्चित ही मेरे मणिद्वीप में पहुँच जाता है ।

श्लोक ३२–

ज्ञेयो देवीस्वरूपोऽसौ देवा नित्यं नमन्ति तम् ।
इति ते कथितं राजन् महादेव्याः प्रपूजनम् ।।

अन्वय–

असौ देवीस्वरूपो ज्ञेयो देवा तं नित्यं नमन्ति ।
राजन् इति ते महादेव्याः प्रपूजनं कथितम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

असौ = वह, देवीस्वरूप: = देवी का स्वरूप, ज्ञेय: = समझना चाहिए, देवा: = देवतागण, तम् = उसे, नित्यम् = नित्य, नमन्ति = प्रणाम करते हैं, राजन् = हे राजन् , इति = इस प्रकार, ते = आपसे, महादेव्या: = महादेवी का, प्रपूजनम् = पूजन, कथितम् = बता दिया ।

भावार्थ–

मेरी इस प्रकार पूजा करने वाले को देवी का ही स्वरूप समझना चाहिए; देवतागण उसे नित्य प्रणाम करते हैं । हे राजन! इस प्रकार मैंने आपसे महादेवी के पूजन के विषय में बता दिया ।

श्लोक ३३–

विमृश्यैतदशेषेणाप्यधिकारानुरूपतः ।
कुरु मे पूजनं तेन कृतार्थस्त्वं भविष्यसि ।।

अन्वय–

अशेषेण एतद् विमृश्य अधिकारानुरूपतोऽपि ।
मे पूजनं कुरु तेन त्वं कृतार्थः भविष्यसि ।

पदच्छेद अर्थसहित–

अशेषेण = सम्पूर्णत:, एतत् = इसको, विमृश्य = विचार करके, अधिकारानुरूपतोऽपि (अधिकार + अनुरूपत: + अपि) = अपने अधिकार के अनुरूप, मे = मेरा, पूजनम् = पूजन, कुरु = कीजिए, तेन= उससे, कृतार्थ: = कृतकृत्य, भविष्यसि = हो जाएँगे ।

भावार्थ–

आप इस पर भलीभाँति विचार करके अपने अधिकार के अनुरूप मेरा पूजन कीजिये, उससे आप कृतार्थ हो जाएँगे ।

श्लोक ३४–

इदं तु गीताशास्त्रं मे नाशिष्याय वदेत् क्वचित् ।
नाभक्ताय प्रदातव्यं न धूर्ताय च दुर्हृदे ।।

अन्वय–

इदं तु मे गीताशास्त्रं अशिष्याय क्वचित् न वदेत् ।
अभक्ताय धूर्ताय दुर्हृदे च न प्रदातव्यम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

इदम् = यह, मे = मेरा, गीताशास्त्रम् = देवीगीता को, अशिष्याय = जो सत् शिष्य नहीं हैं उसे, क्वचित् = कभी भी, न= नहीं, वदेत् = बताना चाहिए, अभक्ताय = अभक्त को, धूर्ताय = धूर्त को, दुर्हृदे = दुरात्मा को, च = और, न = नहीं, प्रदातव्यम् = प्रदान करना चाहिए ।

भावार्थ–

जो सत् शिष्य नहीं है, उसे कभी भी मेरे इस गीताशासत्र को नहीं बताना चाहिए । साथ ही जो भक्त न हो, धूर्त तथा दुरात्मा हो, उसे भी इसका उपदेश नहीं देना चाहिए ।

श्लोक ३५–

एतत्प्रकाशनं मातुरुद्घाटनमुरोजयोः ।
तस्मादवश्यं यत्नेन गोपनीयमिदं सदा ।।

अन्वय–

एतत्प्रकाशनं मातुरुरोजयोः उद्घाटनम् ।
तस्मात् इदं सदा अवश्यं यत्नेन गोपनीयम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

एतत्प्रकाशनम् = इसको प्रकट करना, मातुरुरोजयोः (मातुः + उरोजयोः) = माता के वक्षः स्थल को, उद्घाटन = प्रदर्शन, तस्मात् = इसलिए, इदम् = यह, सदा = सदैव, अवश्यम् = अवश्य ही, यत्नेन = प्रयत्नपूर्वक , गोपनीयम् = गुप्त रखना चाहिए ।

भावार्थ–

अनधिकारी के समक्ष इसे प्रकाशित करना अपनी माता के वक्षस्थल को प्रकट करने के समान है, अतः इसे सदा प्रयत्नपूर्वक अवश्य गोपनीय रखना चाहिए ।

श्लोक ३६–

देयं भक्ताय शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय चैव हि ।
सुशीलाय सुवेषाय देवीभक्तियुताय च ।।

अन्वय–

हि भक्ताय शिष्याय चैव सुशीलाय सुवेषाय देवीभक्तियुताय ज्येष्ठपुत्राय च देयम् ।

पदच्छेद अर्थसहित–

भक्ताय = भक्त को, शिष्याय = शिष्य को, चैव = तथा, सुशीलाय = सुशील को, सुवेशाय = सुन्दर को, देवीभक्तियुताय = देवीभक्तिपरायण को, देयम् = देना चाहिए ।

भावार्थ–

भक्तिसम्पन्न शिष्य को तथा सुशील, सुन्दर और देवीभक्तिपरायण जेष्ठ पुत्र को ही इसका उपदेश करना चाहिए ।

श्लोक ३७–

श्राद्धकाले पठेदेतद् ब्राह्मणानां समीपतः ।
तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयान्ति परमं पदम् ।।

अन्वय–

श्राद्धकाले ब्राह्मणानां समीपतः एतत् पठेत् ।
सर्वे तत्पितरः तृप्ताः परमं पदं प्रयान्ति ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

श्राद्धकाले = श्राद्ध के समय, ब्राह्मणानाम् = ब्राह्मणों के, समीपतः = समीप, एतत् = इसको, पठेत= पाठ करता है, सर्वे = सभी, तत्पितरः (तत् + पितरः) = उसके पितर, तृप्ताः = परमम् = परम, पदम् = पद को, प्रयान्ति = प्राप्त हो जाते हैं ।

भावार्थ–

श्राद्ध के अवसर पर जो मनुष्य ब्राह्मणों के समीप इसका पाठ करता है उसके सभी पितर तृप्त होकर परम पद को प्राप्त हो जाते हैं ।

व्यास उवाच–

श्लोक ३८–

इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत ।
देवाश्च मुदिताः सर्वे देवीदर्शनतोऽभवन् ।।

अन्वय–

इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत ।
सर्वे देवाश्च देवीदर्शनतो मुदिता अभवन् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

इत्युक्त्वा (इति + उक्त्वा) = ऐसा कहकर, सा = वह, भगवती = देवी भुवनेश्वरी, तत्रैवान्तरधीयत

(तत्र + एव + अन्तरधीयत) = वहीं अन्तर्धान हो गयीं, सर्वे = सभी, देवाश्च (देवाः + च) = और देवतागण, देवीदर्शनतः = देवी का दर्शन पाकर, मुदिताः = प्रसन्न, अभवन् = हो गये ।

भावार्थ–

व्यासजी बोले - हे जनमेजय ! ऐसा कहकर वे भगवती वहीं पर अन्तर्धान हो गयीं और देवी के दर्शन से सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये ।

श्लोक ३९–

ततो हिमालये जज्ञे देवी हैमवती तु सा ।
या गौरीति प्रसिद्धासीद्दत्ता सा शङ्कराय च ।।

अन्वय–

ततः सा हैमवती देवी हिमालये जज्ञे ।
या गौरीति प्रसिद्धासीत् सा च शङ्कराय दत्ता ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ततः = तदनन्तर, सा = वह, हैमवती = हिमालय से उत्पन्न होने वाली, हिमालये = हिमालय में, जले = उत्पन्न हुई, या = जो, गौरीति (गौरी + इति) = गौरी नाम से, प्रसिद्धासीत् (प्रसिद्धा+ आसीत्)= प्रसिद्ध थी, सा = वह, च = और, शङ्कराय = शंकर जी की, दत्ता = दी गयी ।

भावार्थ–

तदनन्तर वे देवी हैमवती हिमालय के यहाँ उत्पन्न हुईं, जो गौरी नाम से प्रसिद्ध हुईं । बाद में वे शंकर जी को प्रदान की गयीं ।

श्लोक ४०–

ततः स्कन्दः समुद्भूतस्तारकस्तेन पातितः ।
समुद्रमथने पूर्वं रत्नान्यासुर्नराधिप ।।

अन्वय–

ततः स्कन्दः समुद्रभूतः तेन तारकः पातितः ।
नराधिप पूर्वं समुद्रमथने रत्नान्यासुः ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

ततः = इसके बाद, स्कन्दः = कार्तिकेय, समुद्भूतः = उत्पन्न हुए, तेज = उनके द्वारा, तारकः = तारकासुर, पातितः= मारा गया, नराधिप = हे नराधिप, पूर्वम् = पूर्व काल में, समुद्रमथने = समुद्र मन्थन में, रत्नान्यासुः (रत्नानि + आसुः) = रत्न निकले ।

भावार्थ–

तत्पश्चात् कार्तिकेय उत्पन्न हुए और उन्होंने तारकासुर का संहार किया । हे नराधिप ! पूर्व समय में समुद्र-मन्थन से अनेक रत्न निकले ।

श्लोक ४१–

तत्र देवैः स्तुता देवी लक्ष्मीप्राप्त्यर्थमादरात् ।
तेषामनुग्रहार्थाय निर्गता तु रमा ततः ।।

अन्वय–

तत्र लक्ष्मीप्राप्त्यर्थं देवैः आदरात् देवी स्तुता ।
ततः तेषामनुग्रहार्थाय तु रमा निर्गता ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

तत्र = वहाँ, लक्ष्मीप्राप्त्यर्थम् (लक्ष्मीप्राप्ति + अर्थम्) = लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए, देवैः = देवताओं के द्वारा, आदरात् = आदरपूर्वक, देवी = भगवती, स्तुता = स्तुति की गयी, ततः = इसके बाद, तेषामनुग्रहार्थाय (तेषाम् + अनुग्रह + अर्थाय) = उन पर कृपा करने के लिए, रमा = लक्ष्मी, निर्गता= प्रकट हुईं ।

भावार्थ–

एस समय लक्ष्मी को प्रकट करने के लिए देवताओं ने आदरपूर्वक भगवती की स्तुति की । तब उन देवताओं पर अनुग्रह करने के लिए वे भगवती ही पुनः रमा (लक्ष्मी) के रूप में प्रकट हुईं ।

श्लोक ४२–

वैकुण्ठाय सुरैर्दत्ता तेन तस्य शमोऽभवत् ।
इति ते कथितं राजन् देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।।

अन्वय–

सुरैः वैकुण्ठायः दत्ता तेन तस्य शमोऽभवत् ।
राजन् इति ते देवीमाहात्म्यमुत्तमम् कथितम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

सुरैः = देवताओं द्वारा, वैकुण्ठाय = विष्णु को, दत्ता = दी गयी, तेन = इससे, तस्य = उसका यानि विष्णु का, शमः = शान्ति, अभवत् = हुई, राजन् = हे राजन् ! इति = इस प्रकार, ते = आपसे, देवीमाहात्म्यम् = देवी का माहात्म्य, कथितम् = कहा गया ।

भावार्थ–

देवताओं ने उन लक्ष्मी को भगवान् विष्णु को सौंप दिया, इससे विष्णु को परम शान्ति की प्राप्ति हुई। हे राजन! मैंने आपसे भगवती के इस उत्तम माहात्म्य का वर्णन कर दिया ।।

श्लोक ४३–

गौरीलक्ष्म्योः समुद्भूतिविषयं सर्वकामदम् ।
न वाच्यं त्वेतदन्यस्मै रहस्यं कथितं यतः ।।

अन्वय–

गौरीलक्ष्म्योः समुद्भूतिविषयं सर्वकामदम् ।
एतत् तु अन्यस्यमै न वाच्यं यतः कथितं रहस्यम् ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

गौरीलक्ष्म्योः = गौरी और लक्ष्मी का, समुद्भूतिविषयम् = उत्पत्ति से सम्बन्धित यह प्रसंग, सर्वकामदम्= सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला, एतत् = यह, अन्यस्मै = किसी दूसरे को, न= नहीं, वाच्यम् = बताना चाहिए, यतः = क्योंकि, कथितम् = कहा गया यह प्रसंग, रहस्यम् = गोपनीय ।

भावार्थ–

गौरी तथा लक्ष्मी की उत्पत्ति से सम्बन्धित यह प्रसंग सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला है । मेरे द्वारा कहे गये इस प्रसंग को किसी दूसरे से नहीं बताना चाहिए, क्योंकि यह प्रसंग गोपनीय है ।

श्लोक ४४–

गीतारहस्यभूतेयं गोपनीया प्रयत्नतः ।
सर्वमुक्तं समासेन यत्पृष्टं तत्त्वयानद्य ।
पवित्रं पावनं दिव्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।

अन्वय–

रहस्यभूता इयं गीता प्रयत्नः गोपनीया ।
अनघ यत् त्वया पृष्टं तत् समासेन् सर्वमुक्तम् ।
पवित्रं पावनं दिव्यं भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ।।

पदच्छेद अर्थसहित–

रहस्यभूता = रहस्यमयी, इयम् = यह गीता = देवी गीता, प्रयत्नतः = प्रयत्नपूर्वक, गोपनीया= गुप्त रखने योग्य, अनघ = हे निष्पाप, यत् = जो, त्वया = तुम्हारे द्वारा, पृष्टम् = पूछा गया, तत् = उसे, समासेन = संक्षेप, सर्वम् = सब, उक्तम् = बता दिया गया, पवित्रम् = पवित्र, पावनम् = पवित्र करने वाला, दिव्यम् = दिव्य, भूयः = फिर, किम् = क्या, श्रोतुमिच्छसि (श्रोतुम् + इच्छसि) = सुनना चाहते हो ।

भावार्थ–

रहस्यमयी यह गीता सदा प्रयत्नपूर्वक गोपनीय है । हे अनघ ! आपने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने

आपको संक्षेप में बता दिया । यह दिव्य प्रसंग स्वयं पवित्र है तथा दूसरों को भी पवित्र करने वाला है। अब आप पुन: क्या सुनना चाहते हैं ?

समाप्ता देवीगीता